दी: तीन लेखिकाएं
या
ारह अन्य लेखक

सारिका

नवंबर १९७६

अभिमन्यु अनत के धारावाहिक उपन्यास 'लाल पसीना' की छठी किस्त

●

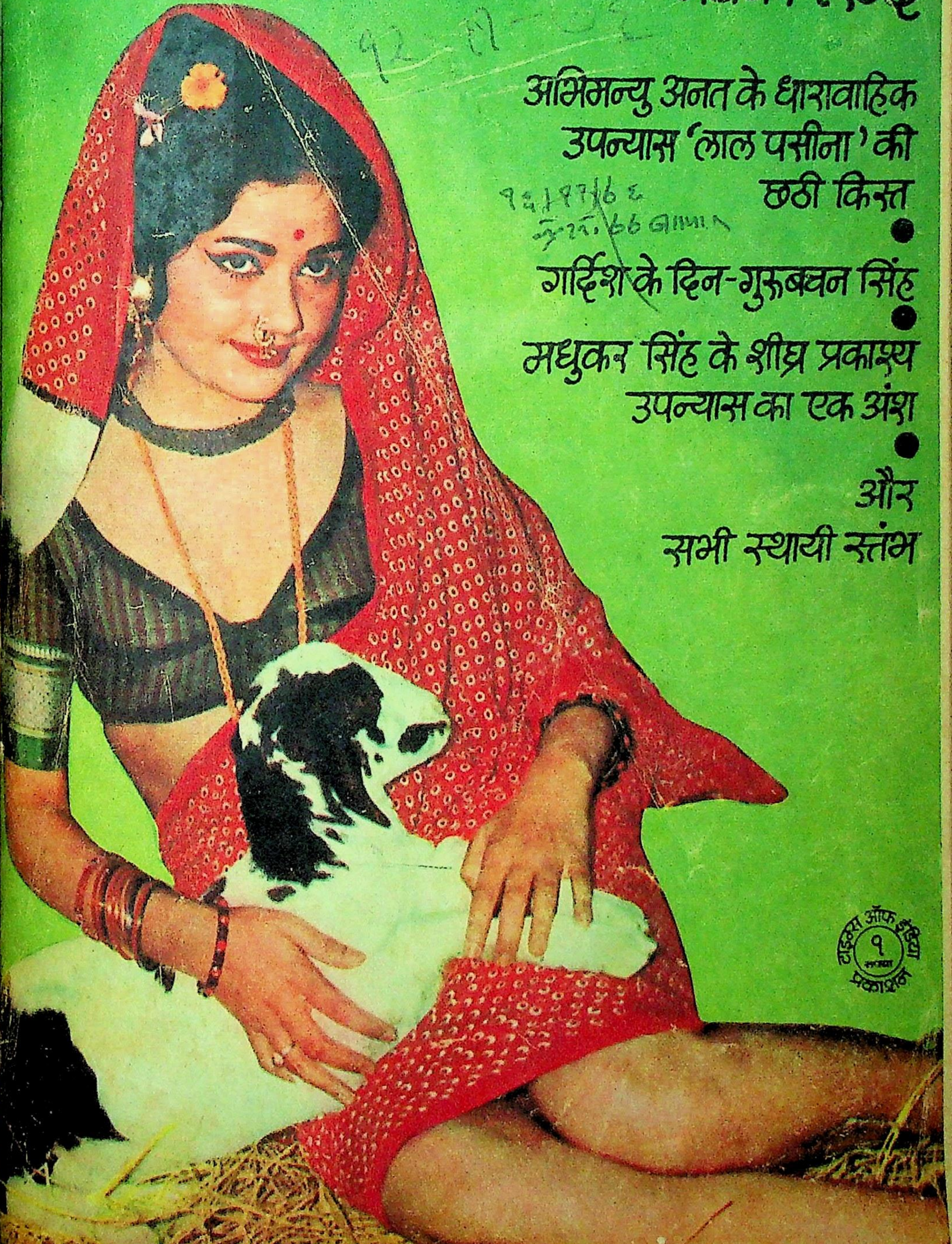
गर्दिश के दिन-गुरुबचन सिंह

●

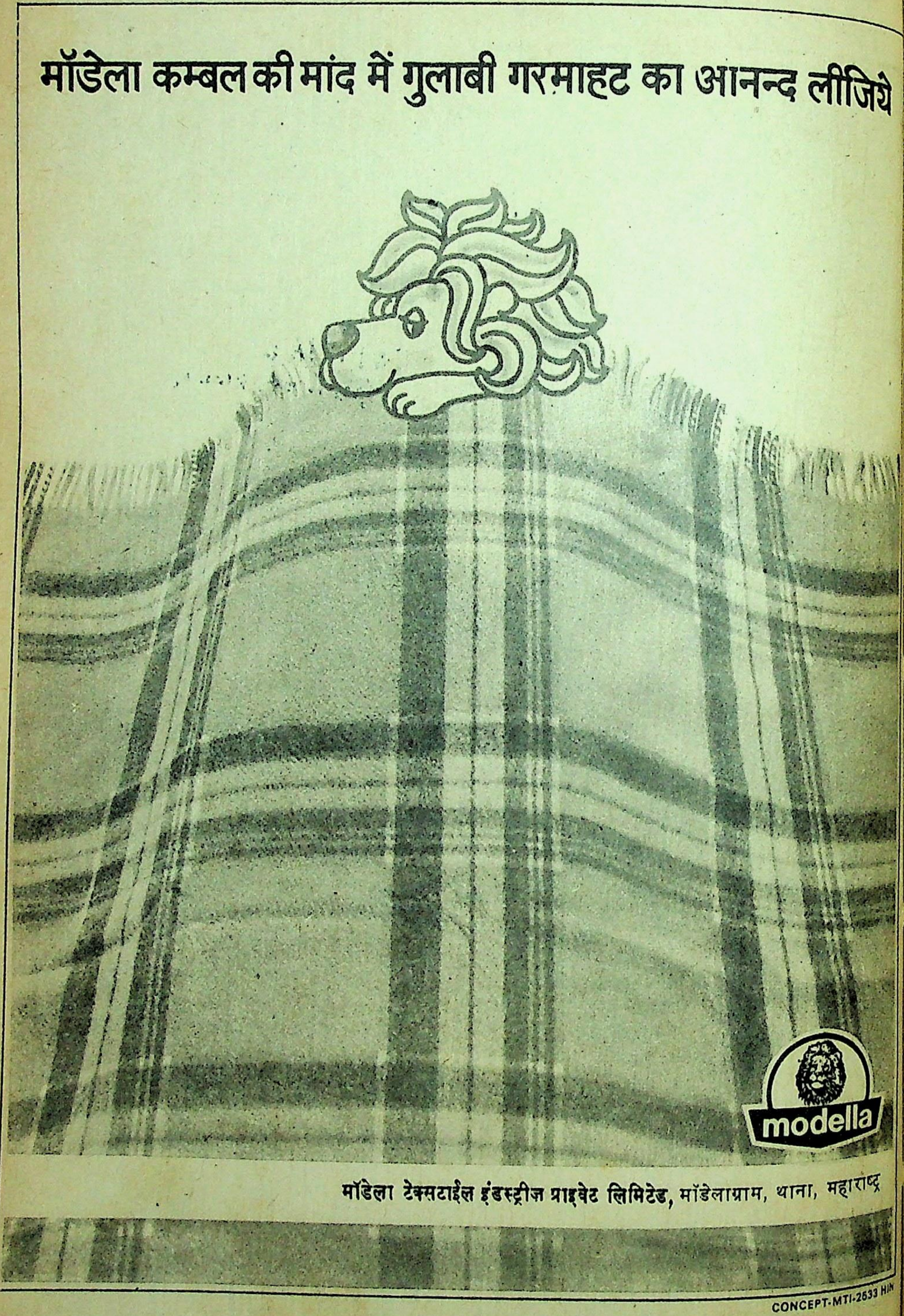
मधुकर सिंह के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास का एक अंश

●

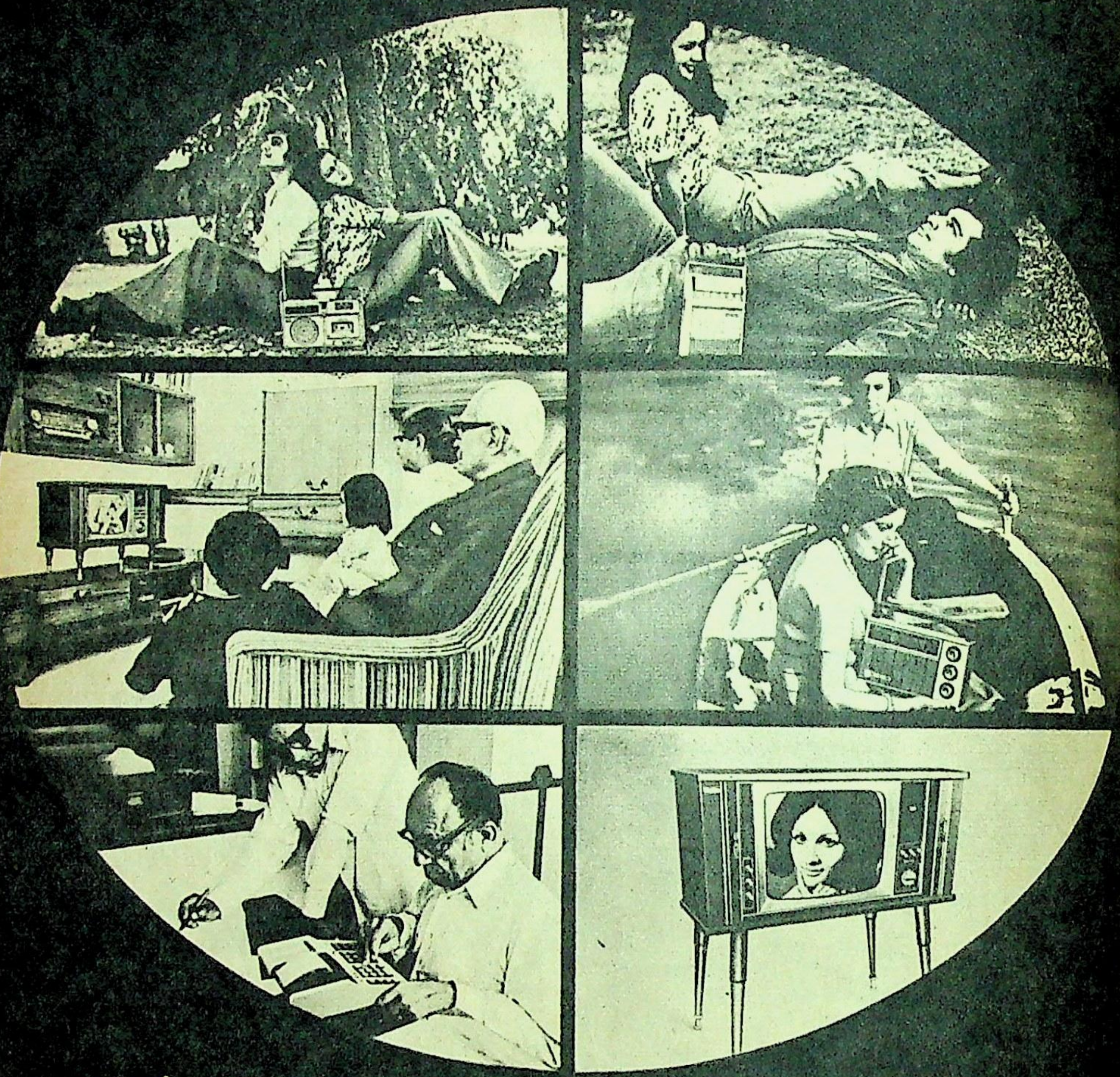
और सभी स्थायी स्तंभ



टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन १ रुपया


मॉडेला कम्बल की मांद में गुलाबी गरमाहट का आनन्द लीजिये
modella
मॉडेला टेक्सटाईल इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड, मॉडेलाग्राम, थाना, महाराष्ट्र
CONCEPT-MTI-2633 HIN

वेस्टन का अनोखा संसार



आज वेस्टन के उत्पादन पांचों महाद्वीपों में पहुंच चुके हैं. ये चालीस देशों में लोगों के जीवन का अंग बन गए हैं. विदेशी मुद्रा में इनका मूल्य करोड़ों रुपये में है.

यह है वेस्टन की दुनिया, और इसका जन्म उच्च तकनीक के युग में हुआ. इसके उत्पादन इसी युग के अंग हैं. ये आधुनिक और प्रगतिशील हैं. वे साधन आज आपका मनोरंजन करते हैं. आपके जीवन में नयापन लाते हैं.

वेस्टन के उत्पादन :- टेलीविजन, कैसेट टेप रिकार्डर, टू-इन-वन, कार स्टीरियो, ट्रांजिस्टर रेडियो और इलैक्ट्रानिक कैलकुलेटर.

Weston®

The electronics people

मान्यता प्राप्त निर्यातक

वेस्टन इलैक्ट्रानिक्स लिमिटेड

रजिस्टर्ड आफिस :- 244 ओखला इन्डस्ट्रियल एस्टेट नई दिल्ली-110020

नई दिल्ली 632277, बम्बई 362979, कलकत्ता 231459, मद्रास 811028, पुणे 24343, लखनऊ 25885, कानपुर 66250, अमृतसर 51313.

CHAITRA-WE-320-HIN



उत्साह भरा जीवन
नेस्कैफे® के ताज़ा और स्फूर्तिदायक स्वाद से
NESCAFE
instant coffee
नेस्कैफे®
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी
जो १००%
शुद्ध कॉफी से बनी है
दुनिया भर में सबसे ज्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफी


बुलवर्कर द्वारा कसरत के
केवल ३५ दिन बाद इतने
आश्चर्यजनक परिणाम!
श्री जे. एच एक व्यस्त एक्ज़ीक्युटिव हैं जिनके दिन का ज़्यादा भाग एक दफ़्तर में गुज़रता है और जब वह घर वापस लौटते हैं तो इतने थके-मांदे होते हैं कि किसी प्रकार की कसरत नहीं कर सकते। सुबह को भी ऐसी भाग-दौड़ रहती है कि उल्टा-सीधा नाश्ता करके दफ़्तर को भागते हैं। सच तो यह है कि स्कूल छोड़ने के बाद से वह नियमित रूप से कसरत बिल्कुल नहीं कर पाये...
फिर उन्हों ने बुलवर्कर से कसरत करनी शुरू की। ज़रा इन दो फ़ोटोओं को ध्यानपूर्वक देखिए जो ५ हफ़्ते के अंतर से लिये गये थे। इन ५ हफ़्तों में उनका सीना १२.५ सें.मी; पुट्ठे ५ सें.मी; गर्दन २.५ सें.मी; रानें ८ सें.मी; और पिंडलियां २.५ सें.मी. बढ़ गयीं। श्री जे. एच. अब चुस्ती-फुर्ती और शक्ति से भरपूर दिखाई देते हैं। आप भी ऐसे बन सकते हैं... इसमें आपके रोज़ाना सिर्फ़ ५ मिनट लगेंगे!
अपने शरीर में अधिकतम चुस्ती-फुर्ती, स्वास्थ्य और शक्ति भर लीजिये— रोज़ाना केवल ५ मिनट खर्च करके! दो हफ़्तों में निश्चित परिणाम देख लीजिये— अन्यथा दाम न दीजिये!
बुलवर्कर को सबसे पहले अमेरिका और जर्मनी की ऑलम्पिक टीमों के प्रशिक्षण के लिए उपयोग किया गया था (अमेरिकन टीमों ने ३० स्वर्ण पदक और जर्मन टीमों ने १० स्वर्ण पदक जीते) आज अंतर्राष्ट्रीय बुलवर्कर को कैशियस क्ले (मोहम्मद अली) एडी मर्क्स, विम रसका जैसे चैम्पियन और दुनियाभर में लाखों अन्य लोग प्रयोग कर रहे हैं क्योंकि यह 'अति-शी-घ्र' शानदार परिणाम दिखाता है! बुलवर्कर 'स्टेटिक आईसोमेट्रिक्स' और 'डायनमिक आईसोटॉनिक्स' के फ़ायदों का सम्मिश्रण है—यह कसरत करने के सामान्य साधनों की अपेक्षा ४ गुना ज्यादा तेज़ी से असर करता है। चाहे आपकी आयु २०, ४०, ६०... कितने भी वर्ष हो, बुलवर्कर आपके कंधों को चौड़ा कर देगा, बाज़ुओं, सीने और टांगों की मांसपेशियों को मज़बूत बनायेगा और ४% प्रति हफ़्ता की दर से आपकी शक्ति में वृद्धि करेगा।
आसान कसरतें: बुलवर्कर के साथ आपको सम्पूर्ण सचित्र मार्गदर्शक पुस्तिका मिलेगी जो यह दिखायेगी कि रोज़ाना सिर्फ़ चन्द मिनट के अभ्यास से मांसपेशियों के विभिन्न समूहों का विकास कैसे किया जाये।
दोहरी गारंटी:
१. दाम वापसी की गारंटी: अगर २ हफ़्ते में आप परिणामों से पूर्णरूप से संतुष्ट नहीं हैं तो सब कुछ वापस लौटा दीजिये आपके दाम तुरंत और पूरे के पूरे वापस कर दिये जायेंगे।
२. ५ वर्ष की सर्विस गारंटी: आपको बुलवर्कर के विषय में कोई शिकायत हो, जिसकी संभावना नहीं है, तो हम खरीदारी की तारीख से ५ वर्ष के अंदर प्रसन्नतापूर्वक इसकी मरम्मत करेंगे या बदल देंगे। इससे ज्यादा आपको और क्या चाहिए? जल्दी कीजिये! आज ही कूपन भेजिये!
© Mail Order Sales Pvt. Ltd., 15 Mathew Road, Bombay 400 004
त्योहार की विशेष भेंट
अब केवल रु. १९८
आज ही यह कूपन भेज दीजिये!
BWN-I-H
मेल आर्डर सेल्स प्रा. लि. (ऑर्डर डिपार्टमेंट) १५ मैथ्यू रोड, बम्बई ४०० ००४.
कृपया मुझे त्योहार के अवसर की विशेष कम क़ीमत पर बुलवर्कर तुरंत भेजदीजिये। पूर्ण संतोष न होने की स्थिति में मैं १४ दिनों की आज़माइशी अवधि पूरी होने से पहले सब कुछ वापस लौटा दूंगा/दूंगी ताकि आप किसी वाद-विवाद के बिना पूरी रक़म वापस लौटादें।
क़ीमत की अदायगी का प्लान चुनकर अपनी पसंद के खाने में ☑ निशान लगाइये।
☐ रु. ६४ (+ रु. १५ डाक खर्च व सर्विस चार्ज) और रु. ४० प्रति मास की दर से ४ मासिक क़िस्तें ☐ रखने के केस के साथ उपर्युक्त प्लान, शुरू में रु. ७९ (+ रु. १५ डाकखर्च व सर्विस चार्ज) और रु. ४० प्रति मास की दर से ४ मासिक क़िस्तें।
SB-I
एक ही बार पूर्ण अदायगी से रु. २६ बचाइये
☐ रु. १९८ (+ रु. १५ डाकखर्च व सर्विस चार्ज) ☐ रखने के केस के साथ रु. २१३ (+ रु. १५ डाकखर्च व सर्विस चार्ज)
☐ पैसे चैक/ड्राफ्ट/इंडियन पोस्टल आर्डर/मनी आर्डर नं.............. दिनांक.............. द्वारा भेजे जा रहे हैं।
☐ वी.पी.पी भेजिये। मैं पार्सल वसूल होने पर बतायी गयी रक़म अदा कर दूंगा/दूंगी।
हस्ताक्षर .... नाम ....
पता ....
रखने का केस अब सिर्फ़ रु. ९५/- में

हिंदी : तीन लेखिकाएं तथा ग्यारह लेखक

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

नवंबर, १९७६

वर्ष : १६; पूर्णांक : १८७

लेखिकाएं

अन्य कहानियां

उपन्यास अंश

लघुकथाएं

धारावाहिक उपन्यास : छठी किस्त

गर्दिश के दिन

विशिष्ट लेख

स्थायी स्तंभ

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

अगस्त अंक

योगेंद्र प्रसाद आजाद, जमालपुर (बिहार) : इसके पूर्व मेरी तो धारणा थी कि भारत के कच्छ भूखंड पर केवल श्रमजीवी या व्यापारी ही रहा करते हैं. मगर कच्छी साहित्य के दो अंकों से अब यह धारणा बनी है कि गुजराती इन कच्छी साहित्यकारों के कारण भी समृद्ध है, **'श्मशान', 'हड्की वाली मां', 'रात को बात करेंगे'** बड़ी सशक्त लगीं. लोककथाओं को बच्चों ने भी चाव से पढ़ा. ☐

विनोद पांडेय, अंडाल (प. बं.). **'लाल पसीना'** पढ़ने से ऐसा लगता हां नहीं कि हम भारत के बाहर की किसी कथावस्तु पर आधारित उपन्यास पढ़ रहे हैं. लगता है मानो यह बिहार का आंचलिक उपन्यास हो. इससे हमारे प्रवासी भाइयों की दर्द भरी कहानी को जानने का मौका मिला है. ☐

कु. उर्मिला केशवास, चांदामेटा (म. प्र.) : पढ़ कर लगा, अपनी धरती के कच्छ से कितनी अनभिज्ञ थी. कच्छी जीवन का यथार्थ चित्रण हृदय को स्पर्श कर गया. मनुभाई पांधी और मूलराज रूपारेल के लेख गागर में सागर थे. **'भरी दोपहर', 'लाल आंखें! लाल रत्तियां! लाल नेक!', 'धरती का कलंक', 'घर-बाहर', 'कब्र', 'यातना तीस महीने की'** बेहद पसंद आयीं. ☐

साधुराम गर्ग, एडवोकेट, मुजफ्फर नगर (उ. प्र.): **'कब्र'** ने अकस्मात आघात-सा किया हृदय पर. पढ़ने के बाद लगा कि उस दिन दुष्यंत कुमार की पंक्तियां पढ़ कर क्यों रोया था और आज भी यह कहानी पूरी होने से पहले ही टप से दो आंसू निकल पड़े. इतना स्वस्थ साहित्य, पाश्चात्य प्रभाव होने पर भी मिल रहा है, लगता है प्रेमचंद्र आदि का पुराना वक्त लौट कर आ रहा है. ☐

प्रेमनारायण, पटना : आम आदमी की मानवीय संवेदनाओं की सही अभिव्यक्ति देने में 'सारिका' की कहानियों की कोई तुलना नहीं है. **'यातना : तीस महीने की', 'रेत के फूल', 'धड़कन', 'कब्र', 'प्रतीक्षा',** जीवन की विसंगतियों से जूझते परिवेश में अंतर्निहित हैं. ☐

हेमंत हेमेंद्र, भोपाल : सर्वाधिक प्रभाव मुखपृष्ठ ने मुझ पर डाला है, विषय और रंग चुनाव में सराहनीय दक्षता उन्होंने बरती है. प्यारे बच्चे, कदम बढ़ाते हुए. कलाकार की सूझबूझ प्रशंसनीय है. ☐

अ. खुराना, हापुड़ (उ. प्र.) दिल पर एक खाका-सा खींच दिया कच्छ का. विशेष तौर पर **'भरी दोपहर', 'प्रतीक्षा', 'रण', 'नीलकंठ', 'रेत के फूल'** ने प्रभावित किया. **'लाल पसीना'** ने तो बुरी तरह जकड़ रखा है. ☐

पंकज शुक्ल, इटारसी : शर्तों और स्वार्थों पर आधारित संबंधों के युग में हमें गर्व है कि हमारे संबंध आम आदमी की बात कहने वाली 'सारिका' की जमीन पर हैं. अंतर्महाविद्यालयी वादविवाद प्रतियोगिता में हमारी सफलता का कोई राज पूछे तो वह 'सारिका' की पैनी भाषा-शैली होगी. ☐

बीरखे क्षत्री 'नेपाली', कटल गुड़ी (प. बं.) : 'सारिका' के हजारों अहिंदी भाषी पाठकों में मैं भी हूं. मेरी मातृभाषा नेपाली है. 'सारिका' के सभी अंक पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी होते हैं. मेरा अनुरोध है कि आप एक **'नेपाली साहित्य अंक'** भी निकालें.

हंसराज, बसंतपुर (मंडी—हि. प्र.) अपने गांव से ३० कि मी. दूर कस्बे से, ५ रु. खर्च करके भाड़े पर, 'सारिका' लाता हूं. लेकिन यह तो हमारी पत्रिका है, जिसमें आम आदमी की सारी वेदना मुखरित होती है, अपना दर्द लिखा होता है. इसलिए यह सब अनुभव नहीं होता कि एक रु. के पीछे पांच और गंवाने पड़ते हैं.

कच्छी कहानियों के दोनों अंक अत्यधिक पसंद आये. मेरी विनती है कि डोंगरी कहानियों का अंक भी अवश्य निकालें. ☐

उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी

बशीर अहमद, कोरारी कलां (उन्नाव—उ. प्र.) : श्री सादिक ने **'गुजरा हुआ जमाना'** (रचना काल सन् १८७०) को उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी माना है और उसके लेखक श्री सैयद अहमद खां को उर्दू का आद्यकथाकार. कहानी विवेचन में उन्होंने उर्दू के प्रसिद्ध शायर इंशाअल्लाखां का उल्लेख किया है. उनकी कहानी **'रानी केतकी की कहानी'** का एक नाम **'उदयभानु चरित'** भी है, और इसका रचनाकाल सन् १७९८ से १८०५ के मध्य ठहरता है (रामचंद्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास).

इस कहानी का उल्लेख हिंदी साहित्य संदर्भ में भी मिलता है, तो प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि इंशा अल्लाखां ने यह कहानी किस लिपि में लिखी.

पुराने अंक

'सारिका' के पुराने अंक मेरे यहां उपलब्ध हैं. किसी पाठक को जरूरत हो तो कृपया संपर्क करें.

—शैलेंद्र श्रीवास्तव, पार्सल क्लर्क, दिल्ली जंकशन, दिल्ली—६.

समांतर फिल्में

बृजकुमार गांधी, मेरठ : बंबई दूरदर्शन पर **समांतर फिल्मों** के विषय में जान कर हार्दिक संतोष मिला है. यह बात कितनी सटीक है कि "इस कार्यक्रम के माध्यम से पाठकों और दर्शकों के उस बहुत बड़े वर्ग तक पहुंचने की कोशिश की जा रही है, जो समकालीन साहित्य से लगभग अपरिचित है." ☐

श्री सादिक '**रानी केतकी की कहानी**' को एक दास्तानी रंग का किस्सा मानते हुए कहते हैं कि वह कहानी की कसौटी पर खरा नहीं उतरता. पर '**गुजरा हुआ जमाना**' को क्या उसी कसौटी पर कसा है?

वास्तव में '**गुजरा हुआ जमाना**' एक उद्देश्य विशेष के अंतर्गत लिखा आधा लेख और आधी कहानी जैसा है.

यह सुधारवादी, इस्लाम-धर्मनिष्ठता के प्रति लिखी गयी रचना है.

सच तो यह होगा कि सैयद अहमद खां ने स्वयं इस रचना को कथा या किस्सा मान कर नहीं लिखा होगा.

कथा के विषय में ही क्या कहा जाय जब उसमें कोई कथानक ही नहीं हो?

श्री सादिक इसे इसलिए 'अपनी अपरिपक्वता और न्यूनता के बावजूद' कहानी मानते हैं क्यों कि 'आज की कहानी से उसमें एक सदी का अंतर है', तो '**रानी केतकी की कहानी**' को उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी मानने में क्या आपत्ति है जो उससे ७५ वर्ष पहले लिखी गयी? इसमें मूल कथानक तो है.

वैसे यह सत्य है कि '**रानी केतकी की कहानी**' को कहानी की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती.

लेकिन '**गुजरा हुआ जमाना**' पढ़ कर तो यही लगता है कि इसे उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी बताना एक षड्यंत्र है या श्री सादिक की पक्षपातपूर्ण नीति.

अतः अब 'सारिका' का दायित्व हो जाता है कि चर्चा एवं शोध के द्वारा, हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी की खोज की तरह, उर्दू की प्रथम मौलिक कहानी की खोज कराये. □

समांतर लेखक सम्मेलन : घोषणा-पत्र

खुशालसिंह पुरोहित, काछी बड़ौदा (धार – म. प्र.) : राजगीर में समांतर लेखक सम्मेलन में स्वीकृत दलित और समांतर लेखकों का संयुक्त घोषणा पत्र बहुत ही सामयिक और उद्देश्यपूर्ण है. समकालीन संदर्भ में रचनाकार अपनी प्रतिबद्धता का निर्धारण करें, यह एक अनिवार्य आवश्यकता है. साहित्यकार सर्वहारा वर्ग से जुड़ कर समय सापेक्ष सत्य को स्वीकार करे यह आज की महती आवश्यकता है. इस संदर्भ में सम्मेलन के सभी निर्णय महत्त्वपूर्ण हैं.

इस सम्मेलन ने उन तथाकथित साहित्यकारों के चेहरे बेनकाब किये हैं, जो समकालीन राजनीतिक परिवेश में ऐसे ही तथाकथित जन-प्रतिबद्धता के आवरण में जी रहे थे. उन्हें अब पता लग गया कि कोरी रचनाधर्मिता ही जन-संघर्ष में काफी नहीं है, उसमें सीधी हिस्सेदारी भी जरूरी है. इस सम्मेलन ने बता दिया कि सही प्रतिबद्धता क्या है, क्यों कि आज भी बहुत सारे साहित्यकार तटस्थ दर्शक की भांति हैं, जो सामान्य जन के संघर्ष की बात तो करते हैं, किंतु उसमें शरीक होना नहीं चाहते.

वैसे भी इतिहास इस बात का साक्षी है कि दुनिया में जितनी भी क्रांतियां हुई हैं उनमें सभी वर्गों की या सभी लोगों की हिस्सेदारी कभी नहीं रही. कुछ ही लोग क्रांति के संवाहक होते हैं. उन्हींके द्वारा राष्ट्रीय चेतना में युगांतरकारी परिवर्तन होते हैं. इस सम्मेलन ने उन लोगों के लिए वैचारिक भूमिका के नये क्षितिज प्रदान किये हैं.

ज्ञानात्मक संवेदना की कलात्मक अनुभूति ही साहित्य है. विचार-विरोधी षड्यंत्र के बावजूद साहित्य विचार से कभी जुदा नहीं हो सकता. इस सम्मेलन से साहित्यिक एकता और सहअस्तित्व की दिशा में प्रगति हुई है.

मेरी राय में यह सम्मेलन मानवता की दिशा में ऐतिहासिक कदम है. इतनी भाषाओं के इतने लेखकों ने एक साथ बैठ कर समकालीन संदर्भों की चर्चाएं कीं और निर्णय लिये, यह स्वातंत्र्योत्तर साहित्य यात्रा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है. मैं उन सभी साहित्यकारों को हार्दिक मुबारकबाद देना चाहता हूं जिन्होंने इस सम्मेलन में हिस्सा लिया और जो समांतर आंदोलन की मशाल को प्रज्ज्वलित रखने में अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं, क्योंकि आज के अर्थाभाव युग में रचनाकार के लिए अग्नि-परीक्षा का समय है कि वह किस प्रकार परिस्थितियों के बावजूद अपने अंतर के रचनाकार को शाश्वत रखता है. यह सचमुच बहुत ही साहस का काम है. □

राजेंद्र चंद्रकांत राय, जबलपुर: अगस्त की 'सारिका' में लेखकों का घोषणा पत्र देखा. आजादी के बाद भारतीय साहित्य का यह एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो प्रतिबद्धता की स्पष्ट घोषणा करते हुए, अपने को सर्वहारा वर्ग से ईमानदारी के साथ जोड़ रहा है. पर इधर एक बात यह भी काबिले गौर है कि प्रगतिशीलता और सर्वहारा साहित्य के नाम पर कुछ मुखौटे झंडेबरदारी कर रहे हैं और अपनी दुकान चला रहे हैं. □

अंतर

• शैलाभ

थोड़ी विलंब से गाड़ी राजधानी पहुंची. धक्का-धुक्की से बचते हुए शशीश बाबू प्लेटफार्म पर उतरे. बुकस्टाल पास ही था. देखते ही तीस वर्ष पुरानी घटना कौंध गयी. बी. ए. का रिजल्ट जानने के लिए बड़ी बेताबी से अखबार के पन्ने उलट रहे थे. एकाएक किसी ने भुजाओं में ले लिया था. स्पर्श परिचित लगा था. मुड़ते ही धर्मेंद्र के खिले चेहरे पर नजर पड़ी थी. दोनों को सेकंड क्लास मिला था. शुभसंवाद धर्मेंद्र ने ही दिया था.

—सामान है बाबू?

कुली ने अतीत छीन लिया. नकारात्मक जवाब देकर स्टेशन से बाहर आये. होटल पास ही में था. जाकर मिठाइयों के मोलभाव किये. पंद्रह रुपये किलो ने उत्साह पर पानी फेर दिया. पचीस रुपये ही बचे थे. वापसी भाड़े के लिए बीस बचाना ही था. सो केवल चाय पीकर बाहर निकल गये.

सौगात की बात परेशान करती रही. संतोष के लिए कपड़े के बैग को देखा. गांव से थोड़ा मालदह आम साथ लाये थे. पीला रंग, मीठी खुशबू. निरुपम स्वाद.

यही सब कुछ था कि धर्मेंद्र मचल जाता था. जब भी गांव जाने के लिए तैयार होते थे कि इन्हें लेते आने की याद दिला देना था. और लाकर साफ-सुथरा भी करते नहीं थे कि उठाकर छिलका नोचने लगता था. याद करके संतुष्ट हुए. एक रिक्शावाला पास आया. पाटलिपुत्र चलने को कहकर सवार हो गये.

★ ★

पाटलिपुत्र कालोनी की सफाई, सुंदरता और संपन्नता ने उन्हें मोह लिया. इसी स्वर्गीय इलाके में रहता है धर्मेंद्र! रहेगा क्यों नहीं? इतना बड़ी पोस्ट! अच्छी तनखाह के साथ-साथ. . . नहीं, खराब नहीं सोचना! ऐसा वह रहता तो मामूली गजटेड पोस्ट से तरक्की पाते-पाते डिप्टी सिक्रेटरी तक नहीं पहुंच पाता!

सोच ही रहे थे कि नयी इंपाला कार गुजरी. सवारियों को देखा. सभी अपरिचित लगे. धर्मेंद्र भी कार सरसराता होगा. बगल में रति रहती होगी. बाल-बच्चे रहते होंगे. करीब अट्ठाइस साल पहले रति उन्हें विशेष चाहती थी. फिर भी दोस्ती के नाम पर मन पर जो पत्थर रख लिया, सो अच्छा ही किया. नहीं तो, आज क्या दे पाता उसे? अभाव, विपन्नता और परेशानी ही न! यों. . . ओह, लगा न फिर गड़ा मुरदा उखाड़कर चीर-फाड़ करने! दोनों खुश हैं, अब यही संतोष की बात है मेरे लिए. . .

रिक्शा के रुक जाने से चिंतनधारा रुकी. सामने लोहे का फाटक था. फाटक पर एक प्लेट टंगा था जिस पर सुंदर अक्षरों में धर्मेंद्र बाबू के नाम और पोस्ट थे. पढ़ते-पढ़ते एक विशिष्ट आत्मीयता उमड़ी. भाड़ा देकर भीतर आ गये.

सुसज्जित कोठी. मखमली लान. फूलों की क्यारियां. सुवासित वातावरण. अंग्रेज साहबों के बंगले से भी अधिक खूबसूरत. . . . सचमुच धर्मेंद्र बहुत बड़ा आदमी हो गया. जितना सोचता था, उससे भी बड़ा. . .

देख-देख कर सोच ही रहे थे कि बरामदे में बंधा कुत्ता जोरों से भौंकने लगा— कोई है! डर कर घिघियाने लगे. पैंट और शर्ट के किर्च ठीक करते एक तगड़ा युवक निकला. कुत्ते को चुप कराके अपने कंधे तक झूलते बालों को झटका दिया और कंधा उचका कर उनकी ओर बढ़ने लगा.

उसकी सूरत पहचानी लगी. धर्मेंद्र का बड़ा लड़का होगा. अनुमान लगा के कुछ बोलने को हुए ही कि हिकारत भरी आवाज सुनाई पड़ी.

—किनसे मिलना है?

—तुम्हारे पिता से . . कालेज के दिनों का वह मेरा मित्र है, बेटा!

—ओ. . . आई सी, मगर वे तो शाम को लौटेंगे.

—अच्छा, इस बैग को रख लो, गांव से थोड़ा आम लाया हूं.

—इतनी दूर से बेकार ढोते लाये, यहां आम की कमी नहीं है.

उनकी मुलायमी पर बिना गौर किये उसने कहा और 'मिसिर-मिसिर' की हांक लगाने लगा. एक बूढ़ा आदमी धड़धड़ाते हुए निकला और इशारा पाकर उनसे बैग ले लिया.

—तो अभी चलता हूं , बेटे! उसके आवभाव को ताड़कर बुझते स्वरों में बोले.

—ठीक है, जाइये. . . कहकर वह सीधे भीतर चला गया.

उन्हें बड़ा खराब लगा. डाक्टर बनने वाली अपनी बड़ी बेटी, इंजीनियरिंग पढ़ रहे उससे छोटे बेटे. . . की शिष्टता अनायास उभर गयी. यहां और वहां अंतर थोड़ा स्पष्ट हुआ. थोड़ी ही देर के लिए सही, मगर आत्म-तृप्त होते गेट से बाहर निकल गये.

जुलाई का खुला आसमान. दहकती दोहपरी. दुबकी हवा. पसीने से लथपथ शरीर. तीखी प्यास. आराम के के लिए छांह की व्याकुल तलाश. पैदल. . . केवल पैदल. . . दूर दिखते एक पार्क की ओर.

★ ★

माली ने थपथपाया. काठ की बेंच से हड़बड़ा कर उठे. जिस अशोक की छांह में लेटे थे, वह पूरब की ओर दूर तक फैल गयी दिखी. शाम की क्षीण लालिमा का जल्दी ही अंत दिखा. जल्दी से चेहरे की सफाई की और तेजी से चल पड़े.

धर्मेंद्र बाबू को मुलकातियों से घिरे देखा. उनमें जिनकी ओर भी वे मुखातिब होते, उन्हें गिड़गिड़ाते और फरियाद सुनाते पाया. कुछ गये तो कुछ आये

भी. जो भी आये कुछ न कुछ लिये ही आये, फलों की टोकरियां, मिठाइयों के डिब्बे और प्लास्टिक के बंद बर्त्तनों तथा बैगों में न मालूम क्या-क्या!

उन्हीं सलाम दागने तथा भेंट चढ़ाने वालों के बीच खड़े होकर शशीश बाबू अपने मित्र को देखते जा रहे थे—रुआबदार भरा चेहरा, गालों और बालों पर चमक,. कनपटी के पास सफेद बाल, मोटे फ्रेम का चश्मा, चमकता सूट, तोंद का उभार...... दस ही वर्ष पहले तो मिला था— दरभंगा स्टेशन पर. इतने ही दिनों में इतना अंतर! सोच ही रहे थे कि आंखें चार हो गयीं.

—अरे भाई तुम!

—हांऽ. . . शशीश बाबू की आंखें चमक गयी. पास जाने के लिए लोगों ने रास्ता दे दिया. धर्मेंद्र बाबू ने बैठे-बैठे हाथ बढ़ाया जिन्हें हथेलियों में लेकर सामने की कुर्सी पर बैठते और विभोर होते बोले— कैसे हो?

—देख ही रहे हो, जरा भी फुरसत नहीं. थोड़ी ही देर पहले आया. ठीक से किसी से बात भी नहीं की कि मंत्रीजी का फोन आ गया. इमरजेंसी तो और जान खा रही है. खैर, अपनी सुनाओ! . . .

—अच्छा ही है. यों अपना क्या, वही हाई स्कूल और. . . .

—वही छात्रों की चरवाही! खुद वाक्य पूरा करके दांत निपोर दिये.

—तुम्हारे हेड मास्टर तो मिस्टर प्रसाद ही हैं? उनके मनोभाव को ताड़कर चालाकी से प्रसंग बदला.

—हां, संभलते हुए बोले.

—अरे भाई, जोंक है जोंक! लास्ट इअर एक्सटेंशन के लिए आये थे. जब तक करवा नहीं दिया, काहे को छोड़ें. खैर, अब तो रिटायर करने ही वाले होंगे?

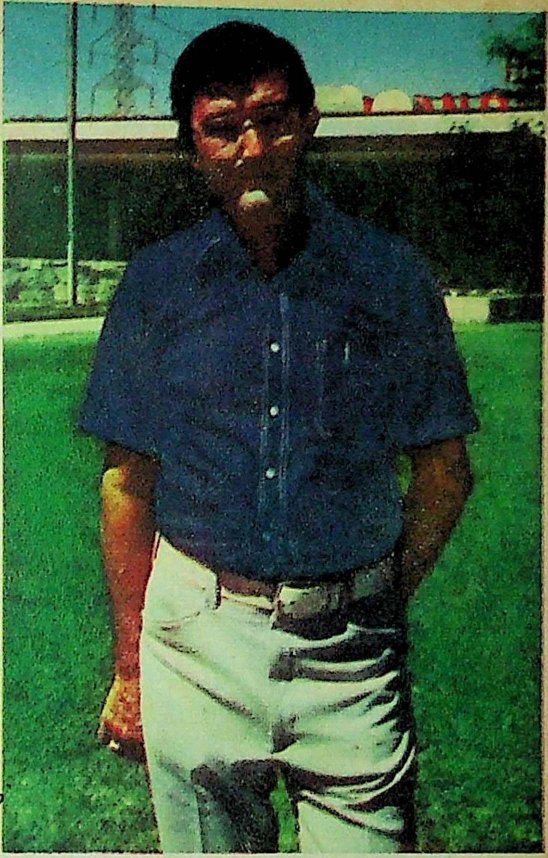
—हां, करीब दो महीने बाकी हैं.

—अच्छा समझा. यों इस समय सब स्ट्रिक्ट हो गये हैं. बट आई विल टेक इट ऐज माई वोन वर्क.

आहिस्ते से बोले. मुलकातियों को चले जाने के लिए कहा. मिसिर पर उनकी देखभाल करने का भार सौंप, ड्राइवर को गाड़ी लाने का इशारा किया. और गाड़ी के आते ही फुर्र-से उड़ गये.

★ ★

कोठी में प्रवेश करने के पहले ही ठिठक गये. पूरा फर्श गुदगुदे कालीन से ढंका था. झुक कर जूता खोलने ही वाले थे कि मिसिर ने मना किया. सकपका कर संभले और भीतर आ गये. लंबे-चौड़े खूबसूरत कमरे, देशी-विदेशी मनोहर चित्रकारी, बेलजियम ग्लास का चांदी से मढ़ा बड़ा-बड़ा आईना, गोदरेज की आलमारियां, ढेर-से स्टील के बर्त्तन, पंखे, फ्रीज, टेलीविजन सेट, रेडियो.....रेशमी झालरदार परदे, रंग-बिरंगी बत्तियां. . . . देख-देख कर विस्मय से भरते रहे—म्युजियम में पहली बार आये देहाती बच्चे-से! एकाएक पश्चिमी कोने में टंगे फ्रेम-चित्र पर नजर पड़ी. एक रूपसी के हाथ में हाथ डाले फूलों की क्यारियों में धर्मेंद्र बाबू खड़े थे. बगल में एक और चित्र था. सूखी मालाओं से ढंके



● मुरलीधर जालान

रहने के कारण आकृति स्पष्ट नहीं हुई. कुछ सोच कर पास गये. मालाओं को उठाया. पांखुरियां झरने लगीं. चित्र में रति थी—परिचित मुस्कान में! मन भारी हो गया.

मिसिर को नाश्ता लाते देख संभले. हाथ-मुंह धोकर टेबल के पास आये. नाश्ता के वक्त मिसिर ने अपने को उन्हीं के इलाके के निवासी होने की बात बतायी. बड़े प्यार से थोड़ा अधिक खाने का आग्रह किया. मगर कहां खा सके! मन तो न मालूम कहां-कहां भटक रहा था !.....

चाय के समय मिसिर से रति के बारे में पूछा. बार-बार कुरेदने पर पता चला कि धर्मेंद्र बाबू के कुव्यवहार से तंग आ कर करीब नौ वर्ष पहले वह बिजली के तार से सट गयी. मगर किसका क्या बिगड़ा? उसका इकलौता बेटा मौज मार ही रहा है! प्राइवेट बीवी सामाजिक हो ही गयी है. सब कुछ और भी नंगा हो गया है. . .

अपराध-भार से मन दबने लगा. पश्चाताप हुआ तो होता ही रहा— काश, तब उसकी भावना की कदर की होती! उसे समझा-बुझा कर धर्मेंद्र के लिए राजी न किया रहता! . . .

किसी बच्ची की चहचहाहट ने अतीत फिर छीन लिया. उठा कर खिड़की के पास आये. एक सात-आठ वर्ष की सजी-धजी बच्ची आया की अंगुली थामे उधर ही आ रही थी. धर्मेंद्र की छोटी बेटी होगी, उन्होंने सोचा.—कौन हैं आप? उन्हें देखते ही वह तन गयी.

परिचय दे कर स्नेह उड़ेला. धीरे-धीरे वह घुलने-मिलने लगी.

—लो बेटी, पार्क से आते वक्त एक बाल-पत्रिका खरीदी थी, उसे बढ़ाते हुए बोले.

—नौट सो गुड अंकल! आई हैव मेनी बेटर मैगजिंस दैन दिस वन!

जल्दी-जल्दी पन्ने उलटती हुई बोली. शशीश बाबू बुझ गये. कुछ क्षणों के लिए कुछ भी कहते नहीं बना. फिर संभलते हुए बोले— तो और क्या लोगी बेटी?

—कहूंगी, मगर पहले मुझे पम्मी कहिए!

—क्यों?

—छिः यह भी नहीं जानते! बेटी तो देहाती बोलते हैं!

—तुम्हें किसने बताया?

—मम्मी ने!

—ओऽ. . . बनावटी मुस्कान के साथ चुप हो गये.

—मेरे लिए वह रेकार्ड ला देंगे, अंकल?

—कौन-सा?

—जूली का वह—माई हार्ट इज बीटिंग. . . वह झूमकर गाती हुई बोली.

जवाब नहीं दे सके. चेहरे पर रूक्षता फैलने लगी. जिसे बिना देखे पम्मी एकदम मचल गयी—तो ला देंगे न अंकल?

—हां, ला दूंगा. . .मगर इससे करोगी क्या? एका-एक पूछ लिया.

—बजाऊंगी, गाऊंगी और डांस करूंगी. आप डांस नहीं करते हैं, अंकल?

—नहीं, उनका चेहरा लाल हो गया.

—तो आप भी देहाती हैं!

और कुछ वह नहीं बोल सकी. आया ने उसे पास बुला लिया और उसके साथ दूसरे कमरे में चली गयी. अपने छोटे लड़के से, जो सैनिक स्कूल में दाखिला के लिए चुन लिया गया था, पम्मी की तुलना फिर करने लगे. कैसे भी मेल मिला ही नहीं. अपना-अपना अर्जन— अपनी-अपनी उपलब्धि! फिर सोचने लगे.

★ ★

फाटक के पास एक लाल कार रुकी. उसमें से जो सूटेड-बूटेड अधेड़ पुरुष उतरा, उसे पहचान गये. वह उनके ही इलाके का कुख्यात स्मगलर हदीस था. कुछ वर्ष पहले उसे गांजे-अफीम के साथ गिरफ्तार होते देखा था और तब से आज ही नजर पड़ी थी. उसके पीछे जो औरत उतरी, उसे भी पहचान गये. पम्मी की मम्मी थी. नाइलोन की साड़ी. स्लीवलेस ब्लाउज. ढेर-सारे आभूषणों से लदी.

एकाएक क्या सूझा कि बाथरूम में खिसक गये. खिड़की की फांक से उन्हें देखा. विभिन्न सामानों से भरे बास्केट लिये ड्राइवर और उसके पीछे एक बड़ी अटैची उठाये हदीस को कोठी की ओर बढ़ते देख पम्मी की मम्मी पिछली सीट की ओर लपकी. अकेले बैठे किसी बड़े आफिसर-से दिखते आदमी को जल्दी से चुंबन दिया और इठला कर उससे विदाई ली.

—बोर तो नहीं हुए? नौ बजे लौटकर जूते खोलते धर्मेंद्र बाबू ने कहा.

—नहीं भाई, पम्मी और उसकी मम्मी के समीप कोई बोर हो सकता है!

बिल्कुल सहज ढंग से उन्होंने व्यंग्य कसा जिसे बिना लखे धर्मेंद्र बाबू बोले—दोनों हैं ही ऐसी ही. सचमुच रति के बाद यह औरत मेरे जीवन में नहीं आती तो उसके गम में डूबकर मैं कहीं का नहीं रहता भाई!

कह कर चुप हो गये. कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद भावुकता में बहने लगे. रति की कर्तव्यनिष्ठता और परायणता की हल्की-सी झलक दी और पम्मी की मम्मी की प्रशंसा के पुल बांधने लगे. उसके बाद देश की वर्तमान परिस्थिति में लौटे. सारी समस्याओं की छिछली व्याख्या की. करीब आधा घंटा गुजर गया. केवल सुनाते रहे. सुनने का मौका ही नहीं दिया. उसके व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन के प्रति कोई भी जिज्ञासा प्रकट नहीं की. उनकी सारी छाप शशीश बाबू के चेहरे पर दिख रही थी.

टेलीफोन की किरकिराहट! चपरासी ने दौड़ कर चोंगा थमा दिया. बात करते ही खिल गये—थैंक यू. . . एस सरटेनली. . . हां-हां, क्यों नहीं. . . जब भी कहिये जैसे वाक्य-खंड चमक-चमक कर उछालने लगे. पम्मी की मम्मी भी आ गयी.

—बात कर लो डार्लिंग! लेबर कमिश्नर श्रीवास्तव हैं.

चोंगा पकड़कर वह चहकने लगीं. परसों रात में खाने-पीने के लिए उन्हें निमंत्रित किया. फुरसत पाते ही शरारती हो गयी— कोई बनाना सीखे तो आप से सीखे! इतनी अच्छी खबर पायी और बिना बताये चोंगा पकड़ा दिया!

—इसमें बनाने की क्या बात है डार्लिंग! अपनी मेहनत का फल अपने से सुनने में मजा है!

—क्या बोल रहे हैं?

—ठीक ही तो बोल रहा हूं, डार्लिंग! तुम नहीं भिड़ती तो अपन थर्ड डिविजनर को 'सेल्स एन्ड परचेज आफिसर' जैसा इमपारटेंट जाब मिलता! बोलो? उसकी बाहें थामकर उसे नजरों से पीने लगे.

—अच्छा आप ही सही, अब चलिए, इनको भी लेते आइए, आपका लाड़ला भी आ ही गया है, लेट अस सेलिब्रेट द आकेजन!

—यस वंडरफुल आइडिया! मौके बार-बार नहीं आते! . . . . . . चलो भाई! उनकी ओर उमड़ते हुए बोले. पम्मी की मम्मी चली गयी थी.

डाइनिंग टेबुल के पास भी उनकी उदासी नहीं गयी. धर्मेंद्र बाबू ने बार-बार उकसाया. 'इनर्ट' कहकर हंसी की, मम्मी ने व्यंग किया. मगर न उन्होंने बियर लिया, न जिन, न स्काच और न ह्विस्की ही. दो-तीन बार मुस्करा दिये. छिटफुट मजाक कर लिये. वह भी न मालूम कैसे! क्योंकि वह खाना, वहां की तीखी गंध, उनका आयातित व्यवहार. . . सब कुछ बिल्कुल अपरिचित थे उनके लिए!

भोजन के बाद अकेले पड़ गये. बिछावन पर बैठकर धर्मेंद बाबू के आने की विकल प्रतीक्षा की. ऊबकर बाहर

आये. मखमली लान में कुछ देर टहलते रहे. लाल-लाल फूलों से लदे बोगेन बेलिया की छांह में पत्थर की एक बेंच थी. वहीं बैठ गये. पुरानी घटना फिर याद आ गयी.

यही धर्मेंद्र था. घंटों पास बैठा रहता था. जब तक मतलब-बेमतलब की बातें नहीं करता था, तब तक खाना हजम नहीं. मगर आज? सचमुच उसकी वह मित्रता छिछली नदी की बाढ़ की तरह उमड़कर सूख गयी शायद!

सोचते ही आने का प्रयोजन निष्फल दिखने लगा. मगर और प्रयत्न करके थक गये थे. बाढ़ ने घर छोड़कर सब कुछ निगल लिया था. तिस पर समय कम और सारे आत्मीय लोगों के हाथ खाली. सो हारकर ही तो यहां आये थे अतः आने का पछतावा नहीं हुआ. एकदम निराश भी नहीं हुए. एकाएक उठे और जैसे ही चलने को हुए कि धोती बोगेन बेलिया की टहनी में उलझी रहने के कारण चर्र-से फट गयी. बुरी तरह झल्लाये और टहनी को नोचकर फेंक दिया.

बिछावन पर लेटते ही एक और घटना याद आयी. बी. ए. के फार्म भरने का अंतिम दिन था. धर्मेंद्र को परीक्षा फीस और कालेज ड्यूज चुकाने के लिए सौ रुपये घट रहे थे. कोई भी जुगाड़ नहीं लग रहा था. सो बुरी तरह परेशान थे. उस विकट परिस्थिति में प्रिंसिपल साहब की दया की बात उन्हें सूझी थी. यों छूट के मामले में वे सख्त थे. फिर भी उन्होंने धर्मेंद्र को प्रोत्साहित किया था. आवेदन-पत्र लिखकर उनसे दस्तखत करवाये थे और साथ लिये उनके चेंबर के पास आ गये थे.धर्मेंद्र को भीतर घुसने का साहस नहीं हो रहा था.दरवाजे के पास जाना था. परदा पकड़कर खड़ा होता था और थूक गटक-गटक. कर उन्हें देखने लगता था —भाई, साली गरीबी गठिया होती है. इससे पीड़ित आदमी अकड़ नहीं सकता. ठीक से कहीं बात नहीं कर सकता. हकला कर स्थिति हास्यास्पद बना सकता है बस! अंत में उसने कहा था.

—गठिया की ऐसी-तैसी! चल मेरे साथ! कहकर उसकी बांह पकड़ ली थी. प्रिंसिपल साहब को सब कुछ समझाया था. और दीन छात्र-कोष से पचास रुपये पाकर बाहर आ गये थे. पचास की समस्या फिर भी रह ही गयी थी.

एकाएक पिताजी आये थे. गरम कपड़े और किताब खरीदने के लिए उन्होंने साठ रुपये दिये थे. उनके जाते ही उन्होंने रुपये बढ़ा दिया था. फिर वही तीखा जाड़ा, वही पतला कंबल. लाचारी में दोनों एक ही बिछावन पर. शारीरिक गर्मियों का विनिमय. सचमुच मधुर दोस्ती के क्या दिन थे वे भी जहां दुख और अभाव भी प्रिय थे! और सुख का तो कहना ही नहीं!....

—नींद नहीं आ रही है क्या?

चुपके से आकर धर्मेंद्र बाबू ने उन्हें चौंका दिया. हुलस कर बैठे. स्लीपिंग ड्रेस में उन्हें थिरकते देखा.

—कोई खास बात है क्या? उन्होंने फिर पूछा.

—हां ऽ... उन्होंने लंबी सांस छोड़ी.

—ओ आई सी ऽ..., हेड मास्टर वाली बात ही न?

—नहीं भाई!

—तब क्यों परेशान दिखते हो?

—धर्मेंद्र, मेरा छोटा लड़का सैनिक स्कूल में दाखिला के लिए चुन लिया गया है और उसके लिए कुछ रुपये चाहियें. टूटे बांध के पानी की तरह एकाएक बह गये.

—कितने? उन्होंने तपाक से पूछा.

—यही करीब एक हजार. गला साफ करके उन्होंने कहा.

—एक हजार! मुझे तो पता है कि तुम्हारे जैसे लो इनकमवालों के लड़के वहां मुफ्त में पढ़ते हैं!

—यह तो बाद की बात है, भाई! अभी तो उसकी पोशाक के ही दो दर्जन सेट चाहिये.

—नो, यू आर एग्जैगेरेटिंग द फैक्ट (तुम सच्ची बात को बहुत बढ़ा कर कह रहे हो)! खैर, फिफ्टी... एस फिफ्टी एंड थर्टी इअर्स...... बड़बड़ाते हुए अपने कमरे की ओर तेजी से बढ़ गये.

शशीश बाबू के लिए पहेली अबूझ नहीं रही. समझते ही दर्द से वैसे छटपटाने लगे जैसे ठिठुरते आदमी पर किसी ने उबलता पानी बरसा दिया हो!

—लो गिन लो, पूरे एक हजार हैं! सौ-सौ के नोटों का पतला बंडल फेंकते बोले. कुछ क्षण उन्हें देखने के बाद उन्होंने धर्मेंद्र बाबू के विकृत चेहरे की ओर देखा और सारी कड़ुवाहट को भरसक छिपाकर भी खुल गये— क्या गिनूं भाई! मैं तुम्हारे पास सुदामा बनकर आया था, शाइलाक बनकर नहीं! अतः रख लो, कभी काम आयेंगे.

वाक्य पूरा होते ही नोटों का बंडल उनकी ओर खिसका दिया. तुरंत अपना बैग उठाया और तेजी से बाहर निकल कर चलने लगे. सड़क पर आने के बाद पीछे से पुकारे जाने की आवाज सुनाई पड़ी. मुड़कर देखा— कहीं कोई नहीं, सिवाय गलियों में आवारा-से फिरते कुछ भौंकते हुए कुत्तों के!.... ☐☐☐

पो. एफ. आर. आई., धनबाद.

एक छोटी कहानी

—अफसोस! चूहे ने कहा, दुनिया दिन-ब-दिन छोटी होती जा रही है. आरंभ में तो यह इतनी बड़ी थी कि मुझे भय लगता था. मैं भागता रहा, और उस समय बहुत प्रसन्न हुआ था जब आखिरकार मुझको दूर पर दाहिने-बायें दीवारें दिखाई दीं. लेकिन यह लंबी दीवारें इतनी तेजी से तंग हुई हैं कि सरकते-सरकते अब मैं अंतिम कोठरी में आ पहुंचा हूं और इस कोठरी के सिरे पर चूहेदानी लगी हुई है, जिसमें मुझको दाखिल होना ही पड़ेगा.

—तुमको केवल अपनी दिशा बदल देनी है, बिल्ली ने कहा और उसे खा गयी. ☐

(काफ्का की एक लघुकथा का अनुवाद :
मुनव्वर हुसैन 'गुबार')

धब्बा

श्रवणकुमार

गाड़ी में इतनी भीड़ थी कि लगता था, हम उस पर चढ़ नहीं पायेंगे. डब्बों में लोग ठुंसे पड़े थे.

आखिर एक डब्बे में थोड़ी-सी जगह दिखी तो हम दूसरों को रौंदते-से आगे बढ़ने लगे. लेकिन हम ज्यादा बढ़ भी न पाये, क्योंकि दूसरे कैबिन के पास हमें एक ने आगाह किया—संभल के, टट्टी है! वाकई, किसीके पांव तले कुचले जाने से वह जगह बेहद गंदी दिख रही थी. फिर भी बैठने वाले नाक को कपड़े से ढांपे, मुंह दूसरी तरफ घुमाये, वहीं पास की सीटों पर बैठे हुए थे.

हमारी मजबूरी थी. हम पहले कैबिन में बर्थों के बीच की जगह में खड़े हो गये.

थोड़ी देर खड़े रहे, तो एक बुढ़िया ने खुद ही कहा—यहां बैठ जाओ. और वह थोड़ा-सा सरक गयी. उसके सामने वाली बर्थ पर एक और बुढ़िया बैठी थी. वह भी थोड़ा सरक गयी. जिससे हम दोनों को आमने-सामने बैठने की जगह मिल गयी.

बैठ गये तो गौर किया कि मेरे साथी की बगल में बैठी बुढ़िया कुछ अजब-सी दिख रही है. कहां तो मेरे सूट-नैकटाई-धारी साथी का भरा-भराया शरीर और कहां उस बुढ़िया की सिकुड़ी-सी, कीचट हुई, गष्ठरी-सी काया. और तो और, उसके चेहरे की खाल इस कदर खिंची हुई थी कि आसानी से यह कहना भी मुश्किल था कि वह किसी उम्रयाफ्ता का चेहरा है या कि एक बच्ची का. मेरी बगल में बैठी बुढ़िया भी किसी मायने में दूसरी से ज्यादा तंदुरुस्त न थी, पर उसकी खाल उस तरह खिंची हुई नहीं थी.

मेरे वाली बर्थ पर, मुझसे थोड़ा हट कर, एक जवान औरत भी बैठी थी, जिसके ऐन सामने एक जवान आदमी बैठा था. वे अकसर किसी-न-किसी बात को ले कर आपस में ठट्ठा करते थे.

मेरे साथी ने सहज ही उस औरत-से उसके बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली, और फिर वह उसी सहज ढंग से अपनी बगल में बैठी बुढ़िया से भी बतियाने लगा.

—कहां जा रही हो?

—हाथरस!

—वहां क्या घर है?

—नहीं, काम के लिए.

—कैसा काम?

—क्लेसर पर.

'क्लेसर' से उसकी मुराद 'क्रेन क्रशर' से थी. यह शब्द मैंने उसी दिन अपने साथी के गांव में सीखा था. वहां ऐसे कई 'क्लेसर' थे. मैं साथी के साथ उसके गांव से ही लौट रहा था.

—क्या तुम्हारे अपने यहां क्लेसर पर काम नहीं? लोग तो काम के लिए उलटे वहां जाते हैं.

बुढ़िया ने बड़ी लाचारी से सिर हिलाया. उसका इशारा प्रारब्ध की ओर था.

—क्या दिहाड़ी देते हैं?

—पता नहीं. लड़कों ने तय किया है. शायद सौ रुपये पर दो रुपये. चार-छह रुपये दिहाड़ी बन जायेंगे.

—तुम गांड्डे लगाओगी?

—हां.

'गांड्डे लगाने' से उसका अभिप्राय मशीन में गन्ने डालना था.

—यह क्या गांड्डे लगा पायेगी? मैंने हैरत दिखायी.

—अरे, इसमें हैरान होने की क्या बात है? गांव में देखा नहीं, यह काम तो छोटे-छोटे बच्चे भी कर लेते हैं.

मेरे साथी ने ठीक कहा था. मैंने गांव में कई छोटे-छोटे सात-आठ वर्ष की उम्र के बच्चों को गन्ने छीलते, 'क्लेसर' में गांड्डे लगाते और भट्टी में खोई-पत्ती झोंकते देखा था. मुझे यकीन नहीं हो रहा था कि इस युग में भी इतनी कम उम्र के बच्चों को रात-रात भर इस तरह के काम करने पड़ते हैं. मेरे साथी ने भी उस कम उम्र में रात-रात भर ये सब काम किये थे, और फिर सुबह बस्ता उठा कर दो कोस दूर स्कूल में पढ़ने जाता था. यह सिलसिला तब तक चलता रहा, जब तक कि उसने मिडल पास नहीं कर लिया. बाप गरीब हरिजन. मां बहुत छुटपन में ही मर गयी थी. बस, किसी तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा. मेरे साथी ने मुझे यह भी बताया था कि इन 'क्लेसरों' पर अधिकतर हरिजन, यानी चमार, ही काम करते हैं. मेरे साथी को 'चमार' शब्द से खास चिढ़ थी. —क्यों लोग चमार को इतनी-इतनी हिकारत से देखते हैं? उसने मुझे पिछले दिनों गांव की ओर बढ़ते हुए पूछा था. —किसीको गाली देने के लिए भी उन्हें इससे बढ़िया शब्द नहीं सूझता.

साथी के प्रश्न ने मुझे चक्कर में डाल दिया था. समूची समाज-व्यवस्था को चुनौती थी. अपने मन को टटोलने की भी बात थी. हमारे समाज में, दरअसल, यही सब होता रहा है. हुनरमंद आदमी के प्रति हमारे यहां हमेशा एक तरह की उपेक्षा बरती गयी है. राज, बढ़ई, ठठेरा, लोहार—इन सबको समाज ने निचला दरजा दिया. और तो और, ये हुनरमंद लोग स्वयं एक-दूसरे को कैंडी नजरों से देखने लगे. सुनार ठठेरे से अपने को बड़ा मानने लगा, ठठेरा लोहार से अपने को एक बालिश्त ऊंचा समझने लगा. और फिर चमार? वह भी कूड़ा कमाने वाले से दो हाथ की दूरी बनाये रखने लगा. यानी सब इस बात का गर्व पाने की फिराक में पड़ गये कि वे किसी से दो अंगुल बड़े हैं. यह कैसी विडंबना है हमारे समाज की! सबके शरीर पर ठप्पे लगे हैं और सब अपने-अपने टप्पे को सुंदर मान रहे हैं.

मैं अपने साथी को कोई उत्तर नहीं दे पाया था, लेकिन कुछ याद कर मन ही मन कुढ़ने लगा था. मुझे अपने कस्बे के उस कुबड़े ब्राह्मण की एक बात अब भी कचोटती थी. शक्ल ऐसी, जैसे किसीने दो पाटियों के बीच भींच दिया हो, पहनावा ऐसा जैसे किसी ढाबे में तमाम उम्र बरतन मलता रहा हो. हमारे घर से थोड़ी दूर उसकी तंबाकू की एक छोटी-सी दुकान थी. वहां अकसर वह खुद ही तंबाकू कूटता दिखायी देता. उसकी बीवी हमारे यहां 'हुंदे' लेने आती थी. हम उसे लिहाज से मौसी कहते थे.

एक दिन मौसी हुंदा लेने नहीं आयी तो मां ने मुझे ही दो चपातियां दे कर के वहां भेज दिया. इत्तिफाक से उस समय वह ब्राह्मण,यानी मौसा, भी घर में मौजूद थे. मुझे मौसी की ओर चपातियां बढ़ाते देख कर वह एकाएक दहाड़ते-से बोले--अरे, यह कब से? पैसा हो गया तो इससे इनकी जात भी बदल गयी? हूं तो छीबे ही न! छीबे, यानी कपड़ों पर बेल-बूटों के ठप्पे लगाने वाले. कब? कहां? शायद मेरे परदादा यह काम करते थे. लेकिन मेरे दादा इस क्षेत्र के एक जाने-माने डाक्टर थे और मेरे पिता एक जाने-माने पत्रकार. लेकिन कपड़ों पर ठप्पे लगाना या कपड़े सिलना क्या नीच जाति का काम है? जाने क्यों मेरे मन में इस बात को ले कर एक प्रकार का भय-सा बैठा रहता है. क्या पता कहां यह . . . राज . . . ? लेकिन फिर सोचता हूं, इस बात से डरूं क्यों? मैंने इस तथ्य का कभी कोई गलत फायदा तो उठाया नहीं !

★ ★

गाड़ी पैसेंजर होने की वजह से हर स्टेशन पर रुक रही थी. बीच में दो-एक फ्लैग स्टेशन भी आये थे, जहां हरी झंडी पाने के कारण गाड़ी ने अपनी रफ्तार बरकरार रखी थी. इस बीच मुझसे थोड़ा हट कर बैठी वह जवान औरत ऊंघने लगी थी और उसके सामने बैठा वह जवान आदमी कभी आंखें खोलता था, कभी बंद करता था.

मेरे साथी को एकाएक जाने क्या सूझी कि उसने अपनी बगल में बैठी बुढ़िया से, थोड़ा झुक कर, पूछा--चमार हो?

बुढ़िया की आंख पहले तो एक सैकंड के लिए थिरकी, लेकिन फिर सहज ही उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया.

साथी की जैसे कि हिम्मत बंधी, उसने तत्परता दिखाते हुए कहा--मैं भी चमार हूं.

अपनी आंखें बंद करने और खोलने वाला वह जवान, साथी की स्वीकारोक्ति से एकाएक सतर्क हो गया और साथी को घूरने लगा. उन दोनों बर्थों पर बैठे बाकी लोग भी उसकी तरफ गौर से देखने लगे.

साथी ने बुढ़िया को अपने गांव का परिचय दिया और फिर उससे गांवड़ी बोली में बतियाने लगा. बातों-बातों में उसने बुढ़िया को यह भी बताया कि वह अब दिल्ली में रहता है और अफसरी ओहदे पर है.

मैं साथी के साहस पर हैरान था. कितने लोग ऐसे



● भगवानदास ज्यानी

हैं जो अच्छी पोजीशन पर पहुंच कर ऐलानियां कह सकें कि वे चमार या कहार परिवारों से हैं? स्वयं मैं यह कभी ऐलानियां स्वीकार नहीं कर सका कि मेरे पूर्वज छीबे थे. और तो और, छीबों के सामने भी मुझे ऐसा स्वीकार करने की कभी हिम्मत नहीं हुई, और मैंने उनके सामने यही जाहिर किया कि मैं बहुत ऊंचे वर्ग से हूं.

गांव में मेरे साथी ने मेरा अपने एक भतीजे से परिचय करवाते हुए कहा था कि यह बी. ए. पास है, और एम. ए. की तैयारी कर रहा है. भतीजे की वेश-भूषा कुछ ऐसी थी कि वह पढ़ा-लिखा बिल्कुल नहीं दिखता था, बल्कि अंग्रेजी भी वह बहुत कम समझता था. मेरे यह पूछने पर कि क्या कालेज में तुम्हें किसी तरह के भेद-भाव का सामना करना पड़ता है, उसने बिना अधिक सोचे बताया था कि उसने अनुसूचित जाति से संबद्ध होने का कभी कोई लाभ ही नहीं उठाया और न ही उठाना चाहता है, और यही कारण है कि कोशिश करने के बावजूद अब तक वह किसी प्रकार की नौकरी नहीं पा सका है.

--लेकिन जब तक बेकार हो, तब तक अपने गांव में ही कोई काम क्यों नहीं कर लेते? मैंने उसे सुझाव दिया था.

--कैसा काम? उसने विस्मय से पूछा था.

--क्लेसर पर ही.

गांव में घूमते समय एक क्लेसर मालिक ने मुझे बताया था कि उसके यहां लोग बत्तीस रुपये दिहाड़ी तक बना लेते हैं, यद्यपि मालिक का वह दावा उसके यहां काम करने वालों ने वहीं गलत साबित कर दिया था. फिर भी यह तो था कि वे बीस रुपये दिहाड़ी तक बना

लेते हैं. मुझे लगा था आज के हालात में गांव में बैठे-बिठाये बीस रुपये रोज कमा लेना कोई कम नहीं है.

—काम में तो कोई बुराई नहीं है,' मेरे साथी के भतीजे ने बड़ी हलीमी से कहा था—'लेकिन आप देख ही रहे हैं कि इन तथाकथित बड़ी जाति वालों का व्यवहार अब भी हमारे प्रति बदला नहीं है.

—मसलन?

—मसलन यह कि चारों तरफ खेत ही खेत हैं, लेकिन उनमें हमारा कोई हिस्सा नहीं.

—यानी यह कि तुम लोगों में से किसीके पास अपनी कोई जमीन नहीं?

—बिलकुल नहीं. यहां तक कि हमारी भैंसों के चरने के लिए भी कोई जमीन नहीं है.

एक अजनबी के गांव में आने की खबर पा कर लोग उत्सुकतावश वहां जुटने लगे थे, और मेरे बारे में सही जानकारी न पा सकने के कारण कई तरह की तुक लगा रहे थे.

लेकिन मैंने अपने साथी के भतीजे के साथ अपनी बात जारी रखी थी. मुझे याद था कि हमारे कस्बे में घोसी हमारी गाय चराने ले जाता था और जिस दिन गाय चरने नहीं जाती थी, उस दिन वह ढीली पड़ जाती थी.

—भैंसें चर न पायें, तो उन्हें क्या खिलाते हो?

—बस, ऐसे ही खूंटे से बंधी रहती हैं. हम लोग स्वयं ही खेतों से घास काट लाते हैं और कभी-कभी जब खेत वाले उसके लिए भी मनाही करते हैं, तब लड़ाई की नौबत भी आ जाती है.

मुझे याद आया, ऐसी लड़ाई की अखबारों में इधर कई खबरें छपी हैं, और कहीं-कहीं तो हरिजनों को अपनी जान से भी हाथ धोने पड़े हैं.

वहां जो लोग जुट पड़े थे, उनमें अब केवल हरिजन ही नहीं थे, जाट, ब्राह्मण, जोगी, बाल्मीकि— सब तरह के लोग थे, और सब मेरे बारे में अटकलें लगा रहे थे. एक को तो मैंने धीमे से यह भी कहते सुना था— होगा कोई यह भी झींगरे की तरह का नवीन शर्मा! झींगर मेरे साथी का गांव का नाम था, और नवीन शर्मा तो आप समझ ही गये होंगे.

नवीन शर्मा की उपाधि मेरे साथी को डंक की तरह पीड़ा पहुंचाती थी.

—नहीं, यह हमारी तरह के नवीन शर्मा नहीं हैं, आपकी तरह के पुरातन शर्मा हैं! मेरे साथी ने उन्हींके शब्दों में मेरा परिचय दिया था. . . रेडियो पर इनके कई ड्रामे आते हैं.

—तो ये डिरामा लिखने वाले हैं? एक ने सवाल किया था. क्या ये रेडियो पर बोलते भी हैं?

मेरे परिचय का प्रभाव कोई बुरा नहीं पड़ा था, लेकिन मेरे भीतर ही भीतर कुछ कुतर-कुतर-सी शुरू हो गयी थी. अगर इनको यह पता चल जाये कि मेरे कुछ सगे-संबंधी अब भी अपना वही परंपरागत पेशा— यानी कपड़े पर रंग चढ़ाना या उस पर ठप्पे लगाना— अपनाये हुए हैं, तो इन पर इसका क्या असर पड़ेगा?

अंधेरा काफी गहरा होता जा रहा था. गांव में अंधेरा वैसे भी काफी गहरा होता है. फिर यह तो है भी दिसंबर का महीना. हमारे चारों ओर जुटे हुए लोग अब धीरे-धीरे लोप होते जा रहे थे.

रात को हम सब एक ही जगह सोये थे— यानी मेरा साथी, मैं, उसके भाई तथा रिश्तेदार, तथा उसका वही बी. ए. पास भतीजा. रात को सोने से पहले मुझे वे किस्से भी बताये गये थे, जब जमींदार लोग अपने कम्मी-कमीनों को घसीट कर काम पर ले जाते थे और हुक्म-अदूली करने पर घर-बार से बेदखल कर देते थे. मेरे साथी के रिश्तेदारों ने मुझे यह भी बताया था कि कुछ हरिजनों को अब भी दो जून रोटी नसीब नहीं होती और वे गन्ने के रस से उतरने वाली 'मैल्ली' को पका कर ही उससे अपनी भूख शांत कर लेते हैं. वैसे आमतौर पर यह 'मैल्ली' सूअरों को खिलाने के काम आती है.

* *

गाड़ी अपनी उसी रफ्तार से चली जा रही थी. जो लोग जहां बैठे थे, वहीं बैठे थे; जो जहां खड़े थे, वहीं खड़े थे. खड़े हुए लोगों में जाने एक को क्या सूझी कि वह एकाएक बोल उठा— शेड्यूल्ड कास्ट्स को बहुत सिर चढ़ा लिया गया है. जहां देखो, उनके लिए जगहें सुरक्षित हैं. अब तो मामला वास्तव में उलटा होने लगा है. यहां हम तड़पते रह जाते हैं, और ये हाथ पे हाथ मार रहे हैं!

—तो इसमें बुराई क्या है? मेरे साथी ने कहा— हम भी तो सदियों से तड़प रहे थे. अब जरा हालत सुधरने लगी तो आप लोगों को परेशानी हो उठी!

—क्या ऐसा नहीं हो सकता, मैंने बीच-बचाव करते हुए कहा— कि एक बिंदु तक तो ये जगहें सुरक्षित रखी जायें लेकिन फिर बराबर का मुकाबला हो?

—हां, यह भी किसी हद तक ठीक है. वह आदमी बोला— पर यहां तो मामला और भी खराब है. ब्राह्मण के घर पैदा क्या हुए कि मुसीबत हो गयी. पिता मामूली स्कूलमास्टर थे. किसी तरह मैट्रिक करवा पाये. मैं मुश्किल से सत्रह वर्ष का था, जब से क्लर्की कर रहा हूं. इस बात को पंद्रह वर्ष होने को आये. मेरे साथ जो शेड्यूल्ड कास्ट लगा था, वह अब सुपरिंटेंडेंट है, और हर बात पर हमारी बेइज्जती करता है.

लगा, जैसे साथी मन-ही-मन बहुत खुश है.—माना आपके साथ ज्यादती हो रही है, महोदय, उसने टेक-टेक कर अपनी बात उठायी, लेकिन आपके ये तथाकथित सवर्ण लोग जो हम पर जुल्म ढाते रहे, उन्हें आप भूल गये? स्वयं बाबा आंबेडकर, जो इतने बड़े विद्वान थे, और जिन्होंने भारत को संविधान दिया, इस जुल्म से न बच सके. आप जानते हैं एक तथाकथित सवर्ण ने उनके झूठे बरतन छूने से इनकार कर दिया था?

बहस शायद ज्यादा खिंच जाती, लेकिन खिड़की के पास बैठी जवान औरत ने एकाएक आंखें खोल कर जम्हाई ली और सब लोगों की तरफ ऐसे देखने लगी जैसे कोई बहुत खराब सपना देख कर उठी हो. उसके सामने बैठे जवान आदमी ने अपनी टांगें ऐसे फैला रखी थीं, जिससे वे औरत की टांगों को छूती रहें.

मेरा साथी अब तक काफी जोश में आ चुका था. उसकी आवाज कानों पर बड़ा तीखा प्रहार कर रही थी. वह कहे जा रहा था—शैड्यूल्डकास्ट का आप मतलब समझते हैं? इसका मतलब चूढ़े चमार से नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े उन लोगों से है, जिनको ऊपर उठाने के लिए सरकार ने एक लिस्ट में शामिल कर लिया. क्या लिस्ट में शामिल हो जाना ही अपने में एक गुनाह हो गया? मैं तो कहूंगा कि उन सब तथा-कथित सवर्णों को, जो आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, उसी सूची में उतार लिया जाये.

एक बार तो मुझे लगा कि यह सुझाव बहुत बढ़िया है, लेकिन फिर एकाएक मेरे मुंह से निकला—लेकिन यह तो नाइनसाफी को और तूल देना होगा. अगर अनुसूचित जाति से ताल्लुक रखना एक स्टिगमा है, तो इस स्टिगमे को, इस कलंक को, दूर करने की बजाय, फैलाया क्यों जाये? मैं तो फिर यही कहूंगा कि जैसे-तैसे अनुसूचित जातियों के लोग एक मिनिमम स्टैंडर्ड तक पहुंच जायें, उन्हें सवर्ण मान लिया जाय. . . .

बहस का, लगता था, कोई अंत ही नहीं था. उधर हम अपनी मंजिलेमकसूद तक पहुंच चुके थे. गाड़ी से उतर रहे थे तो साथी अपने को कहने से रोक न सका—मैं तुम सवर्णों की सब चालबाजी समझता हूं. यह धब्बा तुमने सिर्फ हमारे लिए ही सुरक्षित कर छोड़ा है. . . .

□□□

एच-२५२, डी. डी. ए. फ्लैट्स,
नारायण विहार नई दिल्ली—२८.

रोटी : तीन पहलू

● गिरधारी सिंह तुरंत

(१)

वह मेंहदी रंगे बाल-दाढ़ी वाला दंतविहीन बुड्ढा था. एक सस्ते से होटल के सामने बैठा था. उसके हाथ में बाजरे की सूखी रोटी थी. उसे खाने की चेष्टा में सफल नहीं हो रहा था.

तंग आ कर वह बोला—ए रोटी! देख, तू ऐसे तंग मत कर. चुपचाप पेट में चली जा.

रोटी पेट में कैसे जाती. मुंह जाने देता तब न. उसकी ओर से कोई प्रतिक्रिया न हुई.

बुड्ढा बोला—देख रोटी, अगर तूने मेरी बात नहीं मानी तो मुझे होटल वाले से एक गिलास दूध लेना पड़ेगा.

रोटी चुप.

—अच्छा, तू नहीं मानती, तो ले, मैं होटल वाले से कहने जा रहा हूं.

रोटी बेचारी क्या कहती.

बुड्ढा क्रोध से चिल्लाया—तू क्यों मेरी इज्जत लेना चाहती है? क्या तू समझती है कि मेरे पास पैसे नहीं हैं तो कोई उधार भी नहीं देगा?

होटल वाला ध्यान से बुड्ढे की बातें सुन रहा था. अब उससे नहीं रहा गया. उसने एक गिलास दूध ला कर बुड्ढे के सामने रख दिया.

बुड्ढा रोटी के टुकड़ों को दूध में भिगो-भिगो कर खाने लगा.

(२)

वह भिखारी-सा लगता था. उसने अपने चार साल के लड़के को नंगा करके प्लेटफार्म पर लगे नल पर नहलाया. फिर उस कड़कड़ाती ठंड में वह बालक विचित्र प्रकार के व्यायाम का प्रदर्शन करने लगा. भीड़ इकट्ठी हो गयी.

एक व्यक्ति ने दया करके एक रोटी भिखारी को दी. उसने चुपचाप स्वीकार कर ली. एक बार लड़के की ओर देखा, दूसरी बार रोटी की ओर. फिर कुछ सोच कर रोटी खाने लगा. वह सारी रोटी खा गया. लड़के की लालसा भरी नजर रोटी पर लगी रही.

रोटी देने वाले ने पूछा—लड़के को रोटी क्यों नहीं दी?

उसने जवाब दिया—यह अभी बच्चा है. भूख सह सकता है. इसके अलावा, यों टुकुर-टुकुर ताकने की आदत भी उसमें डालनी है. जिंदगी में बहुत बार ऐसे मौके आयेंगे. हमारा यही जीवन है.

(३)

वह ट्रेन के डिब्बे में घुसा. एक-एक करके यात्रियों को देखता हुआ आगे बढ़ा. वह अधेड़ उम्र का व्यक्ति था. शक्ल-सूरत से भले घर का दिखायी पड़ता था.

एक जगह रुक कर उसने कहा—आपमें से किसी सज्जन के पास अगर दो-एक रोटी हो तो मुझे दे दें. दो दिन से पेट में कुछ नहीं गया.

लोगों ने हिकारत भरी नजरों से उसे देखा. सब बाबू लोग थे. उनकी नजरों की भाषा पढ़ते हुए वह बोला—बाबू लोगो, मुझे बहुत शर्म आ रही है. पर क्या करूं. मेरे पास जो पांच सौ रुपये थे वे किसीने जेब से निकाल लिये हैं. यहां किसी से जान-पहचान नहीं है. दो दिन भूखे निकाल लिये. अब सहा नहीं जाता.

लोगों की नजरों में अविश्वास था.

शहरी बाबू कुछ दे न सके. एक गरीब देहाती उसके पास आया, और अपने झोले में से भुने चने निकाल कर उसे खिलाने लगा. □

(संकलन संयोजन : इगलासिया)

अपना-अपना डर

• सुरेंद्र अरोड़ा

उसके शरीर के रोये फूल आये थे और पूंछ मोटी हो कर सीधी खड़ी हो गयी थीं. वह बार-बार मुंह को सिकोड़ कर अपनी मूंछों को फैला लेती थी और शरीर के साथ-साथ नन्हीं-नन्हीं पलकों में आंखों को भी समेट लेती थी. भय का एक तेज आरा उसके नन्हे से जिस्म के आर-पार दौड़ रहा था. सड़क के किनारे पड़े पाइपों की लंबी कतार पर वह कभी इस पाइप से उस पाइप पर और कभी उस पाइप से इस पाइप पर कूद-कूद कर तीनों ओर से होने वाले आक्रमण को रोक रही थी.

वे तीन थे और वह अकेली. गोल्फ लिंक के समानांतर चलती हुई लंबी सड़क भरी दुपहरी में अंतहीन नदी की तरह लग रही थी. सड़क के किनारे कोठियों की एक कतार की आखिरी कोठी के फाटक से वह बड़े इत्मिनान से निकल ही रही थी कि तीनों ओर से वे उस पर झपट पड़े थे. और एक ने अपने दांत उसकी गर्दन पर गड़ाये ही थे कि उसने बिजली की-सी फुर्ती से अपने शरीर को पूरी तरह समेटा और एक लंबी छलांग लगा कर इन तीनों के बीच से कूद कर सड़क के किनारे पड़े एक लंबे पाइप पर चढ़ गयी. उसकी गरदन से थोड़ा-सा खून छलक आया था और वहां एक घाव स्पष्ट दीख रहा था. वह बुरी तरह से गुर्रा रही थी. और एक पाइप से दूसरे पाइप पर कूद रही थी. और वे तीनों भरपूर शक्ति से उस पर आक्रमण करने का प्रयास कर रहे थे.

तीनों ने अपनी-अपनी 'पोजीशन' ले ली थी. उनमें से चितकबरा ज्यादा खूंखार नजर आ रहा था, उसीने अभी कुछ समय पहले उसकी गरदन पर दांत गड़ा कर उस पर वार करने की कोशिश की थी, जिसे वह पूरी सफाई से बचा कर तीनों के बीच में से कूद कर पाइप पर चढ़ गयी थी. चितकबरा पाइप के दांयीं ओर से उस पर वार कर रहा था, काला बांयी ओर से और सफेद पाइप के मुंह के सामने खड़ा हो कर उस पर भौंक रहा था. और वह गुर्राती हुई एक पाइप से दूसरे पाइप पर कूद जाती थी.

इस तरह से वह कूदती हुई काफी आगे निकल कर अंतिम पाइप पर पहुंची ही थी कि सफेद उस पर भौंक कर कूदा और चितकबरे और काले ने उसको दोनों तरफ से घेर कर चक्रव्यूह-सा बना लिया था. अब बच निकलने की किसी ओर से कोई संभावना नजर नहीं आ रही थी. उसकी पूंछ उसी तरह फूल कर खड़ी हो गयी थी और मुंह की मूंछ भी फैल कर एक जाल-सा बना रही थीं. उसने अपने शरीर को पूरी तरह इस प्रकार से सिकोड़ा मानो वह अपने अस्तित्व को स्वयं में विलीन कर लेना चाहती हो, और फिर बड़ी जोर से गुर्रा कर उन तीनों के वार को बचा कर उनके बीच में से कूद कर सड़क के बीचों-बीच आ कर खड़ी ही हुई थी कि एक लंबी मर्सीडीज गाड़ी को जोरों से ब्रेक लगे और वह जोर से मिमियाई और फुदक कर फिर पाइपों पर चढ़ गयी.

मर्सीडीज को अचानक रुकने से झटका-सा लगा और स्टीयरिंग पर बैठी महिला के मुंह से एक चीख-सी निकल गयी. अपनी सीट की बैक से लग कर उस महिला ने धीरे-धीरे आंखें खोलीं और चारों ओर का जायजा लिया और एक लंबी सांस छोड़ी—'ओ गांड, पुअर थिंग वुड हैव जस्टर बीन किल्ड', कह कर उस महिला ने अपनी गाड़ी के लुकिंग-ग्लास को घुमा कर अपनी ओर किया और झटके से बाबकट बालों को पीछे किया ही था कि वह पाइप से कूद कर उस महिला की गाड़ी के बोनेट पर चढ़ गयी. 'ओह! माई गाड.' महिला अपनी सीट पर ही कूद पड़ी. वे तीनों अब गाड़ी के इर्द-गिर्द खड़े जोर-जोर से भौंक रहे थे और वह गाड़ी की विंड स्क्रीन से बिल्कुल सट गयी थी.

यू ब्लडी... महिला फुसफुसाई और उसने भरपूर शक्ति से दोनों हाथ हार्न पर रख दिये. हार्न की आवाज सुनते ही तीनों दुम दबा कर पीछे हो गये और वह भी बोनेट से कूद कर फिर पाइपों की लंबी सुरंग के सामने जा खड़ी हुई. अब उसने अपनी पूंछ अपनी पिछली टांगों में दबा ली थी और धीरे-धीरे रोने की आवाज में म्याऊं-म्याऊं कर रही थी. उसकी गरदन के बीचों-बीच हुए वार से जो घाव हुआ था, शायद वह उसे तकलीफ दे रहा था.

—पुअर थिंग. उसके घाव को देख कर महिला के मुंह से एक छोटी-सी आह-सी निकली. उसने छोटे से हैंकी से मुंह पोछ कर सिर को झटका दिया और क्लच पर पैर रख कर एक हाथ से 'इग्नीशन की' घुमा दी और दूसरे हाथ से गाड़ी को गियर में डाल कर अपनी कोठी के फाटक की ओर मोड़ दिया. गाड़ी को बढ़ते देख वह पाइपों की लंबी और अंधेरी सुरंग में घुस गयी.

गाड़ी ने फर्राटे से फाटक के अंदर प्रवेश किया. गाड़ी को गैरेज में पार्क करते ही उन्होंने गाड़ी के लुकिंग ग्लास को अपनी ओर मोड़ कर रूमाल के कोने से आई-ब्रोज से पसीना पोंछा. फिर पर्स से काम्पेक्ट निकाल कर चेहरे पर हलका-सा पफिंग करके दरवाजे की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि नीली वर्दी से लैस एक नौकर ने फुर्ती से दरवाजा खोल दिया और झुक कर एक ओर खड़ा हो गया.

'एनी फोन राम सिंह? उन्होंने गाड़ी से उतरते हुए रोबीले स्वर में पूछा.

—जी वह चोपड़ा मेम साब का...

—ठीक है. ठीक है. देखो तुम खाना लगवाओ जा कर, हम अभी आते हैं. और वह तेजी से फाटक

की ओर वापस मुड़ गयीं. उसके म्याऊं-म्याऊं के स्वर में लगातार रोने की तेज आवाज उनके कानों से टकरा कर उनके अंदर आशंका की एक-लंबी-सी लकीर पैदा कर रही थी.

—स्टुपिड. आज जरूर कुछ होगा. इट्स ए बैड ओमन. उफ. व्हाई दज शी क्राइंग एट माई हाउस. उफ्फ! और वह पैर पटकती हुई अपनी कोठी के फाटक पर पहुंच गयीं और उन्होंने चारों तरफ नजर दौड़ायी. सड़क विकराल अजगर की तरह मुंह खोले हुए भरी दुपहर को अपनी छाती पर झेल रही थी. इक्का-दुक्का लोग या वाहन उसको रौंदते हुए गुजर रहे थे. उसका रोना उसी तरह से जारी था. वे तीनों अब उन पाइपों के किनारे खड़े थे. काला और सफेद दोनों निढाल से हो गये लगते थे. और वे सिर झुकाये कूं-कूं कर रहे थे. लेकिन चितकबरा अभी शायद उतना थका नहीं था और वह धीरे-धीरे गुर्रा रहा था. उन्हें दूर-दूर तक इन तीनों के अलावा कोई और खड़ा नजर नहीं आया. हां बस एक आवाज——रोने की आवाज लगातार उनके अस्तित्व को अपने पंजे में कसती जा रही थी.

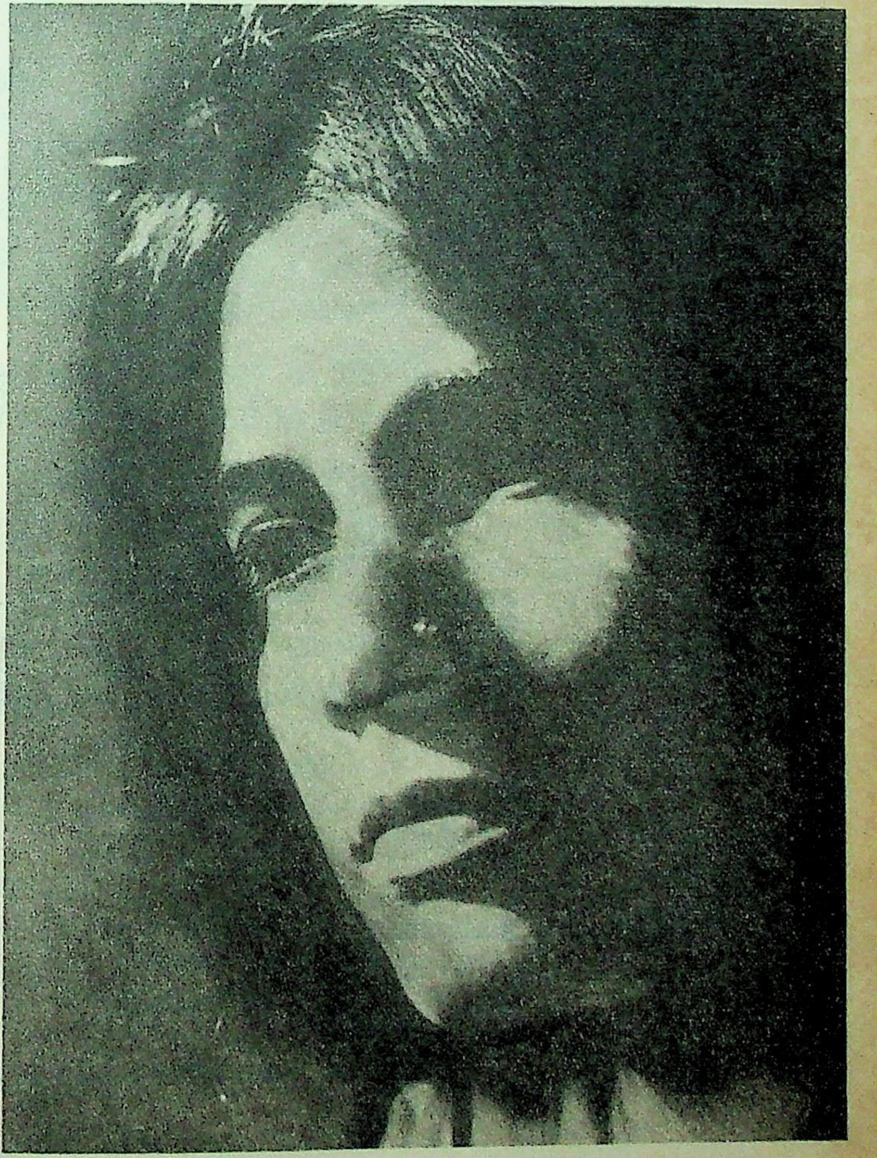
——समथिंग बैड विल डेफिनेटली हैप्पेन, समथिंग...

वह बुदबुदाती हुई आगे बढ़ गयीं और जमीन से एक पत्थर उठा कर उन्होंने पूरी ताकत से उन तीनों की ओर निशाना बना कर फेंका. हवा में उनको हाथ घुमाते देख कर ही काला और सफेद दुम दबा कर अपनी जगह से भाग खड़े हुए. लेकिन चितकबरा गुर्रा कर उछला और उनकी ओर बढ़ गया. वह घबरा कर पीछे हटीं और उन्होंने जल्दी से फाटक बंद कर दिया और जोर से चिल्लाई——राम सिंह, पूरन, जल्दी आओ. क्विक.

——जी मेम साब? और दोनों नौकर पलक झपकते ही वहां हाजिर हो गये.

——देखो वह. . .दे-देखो. उसको भगाओ राम सिंह. उसको भगाओ. वह अब कांप रही थीं.

रामसिंह ने एक बड़ी ईंट उठायी और फाटक खोल कर चितकबरे पर भरपूर वार किया. और वह कें-कें



● आर. के. अग्रवाल


जीतिये
Prestige
PRESSURE
४ प्रथम पुरस्कार विजय स्कूटर
४ द्वितीय पुरस्कार सुवेगा मोपेड
तृतीय पुरस्कार सुमीत मिक्सी
प्रेस्टिज के साथ—४ विजय स्कूटर और १०० से अधिक अन्य महान पुरस्कार.
Prestige
प्रेस्टिज प्रेशर कुकर के निर्माताओं की "महान पुरस्कार" प्रतियोगिता में !
पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण—हर क्षेत्र के लिये अलग-अलग प्रथम, द्वितीय, तृतीय और प्रोत्साहन पुरस्कार—कुल पुरस्कार १०० से भी ज़्यादा !
प्रतियोगिता और प्रवेशपत्र की पूरी जानकारी के लिए आज ही अपने नज़दीकी प्रेस्टिज विक्रेता से संपर्क कीजिए.
प्रतियोगिता का परिणाम, प्रतियोगिता बंद होने की तिथि से ६ सप्ताह के भीतर घोषित कर दिया जाएगा.
टीटी. (प्राइवेट) लिमिटेड, बैंगलोर ५६० ०१६.
जल्दी कीजिए ! आज ही अपने नज़दीक के प्रेस्टिज विक्रेता से प्रवेश-पत्र लेकर इस पुरस्कार प्रतियोगिता में भाग लीजिए !
Prestige
PREETT
दोनों एक ही हैं।
SAA/TTP/2289 R/HN

करता हुआ दुम दबा कर भाग खड़ा हुआ.

—ओह, माई गुडनेस. उन्होंने एक लंबी सांस ली और साड़ी में खुसे रूमाल से पसीना पोंछा और फाटक से बाहर निकल आयीं.

म्याऊं-म्याऊं के स्वर में उसके रोने की आवाज अब तक उसी तरह आ रही थी. उन्होंने आगे बढ़ कर उस आवाज का पीछा किया और पाइपों की लंबी अंधेरी सुरंग के मुहाने पर आधा झुक कर देखा. ये रोने की आवाज इसी सुरंग से आ रही थी. उन्होंने एक पत्थर उठा कर पाइपों की सुरंग के अंदर बड़ी जोर से फेंका. पाइपों की दीवारों से टकराहट होते ही टन्न-सी एक झनझनाती हुई आवाज ने वातावरण की निस्तब्धता को भंग किया. उसने फुर्ती से अपने को समेट कर अपने को बचाया और पाइपों की सुरंग के अंधेरे में आगे बढ़ कर उसमें विलीन हो गयी. अब वह अदृश्य हो गयी थी. लेकिन उसके क्रंदन का स्वर अब और तेज हो गया था.

उन्होंने कमान-से झुक आये अपने शरीर को सीधा किया और चारों ओर नजर दौड़ायी. लेकिन उनकी दृष्टि पाइपों की अंतहीन कतार के दूसरे छोर को पकड़ नहीं पायी—कैसे निकलेगी ये! कैसे रोना बंद होगा इसका? उफ्फ. सर्माथिक बैंड. . .कुछ बुरा जरूर होगा. सरटेन्ली. . .उस दिन भी तो यह इसी तरह रो रही थी. जिस दिन रामसिंह के साहब को पुलिस पकड़ कर ले गयी थी. अब आज फिर. . .उफ्फ! वह अस्फुट स्वर में बुदबुदाई और फिर पैर पटक कर चिल्लायीं—रामसिंह टेलिफोन डायरेक्टरी निकालो चल कर. जल्दी. और बदहवास-सी वह जल्दी-जल्दी अपनी कोठी के मुख्य द्वार की ओर बढ़ने लगीं. उसके क्रंदन की आवाज उसी तरह से पीछा करती हुई उनके रोम-रोम में सीसा घोलती जा रही थी. उन्होंने अपने कानों पर हाथ रख लिये. अब वह हांफ रही थीं. दोनों नौकर विस्फारित नेत्रों से उन्हें देखते हुए उनके साथ कदम से कदम मिलाने की कोशिश कर रहे थे. उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि ये उनकी मेम साहब के साथ क्या घट रहा है—रामसिंह, डायरेक्टरी. ड्राइंग रूम में प्रवेश करते ही वह चिल्लायीं.

—जी मेम साब! ये. . .और भौंचक नजरों से उनकी ओर देखते हुए नौकर ने डायरेक्टरी उनकी ओर बढ़ा दी.

उन्होंने फर फर करते हुए पन्नों को तेजी से पलटा और फुर्ती से बढ़ कर रिसीवर उठाया ही था कि फोन के पास कागजों पर रखा पेपरवेट उछल कर उनके पैरों पर गिर पड़ा. और वह चीख कर उछल पड़ीं और फिर बुदबुदाने लगीं—ओ गाड, ये क्या हो रहा है. ये क्या हो रहा है. . ., उन्होंने कुछ क्षणों में अपने को संभाला और झुक कर कुछ देर तक अपने पैरों को सहलाया और उठ खड़ी हुईं. उन्होंने फिर डायरेटरी के पन्ने पलट कर नंबर ढूंढ़ निकाला और जल्दी-जल्दी नंबर डयल करने लगीं.

—हेलो! फायर ब्रिगेड, मिसेज खोसला दिस एंड फ्रांम फाइव गोल्फ लिंक्स. प्लीज कम एट वंस. फौरन आइए. देयर इज ए स्ट्रे कैट विफोर माई हाउस. एक आवारा बिल्ली. मेरी जान मुश्किल में है. माई लाइफ इज इन हाट वाटर्स. फौरन आइए. हां-हां फाइव गोल्फ लिंक्स. क्या कहा? इस काम के लिए नहीं आ सकते. प्लीज ऐसा मत कहिए. मैं चार्जेस दे दूंगी. एनी एमाउंट टू हंड्रेड, थ्री हंड्रेड. आ विल पे! मैं सब चार्जेस दूंगी. मेरी जान मुश्किल में है. आप फौरन आ जाइए प्लीज. उनके हाथ से रिसीवर छूट गया था और वह बिफर-बिफर कर रोने लगी थीं. बिल्ली के रोने की आवाज अभी भी उनके रोम-रोम में सीसा घोल रही थी.

□□□

ई. जी. २३, इंद्रपुरी, नई दिल्ली—१२

एक लघुकथा

अपमान

• सीतेश आलोक

एक संपन्न घर में विवाह करके जाते समय उसने अपने रोते हुए निराश प्रेमी को समझाया—भाग्य ने हमें नहीं मिलने दिया तो क्या! मैं तन-मन-धन से तो तुम्हारी ही हूं. . .सदा तुम्हारी रहूंगी.

वियोग में निराश प्रेमी दुनिया ही भुला बैठा. नौकरी भी छूट गयी. फाके की नौबत आ गयी. वह अपनी प्रेमिका के पास पहुंचा. वह बोली— धन तो सब मेरे पति का है. मेरे पास होता तो तुम्हारा ही होता. हां! मेरा तन-मन तो तुम्हारा ही है.

प्रेमी ने अपने को संभाला. फिर एक नौकरी ढूंढ़ी. एक नई जिंदगी प्रारंभ करने की ठानी. एक दिन फिर उसे अपनी प्रेमिका की याद आयी. वह बोली—अब यह तन दूषित हो चुका है. . .अब यह तुम्हारे योग्य नहीं बचा. हां, मन से मैं तुम्हारी ही हूं. तुम्हारी ही रहूंगी.

प्रेमी चकराया. एक दिन इसने मुझे विश्वास दिलाया था कि यह तन-मन-धन से मेरी रहेगी. अब एक-एक करके इसने धन और तन से छुट्टी पा ली. मन का क्या भरोसा! वह पूछ ही बैठा—तन और धन से तो तुमने किनारा कर लिया. क्या तुम्हें पूरा विश्वास है कि तुम मन से मुझे प्यार करती रहोगी?

प्रेमिका पहले तो सकपकाई, फिर बिगड़ते हुए बोली—यह पूछ कर तुमने मुझ पर अविश्वास ही नहीं किया, मेरे प्यार का भी अपमान किया है. फिर कभी अपनी सूरत भी न दिखाना. . .

□□□

किस हाथ से • प्रभु जोशी

खुल्ली खिड़की के चौखट्टे से तीखी हवा ने घुस कर 'जिसम' में चिकौटी काटी. राघू गुड़ी-मुड़ी अवस्था में पड़ा-पड़ा गोदड़ी के भीतर अधमरे केंचुए-सा थोड़ा सलमलाया. फिर, एकाएक झटके के साथ उठ बैठा. गोदड़ी देह से छूट कर 'अलग' गिर गयी, किताब की तरह, जिसमें फूटे करम के हरूफ लिखें हों. गोदड़ी में जिगह-जिगह पर टेकलेनुमा छेद पड़े हुए थे जो गोदड़ी को माथे से पांव तक ओढ़ लेने के बाद भीतर के नीम अंधेरे में तारों की तरह चमकने लगते हैं— राघू को तब 'बसंती' की याद आने लगती है. . . पहले आंख, फिर सकल और फिर पूरी देह. . .

मौसम ठंड का था. और रात को गोदड़ी की छत के तारे, बजाय 'बसंती' की आंख के बर्फ के डल्ले-से उसके शरीर पर टपकते रहे थे. राघू इस ठंडी बरफ से बचने के लिए पूरी रात में छाती में टांग व हाथ छिपाये, ऐसा कचकची खा कर सोता रहा था, जैसे इत्ती मोटी कलजुग की दुनिया में उसके सब कुछ केवल ये टांगें और हाथ ही हैं— हाथ, जो तारे तोड़ने के लिए नहीं, 'टिफिन' से लदी साइकिल का हेंडल थामने के लिए बने हैं, और पैर पैंडल मारने के लिए!

वह उठ कर दोनों पंजों को कांख में छुपा कर खिड़की के सामने आ गया. धूप गरम पेशल चाय-सी कड़क रंगत पर आ गयी थी. देख कर बड़बड़ाया— साली, आज फिर सुमेरे-सुमेरे गाढ़ी नींद लग गयी. कल से सेकिंड शो में बिलैक करना बंद कर देगा, बल्लू चच्चा के खातिर करता है वर्ना, राघू को क्या? भली उसकी टाटी, इसी में मिले घी-बाटी.

'खड़ंगऽऽ खड़ंग. . .' बल्लू चाचा सड़क पर अपना तांगा लिये जा रहा था. कवेंट के बच्चों को बीनने. नजर मिली तो कांख में से हाथ बाहर किये बगैर घोघ हिला कर दुआ-सलाम का काम निबटा दिया— हुंह! इस पियारे का काम भी ऊंचा है— घोड़ा है त, खूंटे से खोलो और जोत दो. इस सोच के साथ ही उसके दिमाग में अपनी साइकिल घूम गयी.

कल याकूब मियां से पंक्चर पकवाया था. अठन्नी चित करवा ली. और रात फिर पहिये से हवा फुसकी पड़ी है. 'साइकिल की तरह कोई दिन तेरी भी हवा फुसक जायेगी.' राघू ने दलित-दार्शनिक की तरह धंधें के प्रतीक में से दर्शन खींचा और उदास हो गया. तभी चिंता ने सब बिरोबर कर दिया— देर हो जायेगी, पहले ही तो नींद देर से खुली है, फिर साले तुंदियल लोगों के बोल सुनने पड़ेंगे.

उसने खिड़की में से हट कर कोने में से रखी गागर में से पानी ले कर चेहरे पर चुपड़ा और छलनी होती जा रही बनियान पर गंदी कमीज डाल ली. इसके बाद रोटी का डिब्बा संभाला. एक ही बची हुई थी, डिब्बे के पेंदे में, जो नीचे से हरी कच्छ हुई जा रही थी. उसने चटपट ऊपर-ऊपर की पपड़ी खरोंची और पानी के साथ निगल ली. पानी ने आंतों तक पहुंचते-पहुंचते शरीर में ठंड की 'रकीर' खींच दी.

फिर, तेजी से ताला ढूंढ़ा और नकुचे से मेंढक की तरह लटका दिया. कई बार ताला लगाते हुए उसे खुद पर हंसी आत जाती है— 'क्यों कर के ताला लगाता है, तू? केवल चाभी रखने के लिए? वर्ना, घर में फटी गोदड़ी, फूटे तवे और काणी मटकी के अलावा है ही क्या! पर चाबी जेब में पड़ी रहने से उसको लगता तो रहता है कि वह दर-दर भटकता बंजारा नहीं, घर-गिरस्ती वाला मिनख है— वर्ना ताले की जरूरत तो गोदाम वालों को होती है, फटी गोदड़ी व फूटी मटकी वाले राघू को काय की!' चाबी जेब में पटकी तो टन्न की आवाज आयी. राघू एकाएक अप्रत्याशित रूप से खुश हो गया— तो जेब में लछमी टनटना रही है. याने रात को बल्लू को अठन्नी नहीं लौटायी. . . चलो, पंक्चर भी जुड़ जायेगा और चालू 'चा' भी पी लेगा. उसको लगा, देह में एकाएक तर्राटी आ गयी है.

साइकिल गलियारे से निकाल सड़क पर याकूब मियां की दूकान के सामने आ गया. सोचा— पिछला पहिया दिखवा ले, फिर 'चा' पीने आगू निकल जायेगा. मगर, इस टैम याकूब एक 'गिराक' से उलझा हुआ था. वह ठिठक गया.

——रन दे मियां, तू पइसे अब्भी रख, नी तो एक झटके में 'झालन' हेड़ दूंगा.

——मान लो भईजान, कल सब चुकता कर दूंगा.

——मान लो की ऐसी-तैसी, मेरे कूं तो इसी दम पइसे चइये और पूरे चइये, नी तो एक झटके में खोपड़ी की 'झालन' हेड़ दूंगा, याकूब मिया ने फिर वही बात दूने जरीके से दोहरायी तो राघू का मन हुआ 'गिराक' की तरफ से दो बोल वो भी बोल दे. मगर चुप रहा. साली अभी ही साइकिल का पंक्चर पड़ा रहेगा. सिल्ला नीचे हाथ हो तो जबान भी कटी रहती है.

——ये भी कोई बात है, लाद दो, लाद दो और लादने वाला साथ दो, इसकूं मैं साइकिल दी, बरफ दिलवाया और किराये की टैम पर पछवाड़ा कर रिया है, याकूब मियां ने लगभग शहर को संबोधित करने की अदा से कहा और फिर वही 'झालन हेड़ने' वाली धौंस को दोहराया. गिराक फिर छूट के लिए गिड़गिड़ाया.

याकूब मियां ने फिर कहा—अपन एक बाप रखते हैं, और एक ही बात, सो जो कह दिया याने कह दिया, पैसे पूरे नी दिये तो मैं झालन हेड़ कर. . .

राघू वहां से हट गया. साइकिल समेत. साइकिल में टिकाने का स्टैंड नहीं है न, इसलिए अपंग औरत-सी अपने ऊपर ही लदी रहती है. 'चा' की गुमटी के पास आकर दीवार से टिका दी, फिर गुमटी में घुस गया. गुमटी में दो-तीन गिराक और जमे थे, जिनमें रामू गुब्बारेवाला, हसन टोस्टवाला और मंगीपारे का रल्लू कबूतरबाज था. वे सब ताजे अखबार में 'बंबई' के मटके' को ले कर बहस कर रहे थे.

—रल्लू, लोग कहते हैं न, आंख फूटती है तो घर के डांडे से, तेरी मामी ने ही तीन रोटियां एक साथ थाली में परोसीं, तीन गोल-गोल. और थाली भी गोल. मैंने ध्यान जमाया, मिंडी से तिर्री (शून्य से तीन) लगा दे. . . जबकि, मैं केवल मिंडी से मिंडी की ही सोच रिया था. . . और साली ओपिन व किलोज में, दोनों में मिंडी फंस गयी. . . मिंडी से मिंडी केवल दो रुपये की ही लगा देता तो. . . इसके बाद जिस तरह वह हताश लग रहा था, उससे शक होने लगता था कि वह टेबल से सिर फोड़ने लग जायेगा.

—ये तो तेरी बात हुई, अब मेरी सुन, मैं सुबू जैसेई घर से निकला, तो क्या देखता हूं कि वो अपना नाम सड़क पर साइकिल का टूटा टायर पड़ा हैगा, मैंने भी सोचा कि हसन प्यारे! मार मिंडी से मिंडी, पर जब लालसींग की दूकान को पहुंचा तो देखा कि चार गिराक पान बंधवा रहे हैं, दो मर्द, दो औरतें, फिर एक छोरा आया तो दो पान मांगे और दो सिगरेटें, मैंने अपने से ही कहा—दुर्री से दुर्री क्यों न लगा दूं, मिजान भी तो जम रहा है और कसम खुदा कि जेब में हाथ डाला तो बिरमसींग का दिया दो का नोट हाथ लग गया—और अखीर में साली ये मिंडी से मिंडी ही निकल गयी न!

राघू को उनके पारस्परिक आत्मकथा से लुत्फ आने लगा. फिर, एकाएक देरी की याद आयी. उसने तुरत 'चा' का आर्डर दिया और सोचा— वह अच्छा बचा है, इस झंझट से, एक नयी पाई का भी सट्टा नहीं लगाया. अपना तो ये ही धंधा अच्छा है, उठाव साइकिल, लादो टिफिन और डाल आओ फैक्ट्री को. . . राघू कभी-कभी सोचता है, इस धंधे को करते-करते पता नहीं कौन टैम से उसका नाम कोई रखा गया और वो केवल डिब्बे वाला भर रह गया. छोटे-मोटे सभी 'डिब्बावाला' बोलते हैं. गुमटी वाले ने चाय दी. पीकर वह वापस याकूब के पास आ गया.

याकूब ने पिछले पहिये का टायर खोला और ट्यूब देख कर बोला— मियां तू कब तक बनवाता रहेगा, साला छिद-छिद कर रामजनी का कलेजा हो गया है. . . दूसरा ट्यूब डलवा ले न!

राघू उलझन में पड़ गया— ट्यूब बदलाने में टिफिन का टैम हो जायगा . . . और पैसे अभी हैं नी.

—क्या करो, तेरे लिए आंकड़ा पीयेंगे, कर देंगे उधार, याकूब बोला.

—तो फिर फटाफट डाल दो, नया ट्यूब, राघू ने बहुत तत्परता के साथ कहा.

—तू भी खसम की तरहां, सिर पे खड़ा हो कर काम करवायेगा?. . .ले अभी तो दूकान से किराये की गाड़ी लिये जा.

राघू ने चुपचाप गाड़ी उठायी. और सीट पर सवार होते ही सोचने लगा, पांच का ट्यूब है, उधारी में छह लगायेगा और अपनी दूकान से किराये की सायकल दे दी, डेढ़ रुपिया इसका यानी पांच की चीज के साढ़े सात वसूल लेगा, लेकिन फैक्ट्री की पहुंच की दूरी से इतना



मुरलीधर जालान

घाटा सहन करने की मजबूरी स्पष्ट थी—— क्या करो? बांकी बखत, लूट्यो तखत!

अब वह कालूनी में था. इस कालूनी में घुसते ही राघू का दम घुटने लगा है, सारी कालूनी की हवा में ऐसी 'बास' फैली रहती है कि नथुनों को छूते हीं अंतड़ियों में भूख के पलपटे उठाने लगती है—जहां जाव, साली तर घी और पकते खाने की खसबू ही खसबू होती है. राघू को लगता है, इन घरों की नाली में नाक मार दो तो वहां भी यही खसबू आयेगी. यह सब पा कर उसे ऐसी चिकनी सड़क पर भी साइकिल चलाने में थकान लगने लगती है. एक से एक आला बंगले और बंगलों में खाना— आखिर, ये लोग ऐसा बनाते कैसे होंगे? उसे खन्ना बाई साहब वाली बात याद आयी. वो बाई को 'लेंस-किलब' ने मछली के पकौड़े बनाने पर इनाम दिया था. अखबार में फोटू तक भी छपा था. और,' अपने घर की बाइयों की जिनगी रोटी बेलते-सेंकते हो जाती है, मगर दुनियां में कोई नहीं जान पाता—— ऐसा सोच कर राघू तय नहीं कर पाता कि अब हंसे कि रोये. . . या गाली गाने लगे.

★ ★

तभी सामने से मोती आता दीखा. उसके गांव का है न, इसलिए भीतर भाव-भजन बाकी हैं. उसने करीब आते ही 'बिरिक' मारा और उतर गया. हांफ रहा था और पूरा बदन पसीने से लथपथ हो रहा था. इसीलिए ही हवा के उतने घेरे में एक अलग तरह की 'बास' (गंध) भर गयी थी. पकवान और घी-तर मसालेदार सब्जियों के बघार के खिलाफ एक रजी-सी अपनेपन की बास. राघू को लगा, टिफिन खाने वाले अदमियों की 'बीड़' में इस तीली ने आग धर दी हो. उसके नथुनों में घुसती बू ने राघू को गांव में उतार दिया. ओस में भीगी कच्ची घास की पत्तियों को जब कुंवार की धूप में सेंकने लगती है, तो जो गंध उठती है, वह गांव के हर कण में समा जाती है. बसंती के कपड़े-लत्तों की तो बात छोड़ो, रात को पास सोता है तो उसकी सांस को झेलते हुए लगता है, वह ऐसी गंध से भरी घास की नरम और गीली बीड़ में उतर गया हो.

मोती ने बीड़ी दी तो उसने होठों के बीच खोंस कर सिरे को आगकड़ी से भून दिया. दो-एक कश और दो-चार बोल की लेन-देन भी नहीं हुई थी कि राघू ने बीड़ी का जलता सिरा हेंडल के सिर पर बुझा, बीड़ी कान में खोंस ली. और पांव पेडिल पर रख दिया. मोती भी बढ़ लिया.

आज पंद्रा मिलिट देर से जा रहा है, तो भी 'भड़कमकर बाई' पंद्रा मिनिट और लेगी. अपने आदमी के आफिस जाते ही दूसरे दुदांते-जवान से इश्क लड़ाती है, मगर वो शक न करे इसलिए साली खूब-सारा व तरेह-तरेह का खाना बना कर भिजवाती है, और वो भी गरम. . . जल्दी डिब्बा लेने पहुंच जाओ तो डांट दिया करती है, 'इतने जल्दी कायकू आ जाते हो, फिर टिफिन वाला रखने की क्या जरूरत, वे अपने साथ ही न लिये जाया करें. . .' और देर से आओ तो और देर करती है, कई बार इसी के मारे उज्जैन रोड का रेल्वे क्रासिंग फाटक बंद हो जाता है और वह पंद्रा बीस मिलिट और लेट हो जाता है. फिर, उधर लंच का सायरन हो चुका होता है तो साब लोग धौंस देते हैं, 'टिफिन छोड़ दो. . .' राघू का जी करता है कहे, 'तुम सब की बीवियां बेलकुल कढ़ाई और तवे से उतरता खाना भिजवाना चाहती हैं तो जल्दी कैसे आ पाऊंगा. . . मेरे पास कोई हैलिकोफ्टर तो हैगा नी! जो उधर लिया और फुर्र-दने से इधर डिब्बे ला दिये. अपने पास तो वही है, दुपहिया कच्चे का राकेट!' राघू ने कल्पना की वाकई उसके पास हैलिकाफ्टर होता तो वह सभी के डिब्बे पा जाता और बिलकुल गर्मागर्म ही खाना मिलता. . . तभी उसने हैलिकाफ्टर की प्राप्ति को पुनर्मूल्यांकन किया तो पाया कि गणित गलत हो गया है. अरे, हेलीकोफ्टर होता तो डिब्बे काहे को डालता. . .

उसे फिर देर होने की याद आ गयी. उसने तेजी से सायकिल धुनक दी. रफ्तार ऐसी थी कि दो-एक जगह टकराते-टकराते बचा. छलनी बनियान पसीने से लथपथ हो गयी.

——बाई साब, डिब्बा! पहली हांक से घर की व्यवस्था में कोई सलमलाहट न हुई तो उसने दूसरी दफा ये ही शब्द गोफन शैली में कांच की खिड़कियों वाले मकान पर फेंके. आवाज आयी—— गला क्यों फाड़ रहे हो, क्या कच्ची चपातियां ही डिब्बे में रख दूं?

राघू चुप हो गया. बेचैनी को दाबी तो पैरों में सलसलाहट के साथ चली गयी. वह डिब्बे आने को साइकिल का पेडेल उल्टा घुमाने लगा. उसे याद आया, उसकी साइकिल का फ्री-व्हील का तार भी तो जब-तब गायब हो जाता है, बसंती की अकल का-सा और खास कर रेल्वे क्रांसिग तक के तोड़े की चढ़ाई पर. कितना ही मनाओ, लौटता नहीं.

वह डिब्बा ले आयी. उसने लिया तो लगा, डिब्बा नहीं रोटी के फूलों का ताजा गुलदस्ता है. जब तक हेंडल पर टंगा रहेगा, खसबू का सांप अंतड़ियों को डंसता रहेगा. लेबर आफिस का डिब्बा उसने इसीलिए तो छोड़ा था. पंजाबन-पत्नी रोज-रोज नयी-नयी तरेह की खसबूदार खाने की चीजें बना कर रखा करती थी और उस खसबू से वह रोज उदास हो जाया करता था. टपरी की मर्दानी रोटियों का कौर चबाते हुए वह तैश में आ जाता था कि साले वे लोग ऐसा खाना क्यों खाते हैं? एक बार तो नीयत ऐसी हो गयी थी कि टिफन तोड़ताड़ कर खुद खा जाये. पर तब उसने खुद को समझाया था, इस साला में घी या तेल नहीं— लाखन, गल्लू, हरदेव आदि का खून का खून है. साला हर बार उनकी तनख्वाह कटवा दिया करता है. ऐसी रोटियां को खाना तो क्या, देखना भी पाप है, राघू! तू जबान जफोत!

डिब्बा टांग कर साइकिल दूसरे साहब के घर की ओर धुनक दी. धुनकते हुए उसे लगा, भूख तो रोज ही लगती है, पर आज जोर की प्यास लग रही है. किससे पानी मांगे? कालूनी के बंगले वाले से तो पानी भी नहीं

मिलता. पानी मांगे तो दुत्कार मिलती है, उसे हंसी आयी, नेताजी सुबास बाबू ने जब कहा था, तुम मुझे खून दो.... तो क्या उसने भी कहा होगा? और कहा होगा तो इनने उनकूं क्या दिया होगा ?...

राघू ने और साइकिल तेज कर दी. दूसरे बंगले के पास पहुंचते हुए उसे लगा, हांक लगाने में भी कुछ विशेष जोर लगाना पड़ रहा है. बाई साब आयी और डिब्बा टांग गयी. इस बाई साब को देख कर राघू को एक बार अपनी बसंती पर सुबहा हो गया था, 'मेरे शहर आ कर रहने के बाद से बसंती भी तो ऐसा नहीं करती...' इसके घर में रोज नये-नये मुर्गे देखे जाते थे. तब वह उसी दिन सायकिल धुनकता हुआ गांव जा पहुंचा था, तो देखा था, बसंती भूखे सोनू को बहला रही है और उसके लिए 'मीठे गांठिये' भेजने को आटा गूंथे बैठी है. तब राघू को लगा था, पवित्तर है, पवित्तर! गंगा जैसी. और उसकी आंखें नम होते-होते बचा ली थीं, उसने.

ये बाई देती हैं, 'दुपहर का खाना', और उसे देखती ऐसी नजर से कि राघू की रात के खाने की भूख लग आती है. तब उसकी नाक में कच्चे घास की ओस में भीगी बीड़ में डूब जाने का भरम होने लगता है— जहां तैर कर निकलने का सवाल नहीं उठता.

लेकिन टिफिन देख कर इस समय अंतड़ियों में छुपी भूख ही भड़कने लगी थी. उसका मन हुआ, पानी मांग ले. लेकिन, फिर सोचा, लाखन के यहां ही पी लेगा. अंत में लाखन का ही डिब्बा तो लेता है. एक बार आफिसर लोगों ने उसे धमकाया था, मजदूरों के टिफिन हमारे साथ मत मिलाया करो तो उसने बंद कर दिये. अब लाखन का भर ले जाता है और उसे भी एक अच्छे-से झोले में ताकि एलूमीनम का डिब्बा अलग से नजर न आये.

★ ★

राघू को लाखन के मुहल्ले में घुसते ही लगा, वह अपने गांव के 'कांकड़' के अंदर आ गया है. उसने आवाज दी तो छोरे दौड़ कर डिब्बा ले आये. उसने पानी मांगा तो एक दूसरे को दौड़ते-धकेलते पानी ले आये. मन हुआ था, भाभी से कह के दो-एक रोटियां मांग ले. फैक्ट्री पहुंच कर खा लेगा. मगर महीने की तारीखें याद कर के उसने साइकिल बढ़ा दी. फिर, उधर रेल्वे क्रांसिग का फाटक बंद हो जाने की चिंता भी थी. मगर, भूख में उससे आज साइकिल भी नहीं खिंच पा रही थी. पहली दफा उसे टिफिन के वजन के बारे में सोचते हुए लगा कि लोग, जो फैक्ट्री की गद्देदार कुर्सियों पर बैठे हैं, आदमी के हिसाब से नहीं, भैंसों के हिसाब का खाते हैं. वह टिफिन नहीं, भैंसों के लिए भूसा लादे जा रहा है.

शहर छूटते ही सड़क की निर्जनता बढ़ने लगती है. उसने दूर निगाह फेंक कर देखा, आसमान की छाती में गर्म सलाख-सी निरंतर खुबी रहने वाली आटोमेटिक गेट की बल्लियां गाड़ी के स्वागत में जरखरीद गुलाम-सी सिर झुकाने लगी थीं. राघू ने भूखी टांगों के बावजूद साइकिल तेजी से धुनकनी शुरू कर दी. उसने चाहा कि गेटमैन नारायण बाबू को आवाज दे ले और तब तक तो उसने राघू को देख ही लिया. सो वहीं से चिल्लाया—जल्दी चला आऽऽऽ! राघू ने और तेजी से पेडिल मारे और क्रांसिग पार कर गया. क्रांसिग पार करते ही उसे लगने लगा, सांस फेफड़ों में समा नहीं पा रही है, और पेडिल पर से पांव फिसलने लगे हैं... उसने लंबी-लंबी सांस ले कर काबू किया और धीमे-धीमे साइकिल को खींचने लगा. उसे लगने लगा था वह किसी भी क्षण गिर पड़ेगा. आखिर, किसी तरह वह खींचता हुआ थके बैल-सा फैक्ट्री के गेट के पास हांफता हुआ आ लगा. चौकीदार ने डिब्बे उतारे और कैंटीन में पहुंचा दिये.

वह चौकीदार की कॉटेज के बरामदे में भीत से देह टिका कर सुस्ताने लगा. फिर नल से मुंह जोड़ दिया. 'ब्रेक' का सायरन बजा... कैंटीन से, चम्मचों, प्लेटों और गिलास की आवाजें आने लगीं, जो पहले उसके कान में घुसीं फिर आंतों में काटने लगीं.

★ ★

लंच के खात्मे पर सायरन बजा तो राघू को एकाएक ताज्जुब हुआ. लोग इत्ती देर तक क्या खाते हैं? और कैसे खाते हैं? इन्हें मिलता कैसे है? और क्यों?

खाली डिब्बे कैंटीन से लौटे तो उसने सबों को धीरे-धीरे हैंडल पर टांगे और लद कर चल दिया. पहला ही पैडिल मारते हुए लगा, सीधी रस्सी-सी आंत में एकदम कोई गिठान पड़ गयी है. मगर फैक्ट्री व शहर के बीच की निर्जनता और धूप ने उसे इस निष्कर्ष पर पहुंचा दिया था कि किसी भी तरह वह खुद को शहर की छाती में घुसेड़ दे, फिर तो किसी से आठ-चार आने मांग चने चबा कर पेट का खालीपन दूर कर देगा. उसने तेजी से पांव मारना शुरू किया. लगातार पंद्रह मिनट चलते रहने के बाद उसे लगने लगा, पेड़, सड़क, पहाड़ी, सब कुछ चल रहे हैं. वह पल भर के लिए बुरी तरह घबड़ाया और साइकिल समेत धूप से बचने पुलिया के नीचे उतर गया. आंख मूंद कर पड़ गया. और जब आंख खुली तब पाया, पेड़-पहाड़ी सब कुछ थम गया है. पास में साइकिल थी. मगर 'उसे महसूस हो रहा था, उसमें उठने का जोश भी शेष नहीं है. पेट खाली ढोल में मारी जाने वाली मूंठ-सा गुंग-आने लगा था.

उसने साइकिल को कुछ गौर तलब निगाह से घूरा. फिर उसके हैंडिल पर लटके टिफिन केरियर्स की टिफिन्स पर निगाह पड़ते ही उसको नथुनों के आसपास गंध घूमती लगी. उसने सूखे गले के नीचे थूंक उतारा और बैठ गया. फिर डगडगाती आंखों से चारों ओर घूरा. धूप ने आवा-जाही का सिलसिला तोड़ कर सन्नाटा छींट दिया था. वह उठा और चुपचाप कांपते हाथों से टिफिन बाक्स हैंडल से उतार कर जमीन पर रखने लगा. फिर, धीरे से वहीं बैठ गया.

सबसे पहले उसने भड़कमकर का टिफिन बाक्स खोला. देखा, पूरे खंड खाली थे. केवल बीच के खंड में सब्जी के टुकड़े चिपके थे. आंतों के भीतर की लपटें पूरा पेट झुलसाने लगी थी. अचानक उसे याद आया, पांडे की नयी-नयी बीवी लड़ैती में अपनी चौके की चतुराई दिखाने के लिए उसका डिब्बा ठसमठस भर दिया करती है,


मैकसी-मन को भाये!
TF
ठाकरसी फ़ैब्रिक्स
TF
हिंदुस्तान स्पिनिंग एन्ड वीविंग मिल्स लि.
ठाकरसी ले के आया नया ज़माना, नया तराना
everfresh® 67% Terene, 33% Cotton
DOUBLE EDGE 'Terene' Suitings
easycare® 67% Terene, 33% Cotton
easylene® 80% Polyester, 20% Cotton
Tonlene® Polyester/Cotton
Tonester® Polyester/Cotton

जरूर उसमें कुछ बचा होगा. तेजी से उसने झोले में से उसका डिब्बा निकाला और देखते ही उसे लगा, जैसे किसी ने हलक में हाथ डाल कर पेट में जाता कौर खींच लिया है. टिफिन के नकुचे पर छोटा-सा स्टील का ताला लगा था. राघू ने सांस खेंच कर भीतर ही भीतर खुद से कहा— राघू, ताले बड़े लोगों के गूदामों पर ही नई, जूठन पर भी लगे होते हैं और तू घर पर लगाते हुए हिचका करता है.

सारे टिफिन-बॉक्स हैंडिल पर टांगते हुए एका-एक लाखन के डिब्बे में किसी चीज के लुढ़कने की आवाज आयी. पहले उसने सोचा, सब्जी की खाली कटोरी होगी. मगर, खोल कर देखा तो राघू को लगा, सोच की चढ़ई चढ़ते हुए दिमाग की बाइसिकल के पहिय्ये का फटाक-दनें से 'फिरी-व्हील' का तरा टूट गया है. वह सुन्न रह गया. डिब्बे में कटोरी नहीं, बासी 'बाटी' थी, जो सूख कर बाहर से पत्थर की तरह कड़क हो चुकी थी. राघू के सामने सवाल का पुरना पेंच खुल गया कि लाखन के दांत इत्ते-इत्ते बड़े होने के बावजूद भी वह उस नरम और गरम गोश्त के लेबर आफिसर को क्यों नीं खरोंच खा पाता, जो लाखन की जिनगी बरबाद किये है.

डिब्बे में से बासी 'बाटी' राघू ने खाने के लिए हाथ में ली तो पल भर के लिए उसे भरम हुआ कि उसके हाथ में गेहूं के आटे से बनी गोल-मटोल 'बाटी' है या कि कोई हथगोला? और, उसे अब अपने कुलबुलाते पेट में डाले या कि नरम और गरम गोश्त वाले लेबर आफिसर के सिर पर! — उस सिर पर जिसमें हरदम लाखन के भले-सले की जिगों पर केवल लछमणराव एण्ड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड के भले की तिकड़में तैयार होती रहती हैं. . .

तभी सड़क की निर्जनता को उसने बहुत बेहरमी से रौंदे जाने का अनुभव किया. घबरा कर उसने गरदन उठाई और देखा, टॉप गियर पर एक ओवर-लोडेड टिरिक चला आ रहा था— बेलकुल नाक के सामने सिर के ऊपर. राघू की भूखी मुट्ठी में बंधी 'बाटी' और कस गयी. □□□

५, कालिदास मार्ग, देवास, म.प्र.

इथियोपिया की लघुकथा

तावीज़

एक मियां-बीवी में पटती नहीं थी. दोनों ही तुनक मिजाज थे. एक दूसरे के सुख का कारण बनने के बजाय वे परस्पर क्रोध, जलन और तिरस्कार का कारण बनते. औरत एक फकीर के पास गयी और बोली—मुझे ऐसा तावीज दीजिए कि मेरा पति मेरे बस में हो सके.

फकीर ने आग जलायी. आग पर धूप डाली और कुछ मंत्र पढ़े. फिर बोला—तेरे पति को वश में करना बहुत कठिन है. उसके ऊपर एक प्रेतात्मा का साया है. लेकिन एक उपाय है.

—क्या उपाय है? औरत ने आतुरता से पूछा.

—तावीज तैयार करने के लिए उसमें शेर की गर्दन के तीन बालों की जरूरत पड़ेगी. यही बाल मंत्र पढ़कर उस तावीज में भरने होंगे.

—मगर शेर की गर्दन के तीन बाल कहां मिलेंगे? क्या किसी मरे हुए शेर की गर्दन के बाल चल सकते हैं?

—नहीं! मरे हुए शेर के नहीं, जीवित और जोशीले शेर के बाल चाहिए.

जिंदा और जोशीले शेर की गर्दन के बाल कौन ला सकता है? औरत बहुत निराश हुई.

फिर उसे खयाल आया कि एक शेर गांव से कुछ दूर आकर रोज किसी की बकरी या गाय को उठा ले जाता है. गांव के सभी लोग उससे भयभीत हैं. उसने कई युवकों से बात की. मगर कोई तैयार नहीं हुआ. औरत ने बहुत सोचा, बहुत सोचा. अंत में एक उपाय उसकी समझ में आया. वह एक बकरा ले कर उसी रास्ते पर पहुंची, जिधर से शेर आता था. शेर आया और बकरे को मुंह में दबा कर झाड़ियों में ले गया, औरत अपने घर वापस आ गयी. अगले दिन भी उसने बकरा ले जाकर शेर के रास्ते में खड़ा कर दिया. कई दिन तक यह सिलसिला चलता रहा. शेर अब उस औरत को पहचानने लगा था.

धीरे-धीरे उस औरत ने शेर को अपने वश में करना शुरू किया. पहले वह उसके पास गयी. फिर पुचकारने लगी. धीरे-धीरे उस पर हाथ भी फेरने लगी. शेर रोज एक बकरा पा कर संतुष्ट था. फिर हिम्मत करके एक दिन जब शेर बकरा खा रहा था, उस औरत ने उसकी गर्दन पर हाथ फेरना शुरू किया और धीरे से एक-एक करके तीन बाल उखाड़ लिये.

बाल लेकर वह फकीर के पास पहुंची. फकीर चकित रह गया. उसने पूछा—यह असंभव कार्य तुमने कैसे किया? औरत ने शेर को रोज बकरा खिला कर वश में करने की बात बतायी.

फकीर ने कहा —भली औरत, जब तूने खिला-पिला कर एक शेर को अपने वश में कर लिया, तो इसी तरह अपने पति को वश में नहीं कर सकती? आखिर पति तुझसे चाहता क्या है ? यही प्रेम का व्यवहार, अच्छी तरह देखभाल और खाने-पीने का खयाल. तू उसकी परवाह न कर अपनी ही उससे मनवाना चाहती है. इसी कारण झगड़ा होता है. यदि तू सिर्फ उसे प्यार दे तो क्या वह तेरा खयाल नहीं करेगा?

(प्रस्तुतीकरण : इशरत अमीर) □□□

अंतिम इच्छा

• बसंत कुमार

बाहर से आये ऑडिटर से वे कह रहे थे——इस बार देखिएगा ऑडिटर साहब, मैं किसीको छोड़ने वाला नहीं. बकाया रकम सबों की 'पे' से काट लूंगा. और ऑडिटर को 'पे-बिल' दिखाते हुए बोलने लगे——देखिए, सबों के नाम के सामने मैंने साफ लिख दिया है—नाट टू पे रूपीज सिक्सटी —नाट टू पे रूपीज सेवेंटी फाइव—— यानी जिसके पास जितना बाकी है सीधे काट लेना है. फिर पे-बिल समेटते हुए कुछ झुंझलाती आवाज में बोलते ——मैं क्या कर सकता हूं, आफिस का पैसा है. मुझे भी ऊपर जवाब देना पड़ता है.

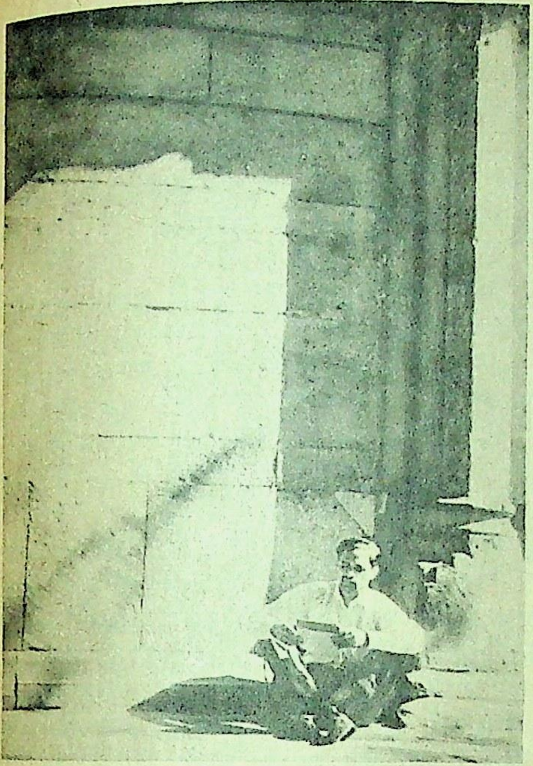
पर ऐसा कभी नहीं हो पाता. ठीक पे मिलने के दिन वे बकाया रकम में से किसीको आधा माफ कर देते, किसीको चौथाई, तो किसीको तिहाई और अगले महीने पूरी काट लेने की धमकी सभी संबंधित कर्मचारियों को देते. जब कोई हमउम्र उनसे मजाक में पूछता——क्यूं सब बकाया वसूल हो गया, तो बड़ी बेचारगी, यानी ऐसा लगता जैसे उन्होंने ही एडवांस लिया था और पूरा न कर पाये हों, वाली सूरत से कहते——क्या करूं भई, मुझसे उनकी तकलीफें सुनी नहीं जातीं, सबों की हालत तो एक जैसी है.

ऐसे हैं श्री सुरेश्वर प्रसाद, हेड-क्लर्क, एकाउंट्स सेक्शन. पूरी नौकरी इन्होंने ईमानदारी से बिता दी. अब तो चार-पांच महीने में रिटायर करने वाले हैं. वे इतना भी नहीं जोड़ पाये कि एक छोटा मकान भी अपना हो पाता. वैसे कम-से-कम पिछले पांच साल से तो वे वैसी जगह पर हैं ही कि पूरा कमा पाते. एकाउंट्स का पूरा मामला उनके हाथ में है. चाहे प्राइवेट पार्टी हो या सरकारी पेमेंट, सब उन्हींके द्वारा होता है. पूछने पर कहेंगे——भाई हराम की कमाई से मुझे बड़ा डर लगता है, फिर जब इतना किसी तरह बीत ही गया तो काहे चार-पांच महीनों के लिए...

उन्हें चार बेटियां और दो बेटे हैं. दोनों बेटे लड़कियों के बाद के हैं. रिटायरमेंट को ले कर कभी कोई बोल देता है तो कहने लगेंगे——मुझे अब रिटायरमेंट से कोई डर नहीं लगता. चारो बेटियों को ब्याह दिया, और हथेली नचाते हुए कहेंगे——अब क्या? बड़ी बेफिक्री से कह देते हैं. पर उनका चेहरा साथ नहीं दे पाता है. कैसा तो लगता है कि दया आ जाती है.

★ ★

चौथी बेटी की शादी तक वे आर्थिक रूप से पूरी तरह टूट चुके थे. कभी जब खुलते हैं तो उस शादी की बात करते हैं. उस बेटी की शादी में उन्हें सबसे ज्यादा परेशानी हुई थी. रिटायरमेंट के पहले मिल सकने वाला जी. पी. एफ. से आखिरी कर्ज उन्होंने ले लिया था, फिर भी वे उतना पैसा नहीं जुटा पाये थे कि लड़के वालों की मुंहमांगी पूरी कर पाते, पंद्रह-बीस घर की खाक छानने के बाद तो जा कर एक लड़का वाला तैयार हो पाया था. लड़का बहुत साधारण-सी नौकरी में था पर उसकी मांगें साधारण नहीं थीं. किसी तरह उन लोगों की सारी मांगें मान कर उन्होंने शादी पक्की कर ली. तिलक में सारा सामान भी उन्होंने भेज दिया. सिर्फ लड़के को दी जाने वाली घड़ी उन्होंने अपने पास रख ली. सोच रखा था कि किसी और रस्म में दे दूंगा. पर बारात जब स्टेशन पर पहुंची तो किसीने लड़के के पिता से कह दिया कि —घड़ी तो अब तक मिली नहीं, पता नहीं वे लोग देंगे भी या नहीं, फिर क्या था? बारात स्टेशन पर ही रुक गयी और सुरेश्वर बाबू को खबर भेज दी गयी. बारात स्टेशन से ही वापस लौट जायेगी. इतना सुनते ही उनका दिमाग चकरा गया. वे पूरी स्थिति समझ भी नहीं पाये और बेहाल अवस्था में स्टेशन पहुंचे. वहां पचासों आदमियों की भीड़ में उन्हें गिड़गिड़ाना पड़ा—कोई भूल हो गयी हो तो माफ किया जाये. . .घड़ी मैंने खरीद ली है. आप लोग मेरा विश्वास कीजिए, मैं इज्जतदार आदमी हूं. इसी बीच बारात में से कोई बोला ——तो घड़ी तिलक में ही क्यों नहीं भेज दी. अगर अब भी चाहते हैं कि शादी हो तो घड़ी तुरंत भिजवाइए उनका तो खून खोल उठा, 'इतना अविश्वास तो आज तक उन पर किसीने नहीं किया था. उनके अफसर तक उनके बारे में बराबर कहते रहते हैं, इतना विश्वासी हेड-क्लर्क तो आजतक नहीं देखा, इन्हींके चलते आफिस टिका हुआ है. उनकी तो इच्छा हो रही थी बोलने वाले का सिर तोड़ दें. पर अपनी बेटी को याद कर वे चुप रह गये. उन्होंने तब सिर्फ इतना ही कहा——घड़ी अभी भिजवा देता हूं. वे घर लौट आये पर उस सदमें ने उन्हें भीतर से खोखला कर दिया. शादी के ठीक पंद्रह दिनों बाद पहला 'अटेक' हुआ. अब तो वे डायबिटिज और ब्लडप्रेशर दोनों के मरीज हैं. सारे संयमों के बावजूद अब वे बीमार-से लगते हैं. पहले वे विभाग के पहलवान कहलाते थे. पर अब स्वाथ्य बिल्कुल खत्म ही चुका है. तीन साल के अंदर ही वे पूरी तरह निचुड़ गये हैं. किसी दिन लिफ्ट खराब हो जाती है तो ऊपर आते-आते वे पूरी तरह हांफ जाते हैं. सीट पर निढाल हो कर आंखें मूंद पड़ जाते हैं. करीब आधे घंटे



आर. के. गोयल

बाद वे नार्मल हो पाते हैं. सभी अफसर उन्हें जानते हैं और उन पर भरोसा करते हैं. इसीलिए 'आराम करते हुए काम करने की' उन्हें विशेष अनुमति मिली हुई है.

★ ★

अब वे किसीको नहीं डांटते. अपने बेटे तक को नहीं. उनका बड़ा लड़का पिछले दो साल से एम. ए. करके बैठा हुआ है. यही एक चिंता है जो कभी उनके चेहरे या कभी उनकी आंखों से झलक जाती है. कुछ दिनों तक लड़के ने सब्र किया पर अब वह भी टूट चुका है. लड़के का चेहरा धीरे-धीरे कठोर होता गया, जिसे देख कर उन्हें दहशत होने लगती थी. वही लड़का, जो कभी उनके सामने ऊंची आवाज में बोलता नहीं था, अब दिन भर उन्हें कोसता रहता—किसी काम के नहीं हैं, जिंदगी भर सक्सेना साहब की जूती चाटते रहे और जरा-सा कहा कि मेरे बारे में कह दीजिए तो कहने लगे, अच्छा नहीं लगता. और गुस्से में थूकता हुआ बोलता— खाक अच्छा नहीं लगता. वे घर में सुनते पर चुप रहते. कभी किसी अंधेरे कोने में रो लेते और फिर रिटायरमेंट के बारे में पूछे जाने पर कहते—मुझे अब रिटायरमेंट से कोई डर नहीं लगता, चारों बेटियों को ब्याह दिया, अब क्या? और हमेशा की तरह हथेली नचा देते.

पर कभी-कभी अंधेरा कोना उन्हें बहुत परेशान करता. घंटों खुली आंखों बिस्तर पर पड़े रहते— बड़का को दो साल हो गया, छोटका भी इस बार एम. ए. दे रहा है. एक-दो महीने बाद उसका भी रिजल्ट निकल जायेगा. तब फिर? तब फिर वह भी कहेगा मुझे नौकरी चाहिए... सोचते-सोचते वे पसीने से भीगते रहते या फिर कलेजे की धड़कन बढ़ जाती और तकिए के नीचे से एक टेबलेट निकाल कर पत्नी को पानी के लिए आवाज देने लगते. वे टेबलेट हमेशा अपने पास रखते, चाहे घर हो या दफ्तर.

धीरे-धीरे वे अपने दोनों बेटों और पत्नी से भी कटने लगे. घर में बहुत कम बोलते. जब कभी पत्नी टोकती— आजकल आप बड़े चिंतित रहते हैं, तो हलके मुसकरा कर कहते— तुम तो जानती हो डाक्टर ने ज्यादा बोलने को मुझे मना कर रखा है. और तकिये पर दूसरी करवट ले मुंह फेर लेते. उन्हें लगता, सबकी निगाहों में वे ही अपराधी हैं. वे अपने में ही घुटते रहते, बिना किसी शिकायत, बिना किसी चाह के.

★ ★

एक शाम वे बड़े खुश-खुश-से आफिस से लौटे. आते ही उन्होंने पत्नी से बेटों के बारे में पूछा— दोनों कहां गये हैं?

—नहीं जानती, कहीं बाहर गये हैं, कह कर पत्नी चुप हो गयी.

तो वे पत्नी से ही कहने लगे— जानती हो हमारे आफिस में इस बार बहुत बहाली होने वाली है और— फिर वे कुछ क्षणों के लिए कहीं भटक-से गये तो पत्नी ने पूछा— और क्या?

—आं!... अरे कुछ नहीं. वे लोग आयें तो बता देना. अब दिक्कत नहीं होगी— और कोई भजन गुनगुनाते हुए कपड़े बदलने लगे.

दूसरे दिन लिफ्ट ठीक रहते हुए भी वे धड़धड़ा कर आफिस की सीढ़ियां चढ़ गये. ऊपर पहुंच कर और दिनों से ज्यादा ही हांफ रहे थे. अपनी सीट पर जा कर पहले की तरह निढ़ाल हो कर आंखें मूंदे पड़ गये. थोड़ी देर बाद उन्हें कलेजे में दर्द होने लगा. उन्होंने आंखें खोल कर चारों ओर देखा— सभी काम में व्यस्त थे. फिर उन्हें लगा, आंखों के सामने अंधेरा छाता जा रहा है और आदतन टेबलेट के लिए अपना हाथ जेब में डाला. फिर कुछ याद आते ही उन्होंने हाथ बाहर खींच लिया— उस दिन वे टैबलेट घर पर ही भूल आये थे. पर जब दर्द बर्दाश्त से बाहर होने लगा और सांस लेने में कठिनाई होने लगी तो थरथराती उंगलियों से अपना कलेजा दबा कर चीख उठे— पानी. चारों ओर से कर्मचारियों ने एक साथ उनकी ओर आश्चर्य से देखा और लगभग दौड़-से पड़े. वे बेहोश होते जा रहे थे. किसीने पानी का छींटा उनके चेहरे पर दिया. तब तक उनके अफसर भी उस कमरे में आ गये. तुरंत उन्हें अस्पताल पहुंचाने की व्यवस्था की गयी. पर शायद उनकी मृत्यु बीच रास्ते में ही हो गयी. क्योंकि अस्पताल पहुंचने पर उन्हें मृत घोषित किया गया और कारण बताया गया था—हार्ट अटैक!

वैसे एक दिन पहले उनके विभाग की ओर से एक निर्देश निकला था कि— 'कार्यकाल में अगर हमारे किसी कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है तो उसके वार्ड को आगामी बहाली में योग्यतानुसार प्राथमिकता दी जायेगी.'

□□□

—१८९ बी. आर. के. एवेन्यू,
राजेंद्र नगर, पटना -८०००१६ (बिहार).

एक कमीज़, एक झूठ

• प्रीतम बेली

बेचर के साथ इससे पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था. उसने कभी कमीज नहीं पहनी थी, कभी काम पर नहीं गया था और न ही कभी इस प्रकार रात आंखों में काटी थी.

सारी रात बेचर करवटें बदलता रहा. एक क्षण भी सो न सका. नयी कमीज, झोंपड़े में, उसके सामने एक पुराने, जंग लगे, टीन के डिब्बे पर पड़ी थी.

बेचर ने इससे पहले कभी कमीज नहीं पहनी थी.

गरमी की रुत किसी जलते हुए कंबल की तरह आती. उस कड़कड़ाती गरमी में कमीज की आवश्यकता ही न होती.

वर्षा में खूब पानी बरसता. तिरछी बौछार चाबुक की तरह शरीर पर पड़ती. तेज बूंदों की हजारों सुइयां आकाश से गिरती रहतीं और उनकी तेज नुकीली नोकों से बचता हुआ बेचर किसी काले कछुए की तरह टांगों में सिर छुपाये झोंपड़े में गुमसुम पड़ा रहता. वर्षा बंद होती तो कस्बे के बाहर मीलों की उस तंग बस्ती में, पास की पहाड़ियों पर, उनकी ढलानों पर और पास के खेतों में चारों तरफ हरी-हरी मुलायम दूब की चादर बिछ जाती, तो कमीज की जरूरत तब भी न पड़ती.

शरद की ठंड चाकू की तेज धार की तरह शरीर में धंसती, तो बेचर एक पुराने टाट का टुकड़ा अपने शरीर पर लपेट कर घूमता रहता.

लकड़ियां काटने वाले कारखाने का बूढ़ा बनिया सेठ, जब बिजली के आरे से कट कर मर गया, तो सेठ के बेटे ने बूढ़े के अच्छे-अच्छे वस्त्र ब्राह्मणों को भेंट कर दिये, और पुराने कपड़े गरीबों में बांट दिये. एक पुराना कंबल बेचर के बाप, मंगलू, के हिस्से आया.

मंगलू ने पुराने कंबल के दो टुकड़े किये. एक टुकड़ा उसने बेचर की मां को दिया और दूसरा बेचर को.

बेचर ने पुराना टाट अपने आबनूसी शरीर से अलग किया, उसके छोटे-छोटे टुकड़े किये और उनमें सूखी घास भर कर छोटी-छोटी गेंदें बनायीं. शरीर के गिर्द पुराने कंबल का टुकड़ा लपेटे वह बस्ती में घूमता रहा और झोंपड़ियों में जा-जा कर सारी गेंदें अपने साथियों में बांटता रहा.

गेंद बांटना तो बहाना मात्र था. वास्तव में बेचर अपने हमजोलियों को अपना कंबल दिखाना चाहता था. उस शाम सारे लड़के बेचर की बनायी गेंदों से खेलते रहे. जान-बूझ कर तथा अनेक बहानों से उसके कंबल को हाथ लगाते रहे. कंबल को छूने मात्र से उनके शरीर में जैसे कोई गरमी-सी बिखर जाती.

कंबल का टुकड़ा अब झोंपड़े में, बेचर के नीचे, जमीन पर बिछा हुआ था और नयी कमीज सामने जंग लगे, टीन के डिब्बे पर रखी हुई थी.

★ ★

बेचर धीरे से उठा और अपनी कमीज पर हाथ फेरने लगा. बेचर की मां तथा मंगलू, दोनों खर्राटे भर रहे थे. बाप के खर्राटे ऊंचे थे और मां के नीचे. बेचर ने दोनों के ऊंचे-नीचे खर्राटे सुने, तो उसको आनंद आने लगा. और फिर उसने भी नकली खर्राटे भरने शुरू कर दिये. फिर उन तीनों के असली-नकली खर्राटे एक-दूसरे में खो-से गये.

खर्राटों की नकल करते-करते बेचर का गला सूख गया, तो पानी पीने के लिए वह झोंपड़े से बाहर निकल आया. बस्ती का कुत्ता, बांका, एक बार जोर से भौंका और फिर बेचर के पावों की आहट पहचान कर उसकी तरफ चला आया. बेचर ने पीपल के पेड़ के नीचे पड़े घड़े में से पानी भर कर पीया. घूंट भरते, पानी में उसे अचानक एक तारा टिमटिमाता और कांपता हुआ दिखायी दिया और फिर बेचर सिर उठाये देर तक काले आकाश की ओर देखता रह गया. दूर तक, मीलों की बस्ती के हर तरफ, कस्बे के उस पार और दूसरी ओर पहाड़ियों के परे रात बिखरी हुई थी, और रात की काली ओढ़नी में सैकड़ों तारों की मुकैश जड़ी हुई थीं. बेचर देर तक सोचता रहा— आकाश की यह सलमें-सितारों जड़ी कमीज कितनी सुंदर है! दूर खेतों में सैकड़ों जुगनू जगमग-जगमग कर रहे थे. बेचर बहुत देर तक यह सब कुछ देखता रहा. उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था— ये तारे, ये जुगनू, यह रात, यह आकाश की सितारों जड़ी कमीज और एक उसकी अपनी कमीज, जो अंदर पुराने, जंग लगे टीन के डिब्बे पर पड़ी हुई थी.

★ ★

बांके ने बेचर के पावों को सूंघ कर उसका ध्यान अपनी ओर खींचा. बेचर ने झुक कर उसका मुंह अपने हाथों में ले लिया. कुत्ते ने आंखें बंद कर लीं.

—बांके, मेरी नयी कमीज देखेगा? बेचर ने कुत्ते से पूछा. ओ बांके. . .

बांका पूंछ हिलाता रहा.

बेचर दौड़ कर झोंपड़े से अपनी कमीज उठा लाया. बांके को दिखाता रहा और बांका पूंछ उठाये बेचर के आगे-पीछे घूमता रहा. खुशी में लहराते बेचर ने बांके की पूंछ खींची तो बांका चीं-चीं करता भाग गया और बेचर खुशी-खुशी झोंपड़े में वापस आ गया. कमीज फिर पुराने टीन के डिब्बे पर रख दी और करवटें बदलते हुए, मां-बाप के खर्राटे सुनता हुआ, सुबह की प्रतीक्षा करने लगा.

उस शाम मंगलू ने घर आ कर यह खुशखबरी सुनायी थी कि बेचर के लिए काम मिल गया है. कस्बे



● फो. एस. पारीक

के साथ वाली जमीन में से, कुछ रूसियों की मदद से, सरकार तेल ढूंढ़ रही थी. तेल ढूंढ़ने के लिए कुएं खोदे जा रहे थे. ठेकेदारों ने काम शुरू कर दिया था और एक सुपरवाइजर से कह-सुन कर मंगलू ने बेचर के लिए भी काम पक्का कर लिया था.

बेचर की मां यह सुन कर खुशी से फूली न समायी. और फिर बेचर की मां ने जब कहा कि बेटे को पहली बार काम मिलने पर उसे कमीज ले दी जाये, तो मंगलू देर तक अपने बेटे बेचर के आबनूसी शरीर की ओर देखता रहा, और रात को बाजार से लौटते वक्त बेचर के लिए दो रुपयों की कमीज ले आया. बेचर ने इससे पहले कभी कमीज नहीं पहनी थी, कभी काम पर नहीं गया था और न ही कभी इस प्रकार सारी रात आंखों में काटी थी.

करवटें बदलते हुए उसकी सारी रात बीत गयी. रात, जुगनुओं की जगमग तथा आकाश की सितारों-जड़ी कमीज— सब चले गये, तो सुबह अपने रंग-बिरंगे वस्त्र पहने आ गयी.

बेचर एक बार देखना चाहता था कि पहनी हुई कमीज उसे कैसी लगती है. कमीज पहन कर बहुत देर तक वह एक टूटे हुए शीशे में घूरता रहा. किंतु टूटे हुए उस शीशे में कभी आधा हाथ नजर आता, कभी सिर्फ गला दिखायी देता और कभी अगले भाग का ऊपर वाला हिस्सा या नीचे वाला हिस्सा. पिछला भाग बिल्कुल दिखायी न देता. बेचर एक नजर में सारी की सारी पहनी हुई कमीज देखना चाहता था.

प्रातःकाल बांके को साथ लिये बेचर साथ के खेतों में चला गया.

एक खेत में फसल-मार पक्षियों को दूर रखने के लिए 'काग-भगौड़े' से बेचर ने पुराने कपड़े अलग किये. बांका भौंकता रहा. कपड़े से बेचर ने 'काग-भगौड़े' को साफ किया. बांका देखता रहा. उलटा-सीधा करके और खींचातानी करके बेचर ने 'काग-भगौड़े' को अपनी पूरी की पूरी कमीज पहना दी. बांके ने 'काग-भगौड़े' को इस नये रूप में देखा तो एकदम भौंक कर टांगों में पूंछ दबाये वहां से भागा. बेचर को बहुत आनंद आया और वह 'काग-भगौड़े' के इर्द-गिर्द चक्कर काटता पूरी की पूरी कमीज जी भर कर देखता रहा.

और फिर कमीज उतार कर वह नदी-किनारे नहाने चला गया.

एक छोटे-से पत्थर को एक पुरानी कील से रगड़-रगड़ कर बेचर ने उसका झांवा बनाया और फिर नदी में झांवें से रगड़-रगड़ कर अपना शरीर साफ किया. शरीर का आबनूसी रंग चमकने लगा. फिर अपनी पहली कमीज जब उसने पहली बार पहनी तो उलटी पहन ली. फिर उतार कर सीधी की, फिर पहनी तो फिर उसने कमीज को कई बार उतारा और कई बार पहना.

घर लौटते हुए बेचर मुसकरा रहा था और अपनी ही खुशी से लजा रहा था.

बेचर की मां ने बेटे को नयी कमीज में देख कर उसका माथा चूमा. मंगलू ने उसके सिर पर हाथ फेरा तो फिर मंगलू और बेचर की मां बहुत देर तक इस बात का फैसला न कर सके कि बेचर को मिलने वाली एक रुपये की रोजी में से 'मजा-मारने' के लिए जेब-खर्च के दो पैसे दिये जायें या पांच पैसे.

बेचर की मां ने गौर से बेचर के चेहरे की ओर देखा,

तो उसे लगा कि बचपन में मंगलू का नाक-नक्श बिल्कुल ऐसा ही रहा होगा. फिर उसने मंगलू को मनवा लिया कि बेचर को 'मजा-मारने' के लिए पांच पैसे दिये जायेंगे.

मंगलू लकड़ी के कारखाने की तरफ अपने काम पर चला गया. बेचर बाप के कहे-अनुसार, कस्बे से बाहर तेल के कुओं की खुदाई वाली जगह की ओर चल पड़ा. उसके जाने से पहले उसके हमजोली बेचर के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये और ललचायी नजरों से उसकी नयी कमीज की ओर देखते रहे. उसके हमजोली उसकी कमीज की बातें करते रहे और बेचर को बार-बार लड़कों में बांटी गयीं गेंदें याद आती रहीं.

रास्ते में बेचर को ऐसा लगा कि सभी उसकी नयी कमीज की तरफ देख रहे हैं. वह भी लोगों की कमीजों की ओर देखता रहा. किसी की सूती, किसी की रेशमी, किसी की खद्दर की, कोई नंगा और किसी की कमीज विलायती टैरिलीन की— साधारण कमीजें और रंग बिरंगी कमीजें. बेचर के लिए सड़क पर आज आदमी नहीं, कमीजें आ-जा रही थीं.

* *

खुदाई वाली जगह पर आये भील मजदूर बेचर को नयी कमीज में देख कर पहले तो बहुत खुश हुए, फिर सब हंसने लगे. लड़का 'दूल्हा' बन कर मजदूरी करने आया था. सभी उसकी कमीज की कीमत पूछते रहे और फिर देखते-देखते कई हाथों के दाग उसकी नयी कमीज पर लग गये. बेचर को बहुत बुरा लगा. काम पर आयी भील लड़कियों ने उसे आवाज दे कर बुलाया तो बेचर ने गुस्से से इनकार कर दिया.

खुदाई वाली जगह पर कई मजदूर काम में व्यस्त थे. बेचर को देख कर सबने काम छोड़ दिया. बेचर को ऐसा लग रहा था कि उन सबकी ईर्ष्यालु और प्रश्न-सूचक, तीक्ष्ण और मुसकराती आंखों से उसकी कमीज में जैसे छेद हो जायेंगे.

वहां भील मजदूरों ने घिसी-फटी पुरानी बनियाइनें या फटी-पुरानी कमीजें पहन रखी थीं. गहरी झुर्रियों वाले बूढ़े मजदूरों ने शरीर के इर्द-गिर्द केवल पुराने अंगोछे लपेटे हुए थे. कुछ पुलिस वाले थे, पुलिस की पोशाक में. मूछों वाला एक सुपरवाइजर था, खाकी पोशाक में. एक बड़ा सरकारी अफसर था, सफेद सूट और खाकी हैट में. और फिर देखते-देखते और कई हाथों ने बेचर की कमीज को खींचा, तो कमीज के कुछ बटन उखड़ गये.

एक बूढ़े भील ने अपना तौलिया एक तरफ रख कर तसले में गारा भरा तो बेचर को कमीज उतारने के लिए कहा. बेचर चौंक उठा.

मूछों वाले सुपरवाइजर ने रूमाल से अपने चेहरे का पसीना पोंछते हुए एक भद्दी-सी गाली दी, और बेचर को कमीज उतार कर काम करने के लिए कहा.

बेचर वहां से ऐसे भागा कि अपने झोंपड़े में पहुंच कर उसने दम लिया. मां का चेहरा उतर गया.

शाम को बाप के पूछने पर बेचर ने बताया कि वहां खुदाई वाली जगह पर तो उसे किसी ने काम पर लिया ही नहीं.

मंगलू सोच में पड़ गया और फिर दोबारा कहने-सुनने के लिए सांझ ढले सुपरवाइजर के घर गया.

रात को बहुत देर के बाद मंगलू जब घर आया तो धुली हुई कमीज बाहर रस्सी पर सूख रही थी और बेचर झोंपड़े से बाहर रस्सी के पास जमीन पर सोया हुआ था.

कमीज की जेब में एक जुगनू जगमगा रहा था. मंगलू ने हाथ मार कर जुगनू को झाड़ दिया.

बेचर ने नींद में कुछ बड़बड़ाते हुए करवट बदली.

मंगलू सोये हुए बेचर की ओर देखता रहा. वह इस बात को तो समझता था कि बेचर ने इससे पहले कभी कमीज नहीं पहनी थी, किंतु उसे इस बात की समझ नहीं आ रही थी कि बेचर यदि काम नहीं करना चाहता था तो यह झूठ बोलने की क्या आवश्यकता थी, कि वहां काम वाली जगह उसे किसी ने काम पर नहीं लिया.

मंगलू ने न तो आकाश की सितारों जड़ी कमीज की ओर देखा, और न ही अनगिनत जुगनुओं की जगमगाहट की ओर. गरदन झुकाये अंदर झोंपड़े में सोने चला गया.

रात, चारों तरफ बिखरी रात, बेचर की नींद की तरह खामोश थी, और कमीज किसी मेमने की उतरी खाल की तरह रस्सी पर लटकी हुई थी. □□□

२७/४३२, आजाद नगर, अंधेरी (पश्चिम),
बंबई-४०००५८

—दो लघुकथाएं

एक हकीकत

मैंने एक कहानी सुनी थी:

एक तालाब था. उसमें कमल के बड़े-बड़े फूल खिले हुए थे. एक लड़के ने जब उन फूलों को देखा तो उन्हें पाने के लिए बेताब हो उठा और तालाब में उतर गया. वह जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, तालाब की गहराई भी बढ़ती गयी. यहां तक कि वह उसमें डूब गया.

और आज मैं सोचता हूं कि वह कहानी नहीं थी, एक हकीकत थी. वह तालाब गुनाह थे. वे फूल रोटियां थीं. और वह लड़का सिर्फ इनसान था. □

कद्रदां

मैं एक दस पैसे का सिक्का हूं. बंक के दरवाजे के सामने पड़ा, बड़ी देर से एक-एक को तक रहा हूं.

मैं अपनी किस्मत पर अभी आंसू बहा ही रहा था कि एक सूखा हाथ मेरी तरफ बढ़ा और उसने मुझे उठा कर अपनी मैली पगड़ी में उड़स लिया. मैंने हैरत से उसे देखा. वह मुसकरा रहा था, जैसे कह रहा हो — छोटों की कदर छोटे ही करते हैं. बड़े तो उस वक्त कद्रदां होते हैं, जब छोटे एक समूह में होते हैं.

□ जाफर मेहदी जाफरी

अग्निरेखा

चित्रा मुद्गल

लगता है, 'वह' आवाज न हो कर एक 'चीख' बन गयी है, जो घर के जमे हुए सन्नाटे को अकसर तोड़ती रहती है. कभी-कभी उसे ऐसा भी महसूस होता है कि उसके आस-पास भयानक चीखों की बेशुमार भीड़ इकठ्ठी हो गयी है जिनके तीखे स्वर वह खुद नहीं सुन पाती. कोशिश करके भी अपनी आवाज को नहीं पहचान पाती, उसे आश्चर्य होता है, पता नहीं कब, कैसे, इन सबके मायने बदल गये हैं जो कभी उसके अपने नहीं थे, या शायद, उसीकी खातिर बदल दिये गये हैं और अकसर उसे यह समझाने की चेष्टा हर कोई करता है कि जो कुछ 'वह' सोचती है, उसका मायने यह था, वह नहीं, जो कुछ वह सोचती है. उसे यह सब इतना अधिक असहनीय लगता है जैसे वह सिर्फ उन लोगों का 'समझाना' मात्र बन कर रह गयी है, जो वह कभी नहीं रहना चाहती...

बिस्तर पर पड़े-पड़े उसकी दृष्टि घर की हर -हलचल का स्पर्श करती रहती हैं और जब वह थक कर चूर हो जाती है तो अपने सिरहाने रखी हुई, दवाइयों की शीशियों से लदी, गोल नन्हीं टेबल पर अटक जाती है. तब उसे लगता है, फिर से उसकी चीखों का सैलाब फट पड़ा है. वह 'वह' न हो कर इन तमाम दवाइयों की छोटी-बड़ी शीशियों में विभक्त हो गयी है, जो धीरे-धीरे खाली होती जा रही हैं और फिर वह घबड़ा उठती है — सुबह उसने डा. दत्ता से कहा था, आप कुछ और दवाइयां लिख दीजिए न! ये तो खत्म होने को आ रही हैं. वे मुसकरा पड़े थे. कई बार आंखों की कोरों को खींचते हुए उन्होंने न जाने क्या जांचा और एक लंबी सांस जो उनकी थी, उसने अपने सूखे चेहरे पर 'भाप' की तरह महसूस की... और अपने अस्तित्व के प्रति आश्वस्त हो कर उसने इत्मिनान से अपनी पलकें मूंद ली थीं. उसे पेपर लिखने तथा फाड़ने की आवाज से महसूस हुआ था कि 'प्रिस्क्रिप्शन' पास खड़ी हुई शशी को पकड़ाया जा रहा है. और उसने यह हिदायत भी सुनी कि दवाइयां आज दोपहर तक अवश्य आ जानी चाहिए. डॉ. साहब की पदचाप के साथ-साथ शशी के स्लीपरों की आहट भी दूर होती चली गयी थी. वह कोशिश कर के भी अपनी भारी होती हुई पलकें खोल नहीं पायी.पता नहीं, डा. साहब ने जो 'डोज' उसे अभी दिया था शायद उसमें नींद की दवा भी मिली हुई थी.

★ ★

नींद खुली, तो शाम हो आयी थी. उसे पॉट की जरूरत महसूस हुई. आवाज दे कर उसने बाई को पॉट दे जाने के लिए कहा तथा बाद में 'रनिंग चेयर' भी ले आने की हिदायत दी. न जाने क्यों, आज उसका बड़ा मन कर रहा था, 'बालकोनी' में बैठ कर निस्सीम समुद्र के एकाकीपन को अपनी दृष्टि में समा ले, वह — जो अपने अंतर में सबको समा सकता है किंतु स्वयं किसी में नहीं. उसका अकेलापन शायद उससे बहुत बड़ा है... उसकी गर्जना — शयाद मनु की चीखों से ज्यादा ऊंची है...

समंदर से लगे हुए इस 'मनुबेला' अपार्टमेंट्स में फ्लैट लेने के समय, अमरेंद्र तथा उसके बीच काफी कहा-सुनी हुई थी. अमरेंद्र की फैक्टरी से यह घर दूर भी बहुत पड़ता था. 'ड्राइविंग' में पौना घंटा लग जाना तो निश्चित था ही, उसके साथ-साथ अमरेंद्र का एक और 'रीजन' था. स्वास्थ्य की दृष्टि से वह बचपन से ही 'स्नोफीलिया' का मरीज रह चुका था. इस दृष्टि से समुद्री हवा उसके लिए नुकसानदेह साबित हो सकती थी, किंतु हुआ वही, जो उसने सोचा और निर्णय लिया. पहली बार जब वह इस घर को देखने आयी थी तो उसे महसूस हुआ था, बस! यही वह घर है जिसे वह कब से ढूंढ़ रही है. बना भी इतना सुंदर था कि हर कमरे की खिड़की समुद्र की ओर ही खुलती थी...

—दीदी, बाहर 'बालकोनी' में बैठेंगी क्या? शशी उससे पूछ रही थी तथा बाई 'रनिंग चेयर' भी ले आयी थी.

—हां, उसने अपने आपमें लौटते हुए संक्षिप्त-सा उत्तर दिया.

शशी तथा बाई ने उसे सहारा दे कर 'चेयर' पर बैठा दिया. फिर 'बालकोनी' में पड़ी हुई आराम कुर्सी पर अगल-बगल दो कुशन लगा कर उसे पुनः सहारे से बैठा दिया.

.. उसके सामने सांझ के झुटपुटे में डूबते हुए सूरज का 'लाल' गोला था. किनारे की ओर दौड़ती चली आ रही लहरों पर सुनहरी ललाई तैर रही थी. सब कुछ वैसा ही ... एक शाम अमरेंद्र के साथ जब वह इस 'बालकोनी' में बैठी थी तो डूबते हुए लाल सूरज की ओर देख कर अमरेंद्र थोड़ी देर कुछ सोचता रहा था फिर सहसा उसका चेहरा अपनी ओर घुमा कर बोला था — लगता है, तुमने अपने माथे पर डूबता हुआ सिंदूरी सूरज टांक लिया है मनु...

वह सुन कर कुछ अन्यमनस्क हो उठी थी, पता नहीं, यह प्रशंसा थी या उस वातावरण की अभिव्यक्ति. पर यह सच था, जो कुछ भी तुलना में कहा गया था वह उसे अच्छा नहीं लगा था... और उसने उस दिन से माथे पर सिंदूर की बिंदी का आकार छोटा कर दिया था.

—आपके लिए 'काफी' बना लाऊं दीदी? शशी का स्वर काफी उल्लसित था.

इस लंबी बीमारी के दौरान आज पहली बार दीदी पहले की तरह 'बालकोनी' में बैठी थीं. मां के पास से जब वह इस घर में आयी थी तब अकसर दीदी तथा जीजा जी को इस जगह शाम की चाय पीते हुए देखती रहती थी.

—कॉफी नहीं, चाय अगर. . . मनु का स्वर अधूरा ही रह गया.

—ओ, श्योर, श्योर दीदी, अभी लायी.

—देखो, शक्कर जरा मेरे हिसाब से.

—बिल्कुल! साथ में ले आऊंगी. वह हंसती हुई किचिन की ओर मुड़ गयी. बहुत दिनों बाद शक्कर ज्यादा डालने की आदत पर दीदी ने पहले की तरह चुटकी ली थी.

. . . एक अरसा हो गया है शशी की यह निश्चल हंसी सुने हुए तथा खुद भी हंसे हुए. और यह अरसा. . . जो भयानक नियति की तरह उस पर गुजरा है —उसने उसका ही नहीं, सबके चेहरे बदल दिये हैं, अब जो कुछ भी वे एक दूसरे के सामने हैं, कितने अपरिचित, कितने अजनबी हैं. शायद इस हंसी की तरह, कभी-कभी वे अपनी पुरानी शक्ल में आत्मीयता के साथ उभर आते हैं. . . उसे महसूस होता है, क्या वक्त हमारे चेहरे बदल देता है? या हम खुद ही अपने आपको बदल लेते हैं. . .

. . . अम्मा ने लिखा था — मैं तो यही चाहती हूं कि इस खुशी के अवसर पर मैं तुम्हारे करीब रहूं, लेकिन बेटे-बहू के चक्कर में इस तरह फंसी हूं, न तुम्हारे पास आ सकती हूं, न तुम्हें यहां बुला सकती हूं, बहू का भी छठा महीना चल रहा है, सब कुछ उसे बिस्तर पर ही चाहिए, ऐसे में उसे अकेला छोड़ने का मतलब समझती हो न! मैं जानती हूं, तेरा भी समय नजदीक है और अमरेंद्र के घर से भी तेरे पास खड़ा होने वाला कोई नहीं है. . . पर तू घबड़ाना बिलकुल नहीं, अस्पताल में तो सब कुछ बड़े-बड़े डाक्टर संभालते हैं, नर्सें हर तरह का ध्यान रखती हैं. . . खैर, मैं शशी को तेरे पास भेजना चाहती हूं. एक बात मैं तुझे छुपा कर लिखवा रही हूं, भाई-भाभी के रहते हुए भी अब शशी का सारा जिम्मा तेरे ऊपर है, उसे वहीं किसी कालेज में दाखिल करवा देना. तुझे भी सहारा रहेगा और वह भी तुम लोगों के भरोसे कहीं लग जायेगी. मैं जानती हूं, अमरेंद्र तुझे बहुत मानता है. . . यह चिट्ठी पढ़ कर फाड़ देना.

. . . अम्मा को अपने जिंदा रहने का बहुत दुख था. बाद में भी उन्होंने कई चिट्ठियां लिखवायी थीं और उसने उनके कहे मुताबिक उन्हें फाड़ कर फेंक भी दिया था.

उसी बीच अमरेंद्र को किसी 'आफीशियल वर्क' से दिल्ली जाना था और अपने टाइट शेड्यूल से किसी तरह वक्त निकाल कर वह आगरे गया तथा शशी को अपने साथ ले आया. अमरेंद्र ने बताया था. . . अम्मां बहुत रो रही थी, सच कहूं तो मनु, इस बार मुझे वे जितनी मजबूर लगीं. . . साले रास्कल हैं दोनों. . .

बाद में शशी से पता चला था, भाभी, आया को तो दस बार ठीक से पेट भर कर खा लेने की हिदायत देंगी, खुश हो कर उसे पिक्चर देखने का पैसा भी दे देंगी. दोपहर में थोड़ा आराम करने के लिए भी कहती रहेंगी, उसे जरा-सी छींक आयी नहीं कि तुरंत दवाखाने भेजेंगी. इस भय से कि कहीं वह काम छोड़ कर न चली जाये, लेकिन अम्मा का रहना उन्हें फूटी आंख भी नहीं भाता. . . न उनका बेहिसाब पान खाना, न बेवजह जिस-तिस को खाने पर बैठा लेना. एक दिन तो भाई साहब के सामने ही भाभी ने अम्मा से कह दिया. . . 'पेंशन तो आपको सिर्फ अस्सी रुपये मिलती है. . . अम्मा भी चिढ़ आयी थीं यह सब सुनते-सुनते. और बेलिहाज बोल ही पड़ी थीं—धोतियां



● आर. एस. सक्सेना

तक तो तीन साल से मैं मनु की उतारी हुई पहनती चली आ रही हूं...

आगे जो कुछ शशी ने बताया था, वह मनु को उद्वेलित कर गया... आदमी नौकरानी रख सकता है मां नहीं?...

★ ★

उसने तो बस उस छोटी-सी शशी को देखा था जो अक्सर चिट्ठियों में उसे अपनी फरमाइश की लिस्ट भेजा करती थी... दीदी, अब की बार जब आप बंबई से आयें तो मेरे लिए एक ब्राऊन स्लैक्स ले आना. हां, बाटा की हिल्स वाली सैंडिल भी, जैसी पिछली बार आप आगरे पहन कर आयी थीं. यहां बाटा की किसी भी दुकान पर आपकी जैसी सैंडिल दिखाई ही नहीं देती... और दीदी एक 'कंडक्टर' टाईप वाला 'पर्स' भी... चिट्ठी में घर के हाल-चाल पर बस यही सब होता था... जब वह आगरा स्टेशन पर उतरती तो पाती, भइया के साथ शशी भी उसे लेने आयी है. सलवार कमीज पहने छोटी-सी शशी. वही निश्चल खिलखिलाहट... तांगे पर बैठते-बैठते वह पूछती, दीदी,—जीजाजी कैसे हैं? वे कब तक आयेंगे? आप कितने दिन रहेंगी? — हम नहीं जाने देंगे जल्दी.. और जल्दी-जल्दी ये तीन चार आवश्यक प्रश्न पूछ कर फिर वह अपनी बात पर आ जाती, दीदी, आप मेरी लिखी हुई चीजें लायी हैं या नहीं? वह जोरों से हंस पड़ती—अरे घर तो पहुंचने दे पगली.

—नहीं दीदी, अभी, प्लीज... प्लीज...

... और यह शशी, जो अमरेंद्र के साथ आयी थी वह सचमुच और थी. एक दम बड़ी हो गयी शशी, — नहीं, एक लंबा अरसा बीत गया था उसके बड़े होने के बीच. मामी तथा भाई साहब के लफड़ों की बजह से वह तीन-चार साल से घर भी नहीं गयी थी. फिर पापा भी अब नहीं रहे... अम्मा के हाल-चाल चिट्ठियों से मिल ही जाया करते थे. कई बार अम्मा लिखवा भेजती थीं, —मैं जानती हूं वे नहीं रहे — यह घर भी तेरे लिए नहीं रहा...

कितना सच लिखा था अम्मा ने. वह घर तो तब तक उसे अपना लगा था जब तक पापा थे.. ..

पेंटिंग करने का उसे कितना शौक था बचपन में! जब वह पापा के लेटर पैड पर आड़ी-तिरछी रेखाएं खींचती तो अम्मा उसे पकड़ कर बाथरूम में बंद कर देतीं, हजार रुपये फूंक दिये गये इन पैडों के पीछे. तेरी चित्रकारी के लिए छपवाये हैं? अम्मा के क्रोध से वह डरती थी किंतु पापा...

—कितनी पुरानी बातें हैं...

एक दिन जब वह स्कूल से लौटी तो उसने पाया, कल शाम उसने जो हनुमानजी का रेखाचित्र बनाया था वह ड्राइंग रूम में बड़े सलीके से 'कार्ड बोर्ड' पर चिपका कर लगाया गया है, तथा किसीने उसका नाम भी बड़े सुघड़ अक्षरों में लिख दिया है, 'मनु'.

ऐसे ही एक दिन उसने पाया, बेड रूम के एक कार्नर में पड़ी पापा की 'स्टैंडी टेबल' की ऊपरी दीवार उसके अजीबो-गरीब चित्रों से भरी पड़ी है. दीवार के इस दुरुपयोग से अम्मा ने दुखी हो कर पापा को जली-कटी सुनाई थी—यह तो रंग और पेपर खराब करती है ऊपर से तुम उसे टांकते फिरते हो. फिर गुस्से से पैर पटकती हुई वे किचन में चली गयी थीं. वह जो इस समय पर्दे की ओट में छुपी खड़ी अम्मा का आपे से बाहर होना देख रही थी झट से दौड़ कर पापा के पास पहुंच गयी. पापा ने उसे बाहों में भर लिया, और बोले — बहुत डांट पड़वाती है तू!

—तो फिर मार खाने के लिए तैयार हो जाइए. उसने शरारत से भर कर पापा की नाक से नाक रगड़ते हुए कहा.

—कुछ और बनाया है क्या?

—हां, यह देखिए! उसने हंसते हुए उन्हींकी टेबिल पर रखी हुई एक किताब के नीचे से एक पेपर खींच कर उनके सामने कर दिया. हंसी अब भी नहीं रुक रही थी उसकी.

—अरे वाह! रेलगाड़ी!

—कैसी बनायी है पापा?

—भई बहुत बढ़िया, बस लगता है, धुंआ छोड़ती हुई अभी पटरी पर दौड़ने लगेगी....

—पापा...

सब कुछ अच्छी तरह याद आ रहा है. मन एकदम अशांत हो उठा.. आंखों की नमी बूंद बन कर गालों पर बह चली. गले के भीतर कुछ घुमड़ रहा था जिसे वह जज्ब करने की कोशिश कर रही थी! पर...

—दीदी! आपकी चाय एकदम पानी हो चुकी है. शशी की आवाज उसे कोसों दूर से आती हुई लगी.

—तुमने पी ली? उसका स्वर भारी था.

—कब की, पता नहीं आपको रह रह कर क्या हो जाता है, कुछ कहने से भी लगता है वह आप तक नहीं पहुंच पाता. फिर से गर्म कर लाऊं?

—हां, कर दो तो...

वह कप उठा कर किचिन की ओर बढ़ गयी. दीदी की आंखों की नमी उससे छुपी नहीं थी. सच, तो यह था कि कप रख कर वह वहां से हट गयी थी. दीदी का इस तरह ऑफ हो जाना वह फेस नहीं कर पाती, न खुद ही सामान्य रह पाती है — कभी-कभी तो उसे लगता है, दीदी की इस लंबी बीमारी की वजह से नहीं शायद उसकी वजह से, इन चारदीवारों के भीतर कई दीवारें खड़ी हो गयी हैं, जिन्हें लांघ कर न दीदी उस तक आ पाती हैं, न वह दीदी तक पहुंच पाती है जब कि उसकी हर कोशिश, हर प्रयत्न यह होता है कि दीदी की देखभाल में कहीं कोई कसर न रह जाये, इस घर की भी नहीं, जो दीदी का है...अमरेंद्र की भी नहीं!

★ ★

परसों रात की ही बात है, अमरेंद्र काफी देर से आये थे. आते ही उन्होंने दीदी के विषय में पूछा था तथा डाक्टर दत्ता की रिपोर्ट के बारे में भी. उसके बाद में वे दीदी के कमरे की ओर मुड़ गये किंतु शीघ्र ही लौट आये. शायद दीदी सो रही थी. फिर शशी को खाना लगाने के लिए कह कर वह नहाने के लिए चले

गये. नहा कर लौटे तो शशी को वे काफी फ्रेश लगे. खाना उन्हें विशेष पसंद आया था. खुश हो कर उन्होंने शशी की काफी तारीफ की. तुमने भरवां करेले बिलकुल मनु की तरह बनाये हैं शशी! और यह खीर... मखाने की खीर मेरी कमजोरी है यह मनु जानती है...

अमरेंद्र जब बैड रूम की ओर मुड़े तो उसने उन्हें आग्रह पूर्वक थोड़ी देर और बैठने के लिए कहा. वह उन्हें एक सरप्राइज देना चाहती थी... ठीक बारह बजे जब उसने अमरेंद्र को नर्गिस के फूलों का गुच्छा भेंट करते हुए उनके जन्मदिन पर बधाई दी तो वे सहसा स्तंभित रह गये, आज?

—यह देखिए डेट चेंज हो गयी है, नौ मई...

—तुम्हें याद कैसे है?

—मुझे याद है, दीदी इसी तरह आपको..., शशी की बात फिर अधूरी रह गयी थी, अमरेंद्र ने उसे बाहों में भर लिया था... उसे महसूस हुआ, उसकी गर्दन, पलकें, होठ... सब अमरेंद्र के होठों की तपिश से जलने लगे हैं. और वह उनके लिए शशी नहीं, मनु बन चुकी है. पूरी तरह मनु...

सुबह जब उसने दीदी को बताया कि अमरेंद्र को, उनके जन्मदिन पर उसने ठीक उनकी तरह सरप्राइज बधाई दी तो सहसा वे उल्लसित हो उठीं—सच, फिर स्वयं बुदबुदा उठीं — पता नहीं, मैं कैसे भूल गयी... शायद बिस्तर पर पड़े-पड़े अब दिन, तारीखें, बातें मेरे लिए नहीं रहीं...

शशी दवाइयों की टेबिल पर कुछ ढूंढने के लिए झुकी. दीदी के बुझे से स्वर ने उसे चौंका दिया—तेरी गर्दन पर वह नीला दाग कैसा है?

...प..पता नहीं. वह सकपका उठी. उसका एक हाथ अपनी गर्दन पर चला गया. उसे महसूस हुआ, रात जैसे बीती नहीं, उसकी गर्दन पर चिपक कर रह गयी है.

चाय के फदफदाने की आवाज से उसका ध्यान जब चाय पर गया तब तक आधी चाय जल चुकी थी. हड़बड़ा कर उसने आधा कप दूध डाल कर पुनः एक बार चाय को उबाला. फिर उसे लगा, इतनी उबली हुई चाय दीदी को देना ठीक न होगा. अतः उसने दुबारा ताजा चाय बनायी तथा मग में डाल कर दीदी के पास आयी.

दीदी, धीरे-धीरे चाय सिप् करने लगीं. शशी उठ कर रेलिंग पर कुहनियां टिकाये घुप्प अंधेरे में ताकने लगी. आमने-सामने पड़ने पर न दीदी सहज हो पाती हैं न वह स्वयं. लेकिन आज लग रहा है दीदी काफी सामान्य हैं—बिलकुल उसकी अपनी दीदी, और वह पहले की तरह उनके कंधे पर सिर रख कर खूब रोना चाहती है, उन्हें सब कुछ बताना चाहती है. उनका वह दुलार भरा स्पर्श चाहती है... लेकिन ऐसा नहीं हो पाता. दूरियां लगता है उनकी शिराओं में बहने लगी हैं.

—कालबेल की आवाज से वह चौंक उठी, रेलिंग से अलग हो पैसेज़ की ओर मुड़ी कि दीदी पूछ बैठीं —क्या अमरेंद्र आ गये?

—शायद बाई है, वे तो साढ़े दस या ग्यारह के करीब आने के लिए कह गये हैं.

मनु को चाय काफी कड़वी लग रही थी. शायद दुबारा गर्म करने की वजह से या शशी की इस बात से. शायद अमरेंद्र के विषय में अब जो कुछ भी जानना होगा वह शशी के माध्यम से ही!...

* *

आज डा. दत्ता कुछ जल्दी ही आ गये थे और इत्तिफाक से अमरेंद्र घर पर ही थे. उसको 'एक्ज़ामिन' करने के बाद वे अमरेंद्र से बोले थे — भई, कोशिश यह कीजिए कि ये उलूल-जलूल सोचना-विचारना बिलकुल छोड़ दें, तभी दवाइयां असर भी करेंगी. वैसे बायें पैर में थोड़ा मूवमेंट होना शुरू हो गया है. 'लेट अस होप' मालिश वगैरा वैसी ही होती है न? वे शशी की ओर मुखातिब हुए?

—जी, बाई और मैं दोनों ही नियम से ध्यान रखते हैं.

—गुड! वैसे छह-सात दिन हास्पिटल लाना ही होगा, शाक आदि के लिए. फिर वे मनु की ओर मुड़े तथा झुक कर उन्होंने उसके गाल स्नेह से थपथपाये— बी ब्रेव!... फिर अमरेंद्र तथा शशी के साथ हाल की ओर मुड़ गये.

—डा. साहब, चौबीस घंटे तो मैं इनके साथ रहता नहीं हूं, इन्हें खुद भी अपना ध्यान रखना चाहिए... जाते हुए अमरेंद्र का स्वर उसके कानों को सुन्न कर गया... यह सब बातें कितनी खोखली हैं. उसका जो कुछ छिन गया है या जो छीना जा रहा है वह अनायास नहीं है, सप्रयास है. उसकी मानसिक यंत्रणा उसकी अपनी गढ़ी हुई नहीं है बलिक उनके जीने की शर्त की स्वार्थपूर्ण देन है. एक दिन उसने जब अमरेंद्र को इस बात की शिकायत की थी तो वे बोले थे—तुम्हें मैं किसी भी रूप में पाता हूं तो पा लेना चाहता हूं. मैं उसे उतनी ही सहजता से स्वीकार भी कर लेता हूं और तुम... तुम इसे अपने खिलाफ षडयंत्र समझती हो...

सच तो यह है, वह जो कुछ भी समझती रही वैसा कुछ भी तो नहीं हुआ... दोषी वह है या ये घटनाएं जो नियति बन कर उसे हर तरह से, हर तरफ से तोड़ती रहीं, और शेष है... गिजगिजे केंचुए-सी वह.

बड़े-बड़े डाक्टर कुछ भी नहीं संभाल पाये—न बच्चा बचा न मनु के बचने की उम्मीद थी. उपायहीन अमरेंद्र ने घबड़ा कर अम्मा को टेलीग्राम कर दिया था तथा आने के लिए पैसे भी भेज दिये, और पांचवें दिन जब अम्मा अस्पताल पहुंचीं तो नर्स ने उन्हें दुखित स्वर में बताया— साढ़े आठ पौंड के उस खूबसूरत बच्चे ने तो दुनिया में आ कर आंखें ही नहीं खोलीं, मनु...

...और मनु की नाक में आक्सीजन की नलियां थीं, ग्लूकोज तथा ब्लड चढ़ाया जा रहा था. वे खामोश उसका हाथ पकड़े बैठी रहीं और उसका निस्तेज नीला पड़ता चेहरा देखती रहीं.

—वे, जो कृत्रिम सांसें उसे दी गयी थीं, कितनी कम थीं उसके लिए... वे जान दे सकीं तो बस कमर के ऊपरी हिस्से तक ही. इतना जीवित हिस्सा भी उसे अस्पताल में चार महीने तक अनवरत जीवन संघर्ष के बाद

प्राप्त हुआ था. वह जो कार से उतर कर अपने वार्ड तक चल कर गयी थी— लौटी तो अपाहिज हो कर.

अपाहिज ऽऽऽऽ

लगता है वह अपने शरीर से कहीं ज्यादा अपाहिज दिमाग से हो चुकी है जो कभी उसे शायद इस काबिल नहीं छोड़ेगा कि वह 'सही चीज को सही मायने में सोच सकें, जी सकें, पा सकें. . .

उसे लग रहा था कि एक भयानक तूफान ने उसके घर को जड़ से उखाड़ फेंका है. वह मांस के एक बेडौल लोथड़े की तरह उसमें उड़ी जा रही है. दो खौफनाक पक्षी उसके करीब सिमट आये हैं और अपनी सुर्ख चोंचें खोल कर उसे निगल जाने के लिए झपट पड़े हैं, वह अचानक चीख पड़ती है — नहीं. . . नहीं. . .

—क्या हुआ मनु? अमरेंद्र की आवाज उसके कानों में पड़ती है. वह देखती है कि अमरेंद्र उसकी बगल में लेटा है और उसे बाहों में भरे है. वह पसीने से भीगी हुई हांफ रही है.

उसने आंखें बंद कर लीं. उसे दौड़ कर आती हुई शशी के नंगे पैरों की धप-धप आवाज तूफान में उभर कर आये पक्षी के डैनों की आवाज की तरह अपने मस्तिष्क पर छाती हुई महसूस होने लगी. . . □□□

७४, पत्रकार नगर, बांद्रा (पूर्व) बम्बई –५१

एक लघुकथा

धर्मकुमार

● ब्रह्मदत्त

नाम?

—धर्मकुमार.

—काम?

—स्त्रियों के क्रय-विक्रय का व्यापार है इसका. चित्रगुप्त ने क्रोधित हो कहा.

—क्या स्त्रियों की बहुतायत है इसके पास?

—नहीं, महाराज! फंसा कर, फुसला कर लाता था. कई एजेंट भी थे जो इसका काम करते थे. सभी नगरों के वेश्यालयों को यही सप्लाई करता था.

—क्या पृथ्वी पर इतनी स्त्रियां थीं कि इसकी जरूरत पूरी हो जाती थी? धर्मराज ने पूछा.

—नहीं, कठिनाई तो इसे भी हुई है कई बार, लेकिन फिर भी किसी-न-किसी तरह यह अपना काम चला लेता था. नकली शादियां अथवा एजेंटों से अपहरण करवा लेता था. एक बार तो इसने अपनी हिमिका नाम की पत्नी को भी बेच डाला था.

—अच्छा! तब तो यह बड़ा कुशल व्यापारी मालूम होता है. इसे फौरन दक्षिणी ध्रुव भेज दो. धर्मराज ने हाथ हिला कर कहा.

—दक्षिणी ध्रुव? . . .प्रभु! चित्रगुप्त ने विस्फारित नेत्रों से धर्मराज की ओर देखा—यह तो कुंभीपाक नरक का अधिकारी है.

—वह तो ठीक है, मगर चित्रगुप्त, इक्कीसों नर्कों में स्थान रिक्त नहीं है, तुम्हींने बताया था. और जल्दी खाली होने की आशा भी नहीं है, क्योंकि सभी लंबी अवधि के लिए आये हैं. इसके अलावा, चित्रगुप्त, जरा बाहर तो देखो, अगणित आत्माएं पंक्ति बांधे खड़ी हैं. सृष्टि के आरंभ से इतनी लंबी पंक्ति मैंने कभी नहीं देखी.

—सत्य है, महाराज! चित्रगुप्त ने नतमस्तक हो कहा—दक्षिणीध्रुव में इसे दंड देने के लिए अपने आदमी भी भेजने पड़ेंगे?

—नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी. मैंने एक नई विधि अपना ली है. ये पृथ्वी के प्राणी बड़े कुशल हैं. सब अपने कर्मफल तो भोगेंगे ही. साथ ही इनकी कार्य-कुशलता की परीक्षा भी हो जायेगी.

—वहां यह अपनी क्या कुशलता दिखायेगा?

—वही, जो इसने अब तक दिखायी है. दक्षिणी-ध्रुव में हिमशिलाओं की कोई कमी नहीं है, खूब बेचे और खूब खरीदे वहां जा कर! धर्मराज ने आंखें तरेर कर कहा. चित्रगुप्त ने मुसकरा कर कहा—अगर सब बेच ले जाये तब?

—तब इसे उत्तरी ध्रुव भेज दी. धर्मराज ने हंस कर कहा.

—एवमस्तु! चित्रगुप्त ने होठों में बुदबुदा कर कहा. धर्मराज मुसकरा कर चल पड़े.

—सेठ! सेठ!! धर्मकुमार चीखा.

—क्या है? धर्मराज रुक गये.

—मेरे कमीशन का क्या होगा, सेठ? धर्मकुमार गिड़गिड़ाया.

—बहुत मिलेगा. धर्मराज गंभीर हो गये—चित्रगुप्त, इसका कमीशन एडवांस में दे दो.

—जो आज्ञा, महाराज. चित्रगुप्त ने सिर झुका कर कहा और फुरती से अपनी मेज की दराज खोल कर उसमें से एक छोटी झोली निकाल कर धर्मकुमार के सिर पर हिला दी.

धर्मकुमार के सारे शरीर में सफेद-सफेद कीड़े बिलबिलाने लगे. □□□



● एस. टी. चौधरी

छह लघुकथाएं

मशविरा

बादशाह हिलाकू खान के दरबार में नसीर उद्दीन तूसी की बड़ी इज्जत थी. हिलाकू खान के मंत्रिमंडल में एक और मंत्री था जो तूसी से द्वेष रखता था वह हमेशा उसके विरोध में कोई न कोई साजिश करता रहता था.

जब हिलाकू खान की मां का देहांत हुआ तो इस मंत्री ने मौके का फायदा उठाया और जंगजू हिलाकू खान से बोला—हुजूरे आला, यह तो आप जानते हैं कि कब्र में फरिश्ते मरने वाले से तरह-तरह के प्रश्न करते हैं. तूसी एक अति विद्वान मनुष्य है उसको आपकी प्यारी मां के साथ ही दफना दिया जाये तो वह मां के बदले में माकूल उत्तर दे सकेगा.

हिलाकू खान ने इस मशविरे का जिक्र तूसी से किया. प्रत्युत्तर में तूसी बोला—हुजूर, मुझे तो आप विशेष रूप से अपने लिए रखें और अपनी प्रिय मां के साथ उस विद्वान को दफना दें, जिसने आपको यह मशविरा दिया है.

हिलाकू खान ने ऐसा ही किया. □

विश्वास

एक बार मिस्र के राज्यपाल मदीना पहुंचे. मदीना के खलीफा अमर फारुक को उन्होंने देखा कि वह जैतून की चटनी के साथ जौ की रोटी खा रहे हैं. उन्होंने प्रश्न किया—महोदय, आजकल मिस्र में काफी गेहूं आ रहा है. आप गेहूं की रोटी क्यों नहीं खाते? हजरत उमर ने उत्तर दिया—मेरे भाई, इस समय मुझे केवल इतना मालूम है कि मेरे देश के प्रत्येक आदमी को जौ की रोटी तो मिल रही है मगर गेहूं की रोटी सबको नहीं मिल रही है. जिस दिन मुझे विश्वास हो जायेगा कि सबको गेहूं की रोटी मिल रही है मैं उसीकी रोटी खाना पसंद करूंगा. □

(प्रस्तुतकर्ता : अहद 'प्रकाश')

पारिश्रमिक

प्रसिद्ध लेखक पतझड़ की पहली पुस्तक 'कांटे' उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशनार्थ स्वीकृत हुई. यह पुस्तक उनके बेटे की मृत्यु के कुछ समय बाद छप कर बाजार में आयी. इस पुस्तक का पारिश्रमिक उनके पौत्र की मृत्यु के पश्चात् उनके वयोवृद्ध प्रपौत्र को मिला जो उसके पुत्रों के काम आया. □

(प्रस्तुतकर्ता : दुर्गादत्त दुर्गेश)

गड़बड़ी

● वि. स. खांडेकर

ग्रीष्म ऋतु में एक दिन अत्यधिक ताप से म्लान हो कर एवं अपना खेल छोड़ कर कामदेव विश्राम करने के लिए एक गुफा में गया. दुर्भाग्यवश यह गुफा मृत्यु की थी. गुफा में जाते ही वह लेट गया. अतएव उसकी पीठ पर लगे तरकस के बाण जमीन पर गिर पड़े और वहीं पड़े हुए मृत्यु के बाणों के साथ मिल गये. नींद से उठने पर कामदेव अपने बाण एकत्रित करने लगा, लेकिन मृत्यु के बाणों के साथ उसके बाण इतने मिल गये थे कि अपने बाण छांटना उसके लिए मुश्किल हो गया. अतएव उसके कुछ बाण मृत्यु के बाणों में मिल गये और उसके तरकस में मृत्यु के कुछ बाण आ गये.

वृद्ध और गलितांग मनुष्यों को काम-पीड़ित होते एवं सुंदर तथा तरुण पुरुषों को मृत्युवश होते हुए जो हम देखते हैं, उसका यही कारण है. □

(अनुवाद : प्रभाकर वासुदेव जैन)

नयी मान्यता

● कुमार

एक शिक्षक था. उसके चार बेटे थे. जब शिक्षक बूढ़ा हो गया तो उसके लड़कों में बंटवारे के लिए लड़ाई होने लगी. जब स्थिति काफी नाजुक हो गयी तो शिक्षक ने बेटों को बुला कर समझाया—साथ रहने में ही बल है. अलग हो जाने पर तुम सब कमजोर पड़ जाओगे. कथन को पुष्ट करने के लिए शिक्षक ने बेटों को लकड़ी का एक गट्ठर दिया और तोड़ने के लिए कहा. गट्ठर किसीसे न टूटा. तब शिक्षक ने गट्ठर को खोल दिया और लकड़ियों को अलग-अलग करके तोड़ने के लिए कहा, बेटों ने तुरंत लकड़ियों को तोड़ दिया.

लेकिन शिक्षक का यह दृष्टांत ज्योंही समाप्त हुआ कि उसका छोटा लड़का बोल उठा—यह मान्यता बहुत पुरानी पड़ गयी है पिताजी!

यह अर्थ-संकट का युग है. इस युग में हमें नयी मान्यताओं को स्वीकार कर के ही जीवन जीना होगा.

इतना कह कर उस लड़के ने पिता के समक्ष मिट्टी के दो गमलों को हाजिर किया. पहले गमले में जअमरुद का एक पौधा लहरा रहा था. दूसरे गमले में अमरुद के चार पौधे लगे थे. पिता को संबोधित करते हुए लड़के ने कहा—देखिए पिताजी! जिस गमले में अमरुद का एक पौधा लहरा रहा है, वह कितना पुष्ट हरा-भरा एवं होनहार है. परंतु जिस गमले में अमरुद के चार पौधे लगे हैं, वे सब के सब कितने दुर्बल, पीले एवं अल्पजीवी दीख रहे हैं. यदि आप अपने बेटों को होनहार, विकासशील एवं समृद्ध नागरिक के रूप में देखना चाहते हैं तो इन गमलों से सीख ग्रहण कीजिए.

शिक्षक कभी बेटे और कभी गमलों को देखता अवाक रह गया. □

घर

• संतोष खरे

तीन पीढ़ियों से उस चिड़िया का परिवार उस मकान के ड्राइंग-रूम की दीवार के छेद में अपना घोंसला बना कर रह रहा था. घोंसले का उपयोग मुख्य रूप से यह था कि जब चिड़िया गर्भवती होती तो वह उसी घोंसले में अंडे देती और बड़े होने तक बच्चे उसी घोंसले में रहते.

चिड़िया और चिड़ा ने घोंसला काफी मजबूत और सुंदर बना रखा था. अक्सर वे आपस में बातें करते कि उन्हें रहने की काफी अच्छी जगह मिल गयी है. सही बात तो यह थी कि अन्य चिड़ियों के लिए उनका घोंसला ईर्ष्या की वस्तु बन गया था.

उस दीवार से सटी गृहस्वामी की बड़ी आलमारी रखी रहती थी. जिस पर उसकी ढेर-सी पुस्तकें और फाइलें रखी थीं. गृहस्वामी देखता कि उसकी किताबों पर घोंसले के तिनके गिरते. कभी-कभी चिड़िया उन पर बीट भी कर देती. एक दिन सफाई करवाते समय गृहस्वामी ने वह घोंसला निकलवा कर फिंकवा दिया और दीवार के छेद में ईंटें लगवा दीं.

ठंड का मौसम शुरू हो चुका था. चिड़िया गर्भवती थी. हमेशा की तरह चिड़िया-चिड़ा अपनी चोंच में तिनके ले कर आये पर अपने घर के दरवाजे पर ईंटें लगी देख कर हक्का-बक्का रह गये. चिड़िया ने कई बार पंख फड़फड़ा कर निरीक्षण किया. ईंटों पर चोंच से चोट की पर ईंटें टस-से-मस न हुईं. चिड़ा ने कई बार उसके आसपास चक्कर काटे. दोनों थक कर उदास हो कर आलमारी पर बैठ गये.

चिड़िया ने कहा—अब क्या हो? यह गृहस्वामी तो बड़ा दुष्ट निकला. इसने हमें पुश्तैनी मकान से बेदखल कर दिया.

चिड़ा ने क्रुद्ध हो कर जोर से चूं चूं कहा और सोफा पर बैठे गृहस्वामी को देख कर बोला—यह मोटा गृहस्वामी बदमाश है. इतने बड़े मकान में रहता है पर हमें इतनी-सी जगह नहीं दे सकता.

—आखिर गृहस्वामी ने ऐसा क्यों किया? चिड़िया ने चिंतातुर स्वर में समस्या की तह तक पहुंचना चाहा.

—मेरा खयाल है, हम अपने रहने का कोई किराया नहीं देते इस वजह से इसने यह कार्यवाही की है. यह बहुत लालची है. चिड़ा ने व्यावहारिक तर्क प्रस्तुत किया.

—हम किराया दे ही कहां सकते हैं! अपनी मीठी आवाज से सिर्फ गीत सुना सकते हैं, वह तो करते ही थे, चिड़िया ने भोलेपन से मायूस आवाज में कहा.

—हम इससे खाने को भी तो नहीं मांगते थे. जो थोड़ा-बहुत इसका फेंका हुआ अन्न मिलता था वही लेते थे, चिड़ा बेबसी की आवाज में बोला.

—अब मैं क्या करूं? पंद्रह दिनों के बाद मैं फिर मां बनने वाली हूं क्या तुम कुछ नहीं कर सकते ...कहते-कहते चिड़िया की आंखों में आंसू आ गये.

चिड़ा बहुत दुखी हुआ. उसे क्रोध आया और उसकी इच्छा हुई कि वह चोंच से गृहस्वामी का चेहरा घायल कर दे पर फिर अपने मकान मालिक के पिछले एहसान याद कर अपने क्रोध को पी गया.

दोनों उड़ कर पेड़ पर जा बैठे और वहां अन्य साथियों से अपनी विपत्ति बतायी.

गंभीर विचार-विमर्श के बाद बुजुर्ग ने राय दी—उस लालची और दुष्ट गृहस्वामी से उलझना ठीक नहीं क्योंकि ऐसे लोगों में दया, ममता नहीं होती. इसके अलावा ये लोग बंदूकें और लाठियां भी रखते हैं. यदि लंबे संघर्ष के बाद गृहस्वामी ने ईंट हटा भी दी तो इस बात का क्या भरोसा कि किसी दिन जब तुम लोग घोंसले में बैठे हो और यह गृहस्वामी ऊपर से ईंटें लगवा दे तब तुम अपने बच्चों सहित घुट कर मर जाओगे. अतः बेहतर हो कि तुम लोग अन्य चिड़ियों की तरह रहो. आदमी की तरह घरबार के चक्कर में मत पड़ो.

चिड़िया चिड़ा ने मजबूर हो कर अन्यत्र घोंसला बना लिया. पर चिड़िया अपने पुराने घर का मोह नहीं छोड़ पायी थी.

वह रोज शाम को आती और आलमारी पर बैठ कर दीवार के छेद की ओर देखती और उसकी आंखों से दो बूंद आंसू गिर जाते. □

पितृशोक

• मेहरुन्निसा परवेज़

लोहे की जंग-खाई कुर्सी, जिसे पिताजी ने रजवाड़े की चाबुक सवारी की नौकरी से पैसा जमा कर खरीदा था, उस पर वह बैठा था. इन कुर्सियों का भी अपना इतिहास है, उस जमाने में कुर्सियां रखना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी. चार पैर वाली, सीधी पीठ वाली लोहे की कुर्सी, बड़े अरमानों से तब ही खरीदी गयी थी. आसपास के लोगों में चर्चा भी रही थी कि फलां के यहां कुर्सियां हैं. अब वही कुर्सी जंग खाकर बीच-बीच से छेद होकर विचित्र-सी हो गयी थी, अब इन कुर्सियों को देख हंसी आती है.

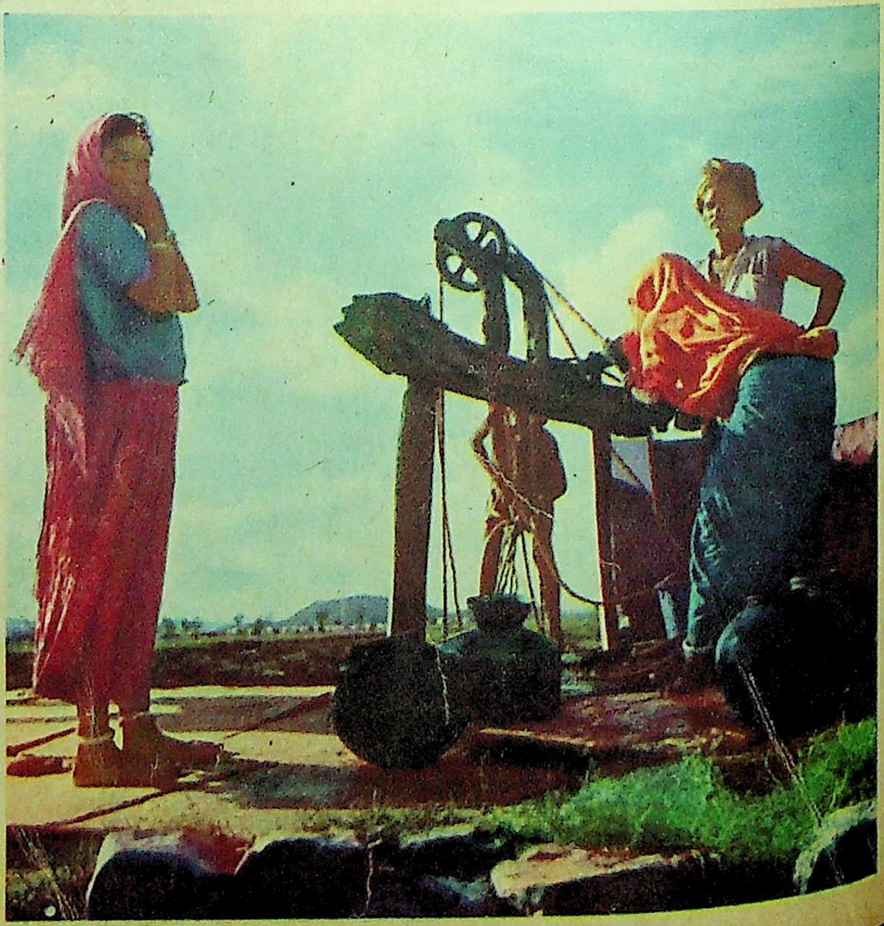
सामने छोटी-सी झोल खाई खाट पर, आधे पैर मोड़े जो आदमी कंकाल की तरह पड़ा है, उसे ही देखने वह इतनी दूर दिल्ली से दौड़ा चला आया था. इस आदमी के लिए हमदर्दी में वह दौड़ा चला आया था पर इतनी भागदौड़ के बाद भी वह उसके प्रति नरम नहीं हो पा रहा है. यही कंकालनुमा जिंदा आदमी उसका बाप कहलाता है.

वह उसे जब भी याद करता है, वह आदमी से ही याद करना शुरू करता है, पिता का वह गुदगुदाया शब्द कभी सामने नहीं आया. परसों शाम ही तो वह दिल्ली से चला था. मौसेरे भाई ने तीन टेलीग्राम किये. लगातार तीन टेलीग्राम मिले तो उसे यही उम्मीद बंधी थी कि वह चल बसा होगा और अब उसे हो ही आना चाहिये, वरना उस छोटे शहर में यदि वह बाप की मौत के बाद भी नहीं पहुंचा तो वहां के लोग उसे कभी क्षमा नहीं कर पायेंगे.

छोटे शहर की आत्मा में दो-चार पुरानी बातें अब भी धड़कती हैं, जिसे लोगबाग सीने से चिपकाये रहते हैं. तीसरे टेलीग्राम के मिलते ही पत्नी ने रोना शुरू कर दिया था जिसे देखते ही बच्चों ने भी साथ दिया था, पड़ोस की मिसेज पाठक, मिसेज वर्मा को बच्चों से खबर मिल गयी थी कि बच्चों के दादा चल बसे हैं.

बाप के मरने की सूचना देकर ही उसने छुट्टी की दरख्वास्त दी थी. कुछ दोस्तों ने तो पहली बार जाना था कि उसका पिछला अब भी बाकी है.

——क्या करते थे यार, तुम्हारे पिता? दोस्तों ने आश्चर्य से पूछा.



● छ्रे. एस. पारीक

—वह यकायक जवाब देते नहीं बना, पुरानी जमींदारी थी, अब तो वैसे कुछ बचा नहीं था पर हां मरा हाथी भी सवा लाख का होता है न, बस जायदाद की निगरानी करते थे. उसे संतोष हुआ कि चलो मौके से जवाब सूझ गया. जमींदारी थी, कहकर आसानी से पुराना वैभव जतला कर सामने वाले का मुंह बंद किया जा सकता है. नौकरी करते थे, कहने पर कई प्रश्न और आगे चलते हैं, कौन-सी नौकरी थी? कितना मिलता था? कितने दिन हुए रिटायर हुए? बिलावजह के प्रश्नों का लंबा सिलसिला.

—अब तक तो मिट्टी उठ गयी होगी, उसने भरोसे से पत्नी को जतलाया, इस आशय से कि जाने से कोई फायदा नहीं, सिर्फ पैसों की बरबादी होगी.

—तुम यह क्यों नहीं सोचते, तुम्हारे वहां नहीं जाने से लोग कितने किस्म की बातें करेंगे. फिर बाद में तुम वहां क्या जा पाओगे? उन लोगों का सामना कर पाओगे?

और उसे लगने लगा था, बिना जाये चारा नहीं. सफर के दौरान उसे एक बात कचोटती रही कि एक बिला जरूरत आदमी के लिए वह इतना पैसा फूंक रहा है. इससे तो अच्छा यही था कि दोस्तों में बैठकर बढ़िया बोतल खोली जाती, दो-तीन दिन ऐश करते, ठहाके लगाते, सिगरेट के धुंआं से कमरे को भर देते. दोस्तों के बीच खर्च करने में उन्हें जरा दुख नहीं होता. सही भी तो है, दोस्तों के सहारे वह इतना बड़ा हुआ और दोस्ती के भरोसे ही आज वह सारे वैभव पा गया था, जिसको पाना किसी जमाने में उसने अपना ध्येय बना लिया था.

आज वह बड़ा आदमी है, उसके पास बढ़िया तीन कमरों का फ्लैट है, आधुनिक सामान है, बच्चे ऊंचे कांवेंट में पढ़ते हैं, पत्नी ने सलीके से रहना सीख लिया है, पर इतनी सारी सुविधा इकट्ठी करने के लिए उसे क्या-क्या नहीं करना पड़ा, यह अलग और लंबी कहानी है जिसे वह खुद भी याद करना नहीं चाहता.

—जाओ नहा लो, कोई मिलने आ जायेगा, पत्नी ने उसे कपड़े पकड़ाते हुए कहा.

सच है उसे नहा-धोकर तैयार हो जाना चाहिये, कोई जान-पहचान के लोग आ सकते हैं.

अभी वह गीले पैरों को, गीली चप्पलों में फंसाये, टावेल से सर पोछते बाहर आया ही था कि पत्नी सामने आ खड़ी हुई.

—बाहर कुछ लोग तुमसे मिलने आये हैं, पत्नी ने बताया तो उसने गीला तौलिया पत्नी के ऊपर डाल दिया शरारत से, पत्नी ने आंखें तरेर कर उसे धमकाया और वह तुरंत सतर्क हो गया.

वह बाहर आया. दालान में जाते ही बैठे लोग खड़े हो गये. सबने अधीर होकर हाथ मिलाये, किसी ने उसे गले से लगा लिया. कुछ तो अपने बचपन के मित्र थे, कुछ उसके प्रायमरी के शिक्षक थे.

—अब कैसी हालत है पिताजी की?

—अभी तो मैं आया हूं, जब से ठीक लग रहे हैं, मैंने रस पिलाया, थोड़े सोये भी हैं.

—चलो भगवान का लाख-लाख शुक्र है, वरना बेटा बाप का दुख सह तुम नहीं पाते. दुनिया में सब मिल सकता है, मां बाप नहीं मिलते, उन्होंने शोकमुद्रा ऐसी बनाई जैसे खुद उनके पिता चल बसे हों.

वह मुंह लटका कर बैठ गया, इस तरह बैठने से उसे कोफ्त हो रही थी, पर क्या करता, मजबूर था.

—पेपर में उसकी सूचना दे देता हूं कि आपके पिताजी की हालत अब सुधर रही है, एक ने कहा.

उसने आश्चर्य से उन्हें देखा. सामनेवाले के चेहरे पर पश्चाताप था कि काश पिता मर गये होते तो वह अपने पेपर में इसकी पहले सूचना प्रकाशित करते पर जब वह नहीं मरे तो हालत मे सुधार की सूचना देकर ही तसल्ली पा लेना चाहते हैं.

—ठीक है दे दीजिये, कहिये कैसा चल रहा है आपका पेपर?

—जी, दया है आपकी, सामने वाले का चेहरा चमका, जरा रजिस्ट्रेशन में तकलीफ हो रही है, आप जरा कोशिश कर दें.

—जरूर-जरूर, पहले ही लिखा दिया होता, करवा देता.

—कितनी तकलीफ देता? पिताजी को वजीफा दिलवा कर क्या आपने कम एहसान किया है?

—हां, अचानक उसे याद आया कि इस बात का एहसान तो जतला ही दिया जाये, उस केस में मुझे काफी तकलीफ उठानी पड़ी. आपके पिताजी उस काबिल नहीं थे, उनके नाम कुछ जायदाद वगैरह थी. पहले उनका नाम उस लिस्ट में नहीं आता था, मैंने कोशिश कर के करवा दिया था.

जी हां वह तो हम लोग समझते थें, सामने वाला एहसान से झुक गया. चलिए आपके पिता बीमार हुए तो कम से कम इसी बहाने आ गये, वरना दस साल से ज्यादा हो गये आपको यहां आये.

हां वह सोचने का अभिनय करता बोलता है. क्या किया जाये. ऊंची नौकरी जितनी दूर से भली लगती है, उतनी ही झंझटवाली होती हैं. दस किस्म की परेशानियां होती हैं जो सर नहीं उठाने देती. आज किसी को परमिट चाहिए. आज उनका पासपोर्ट तैयार करना है. किसी को कुछ चाहिए, किसी को कुछ . . . .रात-दिन फोन बजते रहते हैं.

★ ★

सामने वाले लोग नम्रता से झुक कर चले जाते ह.

—क्या कहूं बेटे, ऐसी मुसीबत आयी इन दो महीनों में, तेरे बाप जनरल वार्ड में पड़े रहे, बाहर से दवा लाने को पैसे नहीं थे. डाक्टर कहते फल दो. पैसे हों तो फल दें? सारे लोग पराये हो गये थे. मैंने एक-एक से कहा, मेरा बेटा फलां है, पर किसी ने ख्याल नहीं किया. अब तुम आये हो तो कैसे मक्खियों की तरह भिनक रहे हैं, मां सर का पल्ला ठीक करती बताती है.

वह चुपचाप बैठा मां को देख रहा है, जो चार आने की सुपारी ला कर कतर रही है. कितना अजीब है घर का वातावरण, वही का वही है. मां अभी भी सामने के

ठेले से चार आने की सुपारी, दस पैसे की चाय, चार आने की शक्कर वगैरह बंधा कर लाती है. वह खुद छोटा था तो यह ड्यूटी किया करता था. आधा पाव तेल से कभी ज्यादा तेल घर में नहीं आया. आज सोचने से ही विचित्र लगता है, इस वातावरण में पल कर बढ़ने वाला वह कैसे इतनी ऊंची नौकरी पर पहुंच गया? आज यह वातावरण कितना अजनबी, कितना पराया लगता है.

मां तेज और कर्कश, उसकी अपनी शक्ल जरा भी किसी कोण से मां-बाप से नहीं मिलती. उसे आज भी हैरानी होती है कि क्या सच यही उसके मां-बाप हैं? बाप की याद आते ही उसका मुंह कड़वा हो जाता है. वह बड़ी कहर भरी आखों से अपने बीमार बाप को देखता है. यह ही है उसका बाप? दुनिया भर की गंदी औरतों की गलियां नापने वाला. हर नौकरी में गबन कर के निकला, फिर जेल गया वह. शराब पी कर खाली बोतल-सा इधर-उधर लुढ़कता पड़ा रहता. मां नंगे पैर उसे खोजती. एक-एक रांड का दरवाजा खटखटाती घूमती. कहीं मिल जाता तो सारे रास्ते चिल्ला-चिल्ला कर गालियां बकती लाती और धक्का दे कर कमरे में बंद कर देती.

मोहल्ले के घरों से एक-एक चीज उधार आती-जाती रहती. यही नरक था जिसका जहर पी-पी कर वह बड़ा हुआ था. दोनों बहनें कुंआरी मां बन-बन कर आखिर में किसी खांसते, दमे के रोगी के पल्ले बंध कर चली गयी थीं. फिर उसने दोनों बहनों की शक्ल कभी नहीं देखी. जी रही हैं या मर गयी, इसकी भी खोज-खबर किसी के पास नहीं है. वह बड़ा हुआ, उड़ने के लायक जब पर हो गए तो उसने यहां से जाना ही बेहतर समझा और एक दिन मौका देख कर उड़ गया. फिर संघर्ष का लंबा सिलसिला था. शरीर का सड़ा अंग काट कर फेंक देना ही बेहतर होता है, उसने भी लाख कोशिश की कि अपने पिछले को काट कर फेंक दे, पर पिछला हमेशा बादल की तरह उसके जीवन पर छाया रहा.

★ ★

पत्नी दिल्ली ट्रंक करके बच्चों की खैरियत जानना चाहती थी, पर लाइन ही नहीं मिल रही थी. पत्नी के चेहरे से उसने झुंझलाहट साफ पढ़ ली थी कि कहां आ फंसे, ससुर को दवा देना, चादर बदलना, रस देना, वहां बैठना आदि बहुत से छोटे-छोटे काम उसने अपनी सास से ले लिये थे.

छोटा भाई घर पर नहीं था, वह पत्नी को लाने उसके मायके गया था, बाप की ऐसी हालत में घर छोड़ना ठीक नहीं है. पर वह समझता है बाप के लिए किसी के मन में हमदर्दी नहीं है.

नीची छत वाले दो कमरे, जो आधे सामान से भरे थे, अंधेरे सीलन और धूल की महक से भरे हुए थे. सफेद छुई से लिपी दीवारें. काले फ्रेम में जड़ी ढेर सारी पीली पड़ गयी फोटो टंगी थी. तस्वीरों को देखो तो पुराने चेहरे याद आ जाते हैं. पर तुरंत थोड़ी देर में वे चेहरे शून्य में लुप्त हो जाती हैं. गंदे हुए से बिस्तर, गंदी तेल-तेल हुई रजाई, ढाबे में चढ़ने की लगी लकड़ी की सीढ़ियां ऊपर के अंधेरे कमरे में पहले वह घंटों पड़ा रहता था, तब उसे अपना वही कमरा कितना अच्छा लगता था.

उफ. यहां भी कितनी गर्मी पड़ने लगी, उसने इधर-उधर देखा, फिर हाथ का पंखा उठा कर घुमाने लगा, बिजली और पंखे की कमी उसे बुरी तरह खटकने लगी.

हवा से आम के पेड़ के पत्ते हिलने लगे थे. छोटे-छोटे लगे हुए आम बहुत भले लग रहे थे. उसे याद आया जब वह छोटा था तब उसने यहां आम खा कर गुई फेंक दिया था और उस घूरे पर उगा हुआ नन्हा-सा पौधा उसकी उम्र के साथ-साथ बढ़ता गया था. बहुत पहले मां बतलाती है, पहले यहां छोटा, कच्चा बरसाती कुंआ था जो बाद में भीतर ही भीतर पोला हो कर मसकने लगा था, जिसे बाद में पाट दिया गया था, घर का सारा कूड़ा-कचरा उसी में फेंका जाने लगा था. आंगन में जहां, तहां टूटी बाल्टी, झाड़ू, राख, पीपे, बेकार घड़े आदि पड़े थे, पीछे से कमरों को घेरती मिट्टी की जो दीवार थी वह जगह-जगह से उखड़ गयी थी बरसात का पानी खा-खा कर खुरदुरे पत्थर-सी निकल आयी थी. लगता है बरसों से उसे किसी ने लीपापोता नहीं था.

★ ★

——बेटा, तुम्हारे बाप चल बसे, मां ने उसे हड़बड़ा कर उठाया. वह कच्ची नींद से जागा और झुंझलाया-सा मां और पत्नी के पीछे जा कर देखा तो उसी झोलखाई खाट पर वह मरा पड़ा था. उसने धीरे से उसे हिलाया. कोई आहट नहीं हुई. सच. वह मर गया था. तो यह आज मरा? पर उसके लिए तो वह बरसों पहले मर चुका था.

मां ऊंचे स्वर में रोने लगी पर वह समझ रहा था यह रोना केवल दिखावा है. बस मोहल्लेवालों को सूचित करने के लिए, वरना वह जानता है मां रोज उसकी अर्थी गालियों में निकालती थी. वह लोहे की टूटी कुर्सी को खींच अर बैठ गया. उसने घड़ी में देखा, अभी रात के तीन बज रहे थे, सुबह होने में अभी पूरे दो-तीन घंटे बाकी थे, कल लगभग सौ, दो सौ रुपये का खर्च था और उसने जेब से रूमाल निकाल कर चेहरा पोंछ लिया.

सुबह मोहल्ले भर में यह खबर फैल गयी कि फलां का बाप मर गया. सारे मित्र, परिचित इकट्ठे हो गए. इतने लोगों की हमदर्दी वसूलते-वसूलते वह थक-सा गया था. मौत का वही चिर-परिचित वातावरण था. वही सन्नाटे भरी हलचल थी. बच्चे सहमे-से थे, उनके चेहरे से लग रहा था वह वहां से जाना भी नहीं चाहते और खड़े रहने से भी सहम रहे हैं. अच्छा हुआ, वह अपने छोटे बेटे को साथ नहीं लाया. वरना पता नहीं वह इस वातावरण से कितना सहमता.

सुबह से भागदौड़ कर वह बुरी तरह थक गया था, अर्थी तैयार हो गयी थी, उसने बढ़ कर कांधा लिया पर शीघ्र ही किसी ने बढ़ कर कांधा ले लिया. मां-पत्नी औरतों के बीच खड़ी रो रही थीं. छोटे गांव का वही दिल दहला देने वाला वातावरण. सारी औरतें इकट्ठा हो कर रो रही थीं. बड़े शहरों में तो मौत भी कितनी खामोशी से होती है.

वह कांधे पर धोती रखे चुपचाप पीछे चलने लगा,

अर्थी में काफी लोग थे, सारे उसके अपने मुलाकाती और मित्र थे. पिताजी के मिलने-जुलने वालों में कोई नहीं था. घरों के दरवाजे-खिड़की और बरामदे में औरतें-बच्चे खड़े हो कर जाती अर्थी को देख रहे थे.

देखो वह जा रहा है फला का बेटा, दिल्ली में बहुत बड़ा आदमी है, बेचारा बाप की बीमारी की खबर सुन कर कैसे दौड़ कर आया है. देखो तकदीर. ऐसे शराबी बाप का कितना होनहार लड़का निकला. एक औरत उसकी तरफ इशारा कर के दूसरी को बता रही थी.

उसने सर उठा कर उस औरत को देखना चाहा पर कुछ सोच कर नीचे ही सर दिये रहा. मन एकदम हलका-फुलका-सा हो गया था. सर का वह बोझ जो दो दिन से उस पर हावी हो रहा था, वह अचानक जैसे उतर गया. उसे लगा, यहां आना, इतना खर्च करना, सफल हो गया है. □□□

द्वारा रऊफ परवेज, एडवोकेट,
प्रतापगंज, जगदलपुर

पंचतंत्र की एक कथा

भिक्षु जो नित्य स्वर्ग जाया करता था!

कोशल देश में एक महाप्रतापी राजा राज्य किया करता था. एक दिन उसके वन-निरीक्षक ने उसके पास आ कर हाथ जोड़ कर, कहा—महाराज, सभी बन-सामंत विद्रोही हो उठे हैं, अब समय आ गया है कि आप उनके सरदार विंध्यक को उचित तौर-तरीके सिखला दें. राजा ने उसकी सलाह मान कर अपने मंत्री को वहां जाने का आदेश दिया ताकि वह विद्रोहियों को कुचल सके. इधर मंत्री की गैरहाजिरी में एक निर्वस्त्र भिक्षु नगर में आया. उसने अपने खगोल विद्या के ज्ञान तथा अन्य रहस्यात्मक ज्ञान द्वारा पूरे नगर को अपना बना लिया . यह खबर कानोंकान राजा तक भी पहुंची तो उसने भिक्षु को बुला भेजा और कहा—हे विद्वान भिक्षु, क्या यह सत्य है कि आप दूसरों के मन की बात भी बता सकते हैं?

—यह तो आप स्वयं देख लेंगे, उसने उत्तर दिया. इस पर राजा की उत्सुकता चरम सीमा को पहुंच गयी. वह भिक्षु को प्रतिदिन महल में बुलाने लगा.

एक दिन वह भिक्षु नित्य के समय पर राजमहल नहीं पहुंचा. अगले दिन उसने घोषित किया—महाराज आपके लिए मैं एक शुभ समाचार लाया हूं. आज अपनी कुटिया में मैंने अपना चोला छोड़ दिया था और दूसरा शरीर धारण कर स्वर्गलोक को चला गया था. वैसे मैं प्रायः रोज ही स्वर्ग जाया करता हूं, किंतु आज कुछ विलंब हो गया. क्षमा करें. अभी-अभी वहां से लौट कर सीधे यहीं आ रहा हूं. देवगण मुझसे आपका कुशल-मंगल पूछ रहे थे. मैंने विस्तार में बतला दिया.

इस पर राजा उससे इतना प्रभावित हुआ कि राज्य के कामकाज छोड़ कर रनिवास को त्याग कर उस पर ही ध्यान केंद्रित करने लगा. इस बीच वन के सामंतों का विद्रोह दबा कर मंत्री वापस आ गया. उसने भी निर्वस्त्र भिक्षु का राजा पर जो प्रभाव देखा तो चकित रह गया. कुशल-क्षेम के बाद राजा ने उससे पूछा— इन ज्ञानी भिक्षु को आप जानते हैं न?

—इनको कौन नहीं जानता! ये तो ज्ञानियों में ज्ञानी हैं. मैंने यह भी सुना है कि ये प्रतिदिन स्वर्ग-लोक को भी जाया करते हैं. क्या यह सत्य है राजन?

—बिलकुल सत्य है, राजा ने उत्तर दिया, देवगण की इन पर विशेष कृपा है.

इस पर भिक्षु ने कहा— यदि आपको कोई संदेह हो तो स्वयं देख सकते हैं कि मैं स्वर्ग किस तरह जाया करता हूं.

और ऐसा कह कर वह अपनी कुटिया में चला गया. और भीतर से द्वार बंद कर लिया. इस पर मंत्री ने राजा से पूछा—महाराज, अब ये स्वर्ग लोक से कब वापस आयेंगे?

—धैर्य रखिए, मंत्रीजी, आपको मालूम होना चाहिए कि महाभिक्षु अपना निष्प्राण शरीर छोड़ कर स्वर्ग चले जाते हैं. और वहां से एक अलौकिक शरीर धारण कर वापस आते हैं.

—यदि ऐसी बात है तो कृपया प्रचुर मात्रा में ईंधन मंगवाइए ताकि मैं इस कुटिया को आग लगा सकूं.

—क्यों भला, राजा ने अचरज से पूछा.

—ताकि जब उनका निर्जीव शरीर जल कर राख हो जाये तो वे आपके सम्मुख दूसरे शरीर में उपस्थित हो सकें

राजा निरुत्तर खड़ा रह गया. (प्रस्तुतीकरण : अलका सिंह) □□□

अंधेरी ड्योढ़ी को पार कर दोनों शिथिल आकृतियां जीने की तरफ बढ़ती हैं. पुरानी चप्पलों की धीमी चरमराहट के साथ-साथ सीमेंट के फर्श पर छड़ी के बार-बार टिकाये जाने का अपेक्षाकृत तेज स्वर उभरता है, फिर रुक जाता है.

—देख कर आना सुमित्रा, अंधेरा है.

—बत्ती क्या हुई?

—तोड़-ताड़ दिया होगा बल्ब, पड़ोस के बच्चों ने.

—गये थे तो ठीक था.

—हरामखोर कहीं के!...

चप्पलों की चरमराहट और छड़ी की टक्-टक् का समवेत् स्वर फिर शुरू होता है. इस बार उसमें हांफने की भारी आवाज भी जुड़ जाती है. ऊंची चढ़ती हुई छड़ी की टक्-टक् दो-तीन क्षणों के लिए ठिठकती है.

—थक गयीं?

—हांऽ....

—कहा था, रिक्शा ले लेते.

—अढ़ाई रुपये मांग रहा था.

—तो क्या हुआ? आराम से तो आ जाते!

—पैसे का खयाल नहीं है आपको.

—सेहत के मामले में कंजूसी नहीं दिखानी चाहिए. इस उम्र में सेहत ही नियामत है.

—खैर... हम कौन-सा रोज-रोज स्टेशन जाते हैं.

छड़ी की आवाज काफी ऊपर जा कर एक बार फिर रुकती है. चप्पलों की चरमराहट के साथ-साथ गहरे निश्वास जारी रहते हैं. झुर्रियों वाला एक हाथ नीचे अगली सीढ़ी तलाशता है.

—मैं आऊं?

—नहीं. मैं धीरे-धीरे चढ़ रही हूं. आप दरवाजा खोलिए.

—चाबी तो तुम्हारे पास है.

—हाय रब्बा ऽऽ....

—ठंड तो नहीं लग रही?

—नहीं.

—मुझे तो लग रही है.

—अच्छा?

—डॉक्टर कह रहा था कि इस उम्र में रात को बाहर नहीं निकलना चाहिए.

—पर जाना तो था ही.

—मैं यह थोड़े ही कह रहा हूं.

—चलो, अब तो आ गये....

चाबियों की खनखनाहट शुरू होती है. फिर दरवाजा खुलता है. स्विच के ऊपर-नीचे होने की आवाजें आती हैं. उसके बाद गहरी खामोशी छा जाती है.

—क्या हुआ?

—बत्ती ही नहीं है.

—फिजूल बेचारे बच्चों को कोस रहे थे. अब?

—तुम भीतर तो आओ.

—हूं.

—मोमबत्ती है घर में?

—ढूंढ़नी पड़ेगी.

—और वह जो राज की टॉर्च थी...

—उसका मसाला कहां बदलवाया!

—चलो, खैर, सोना ही है अब.

—खाना नहीं खाओगे?

—भूख नहीं है.

—क्यों?

—पता नहीं. तुम खा लो.

—नहीं.

—क्या हुआ?

—ऐसे ही. जी नहीं करता.

—तो फिर दरवाजा बंद कर दो.

—अच्छा.

★ ★

तेज खड़खड़ाहट के साथ दरवाजा बंद होता है. घरघराती हुई सांसें कमरे में गूंजती रहती हैं. फिर बिस्तर पर किसी बोझ के ढह जाने की आवाज आती है. एक मिनट के लिए जैसे सब कुछ रुक जाता है.

—हाय, मेरे रब्बा!

—थक गये न आप भी?

—नहीं तो.

—आपकी आवाज से लग रहा है.

—क्या हुआ है मेरी आवाज को?

—आपको नहीं पता चलता?

—नहीं.

—जैसे गले में कुछ फंसा हुआ होता है.

—क्या?

—जैसे गला अकड़ गया हो.

—ठंड जो थी रास्ते में.

—गुलूबंद ले लेना था.

—उससे क्या फर्क पड़ना था!

—फिर भी. डेढ़ मील तो होगा ही यहां से स्टेशन.

—ज्यादा.

—अब वह शरीर भी तो नहीं रहा.

—हूं....

—जूते उतार लिये?

—उतार रहा हूं.

—टाइम क्या हुआ?

दहलीज़ पर संवाद

• सुधा अरोड़ा

—साढ़े बारह.

—वे लोग इटावा पहुंच गये होंगे.

—अभी कहां! एक बजे आता है.

—टिन्नी दूध के लिए रो रहा होगा.

—हूं.

—बहुत रोता है.

—आदतें बिगाड़ रखी हैं.

—और क्या!

—अपना राज नहीं रोता था इस तरह.

—आजकल की लड़कियों को बच्चे पालने नहीं आते.

—क्योंकि बच्चे पाले जाते हैं आजकल. पहले तो अपने आप पल जाते थे.

—कहो तो बुरा लगता है.

—जमाना नहीं है किसी को कुछ कहने को.

—हूं. . . .

—तुमने कहा तो नहीं था कुछ?

—नहीं. ऐसे ही एक बात की है.

—खैर. . .

—कपड़े बदलने हैं आपने?

—नहीं.

—ऐसे ही सोयेंगे?

—हां.

—कंबल ले लेना ऊपर.

—ले लिया है.

—पानी पीना है?

—नहीं.

—और कुछ?

—नहीं.

—मैं सो जाऊं फिर?

—हां.

★ ★

चुप्पी कमरे पर छायी रहती है. दूर कहीं चौकीदार आवाज लगाता है. फिर जोर-जोर से बात करते हुए लोगों का झुंड नीचे फुटपाथ पर से गुजर जाता है. फिर दूर-दराज तक वही चुप्पी.

—मैंने कहा. . .

—हूं.

—सो गये क्या?

—नहीं.

—नींद नहीं आती?

—पेट अजीब-सा हो रहा है.

—खाना जो नहीं खाया.

—तुमने भी तो नहीं खाया.

—अब कौन सियापा करे. . .

—राज और इंद्रा के सफर के लिए जो खाना बना था. . .

—सारा ही मैंने टिफिन में डाल दिया था. इंद्रा मना करती रही. मैंने जबरदस्ती रख दिया. गाड़ी में भूख ज्यादा लगती है. दो रातों का सफर है.

—रात बहुत हो गयी है. . .

—हूं. . .

—मैंने कहा. . . सुनते हैं. . . .?

—हूं. . .

—घर कैसा चुप-चुप हो रहा है!

—क्या?

—कैसा मनहूस लग रहा है घर!

—बच्चे की रौनक तो होती ही है.

—बड़ा शैतान है.

—बाप पर गया है.

—मां पर नहीं?

—नहीं.

—मैंने राज को बताया था.

—क्या?

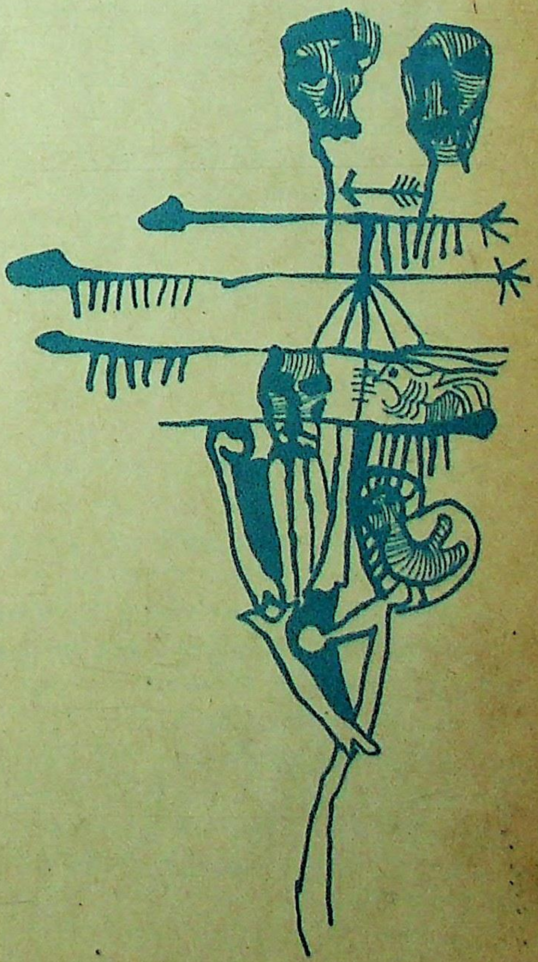
—कि टिन्नी बिल्कुल तेरे पर गया है.

—फिर?

—फिर क्या?

—राज ने क्या कहा?

—कहने लगा, अपने दादा पर गया है. धीमी, पोपली खिलखिलाहट से सारा कमरा भर जाता है. फिर करवट बदलने की सरसराहट शुरू होती है.



● आबिद सुरती

—तुम्हें याद है?

—क्या?

—अपना राज बिल्कुल टिन्नी जैसा था.

—हां, मगर भारी ज्यादा था.

—मोहल्ले के बच्चों से तो उठता ही नहीं था.

—बीस साल हो गये...

—नहीं, पच्चीस...

—अब भी कितना साफ-साफ याद है!

—सारे कमरे में घिसटता रहता था.

—बच्चे कितनी जल्दी बड़े हो जाते हैं!

—ओमी, पाल, नीलू के तो अपने बच्चे भी कितने बड़े-बड़े हो गये...

—सब छोटे थे, तो सुबह-शाम कितना ऊधम मचाते थे!

—पर प्यार कितना था आपस में!

—अब तो चिठ्ठी-पतरी भी नहीं...

—पीछे देखो तो पता चलता है.

—जमाना था वह भी. अब तो कुछ भी नहीं....

—क्या?

—कुछ नहीं...

★ ★

खामोशी फिर से उतर आती है. तभी घंटे की तेज आवाज सुनायी देती है. उसके बाद फिर वही करवटें बदलने की सरसराहट.

—एक बज गया.

—दूध मिल जाता है वहां?

—हां, बड़ा स्टेशन है.

—तकलीफ होगी.

—वो तो होगी ही. रात का सफर है.

—कहा था, दिन की गाड़ी से चले जाते.

—अपनी मर्जी के मालिक हैं सब.

—फिर भी....

—तुमने रुपये पकड़ा दिये थे टिन्नी के हाथ में?

—हां.

—कितने?

—दस.

—बीस देने थे.

—दस ही थे मेरे पास.

—परसों मैंने दिये जो थे!

—उनसे मैंने टिन्नी को खिलौने खरीद दिये थे.

—ओ....

दो क्षणों तक सब चुपचाप रहता है. फिर चारपाई चरमराती है. खंखारने की आवाज के साथ फिर सन्नाटा छा जाता है.

—कितने के आये खिलौने?

—सोलह रुपये कुछ पैसे के थे.

—बड़े महंगे लिये!

—सस्ती कौन-सी चीज आती है आजकल!

—हमारे बच्चे तो चम्मचों से ही खेल कर खुश हो जाया करते थे.

—तब की बात और थी.

—अच्छा, सुनो.

—हूं?...

—बाकी कितने पैसे रह गये अलमारी में?

—तीस.

—कितने?

—तीस.

—बस?

—हां.

—इस महीने बड़ा खर्च हो गया! अभी आधा महीना भी नहीं...

—बच्चे भी तो तुम्हारे ही हैं!

—हां, लेकिन...

—क्या?

—कुछ नहीं.

—बोलो भी.

—नहीं, कुछ नहीं....

★ ★

बूट पटकता हुआ, लाठी की ठक्-ठक् के साथ, चौकीदार एक बार फिर सड़क से गुजर जाता है. सांस लेने की थकी हुई सरसराहट और सन्नाटा —दोनों बने रहते हैं.

—इस बार राज खुश था बहुत.

—यहां आ कर?

—नहीं, वैसे ही.

—कोई बात तो होगी.

—खुद तो वह कुछ नहीं बोला, पर इंद्रा बता रही थी.

—क्या?

—कह रही थी, यहां से लौट कर जायेंगे तो बदली होगी और तरक्की भी... राज ने तुमसे कुछ नहीं कहा?

—बदली होगी?

—हां.

—इधर पास कहीं?

—कह रही थी, आसाम की तरफ...

—आसाम की तरफ?

—हां. क्यों?

—वह तो बहुत दूर है.

—अच्छा?

—एक तरफ के सफर में ही तीन-चार दिन लग जाते हैं...

—हाय मेरे मालिक!

—आना-जाना मुश्किल हो जायेगा.

—हमारा क्या होगा?

—हूं?

—हमारा क्या होगा?

—हमारा क्या हो सकता है?

एक मनहूस चुप्पी कमरे में खिंच जाती है. काफी देर तक कोई आवाज नहीं उभरती. उसी सन्नाटे में कहीं गहरे में से एक थकी हुई आवाज जैसे गूंजती है.

—कितनी तनख्वाह हो जायेगी अब राज की?

—सत्रह सौ.

—स-च?

—हां, इंद्रा कह रही थी.

—मैं कल सोसायटी वालों को बताऊंगा. खोसला साहब को भी. बड़ा रोब मार रहे थ.

—और आप कर भी क्या सकते हैं!

—क्या कहा?

—कुछ नहीं.

—कभी-कभी बहुत कड़वी बात कह जाती हो!

—सच नहीं है क्या?

—होगा.

—होगा नहीं, है.

—पर हमारे पास खुश होने के लिए इसके अलावा रास्ता भी क्या है!

—मैंने तो एक बात कही थी.

इस बार एक आकृति उठ कर चारपाई पर बैठ जाती है. चारपाई जोरों से चरमरा उठती है.

—उठ गये?

—हां.

—क्यों?

—नींद नहीं आ रही.

—तबीयत ठीक है?

—हां.

—तो फिर?

—बस, नींद नहीं आ रही.

—वे लोग भी गाड़ी में जाग रहे होंगे.

—सो गये होंगे शायद. रात काफी हो गयी है.

—टिन्नी तंग न कर रहा हो कहीं.

—तुम्हें क्या पड़ी है?

—ऐसे ही . . . खयाल तो आता ही है. . . .

—हूं. . .

—क्या सोच रहे हैं?

—. . . .

—बताइए भी. यही आपकी खराब आदत है.

—सोच रहा हूं, पिछले दस दिन कितने अच्छे गुजरे.

—वो तो है ही.

—अब मनहूस लग रहा है सब कुछ.

—बड़े कम वक्त के लिए आते हैं हर बार.

—खर्च भी तो बहुत हो जाता है.

—क्या करें!

—दिल पर पत्थर रखना पड़ता है.

—. . . .

—अपने बच्चों को भी खयाल नहीं आता. . .

—. . . . .

—कि इस उम्र में इस तरह अकेले. . . .

—चलो जी, राजी-खुशी रहें, अपने घर. . .

—दस दिन रह कर जाते हैं तो मेरा तो कलेजा कट जाता है.

—क्या?

—कलेजा कट जाता है.

—एक हफ्ता और रुकने के लिए कहना था.

—कहा था.

—फिर?

—इंद्रा बोली कि छुट्टी नहीं है. . .

—पर राज तो कह रहा था. . .

—मुझे भी कहा था.

—फिर?

—मैंने इंद्रा और राज की बातें सुनी थीं. . . .

—क्या कह रहे थे?

—. . . . . .

—बताओ भी, क्या कह रहे थे?

—इंद्रा रो रही थी कि यहां उसका मन नहीं लगता. सारा दिन करने को कुछ नहीं होता. घूमना भी अच्छा नहीं लगता.

—. . . . . .

—कह रही थी कि बीमारों के बीच उसके बच्चे को कुछ हो गया तो. . .

—. . . . . . .

—आप चुप क्यों हो गये?

—कुछ नहीं.

—बोलो भी.

—ऐसे ही. एक बात याद आ गयी.

—क्या?

—मेजर लाल सुनाते थे न — जिस तरह पिछली लड़ाई में सिपाही जख्मियों को साथ ढोने से तंग आ कर पीछे छोड़ जाते थे, उसी तरह. . .

—क्या उसी तरह?

—कुछ नहीं, सुमित्रा. अब सोना चाहिए.

—बोलो भी. क्या कह रहे थे?

—मुझे तो लगता है. . .

—क्या लगता है?

—बताऊं?

—हां.

—कि हम न इधर हैं, न उधर. . .

—क्या?

—तुम्हें ऐसा नहीं लगता?

—कैसा?

—कि हमें अब. . . .

—हाय मेरे रब्बा, मनहूस बातें ही निकालोगे. . .

—नहीं क्या?

—अब बस भी करो. . . .

—सच बताओ, क्या तुम्हें भी ऐसा लगता है?

कोई उत्तर नहीं मिलता. सिर्फ अलग-अलग चारपाइयों पर सांसें उठती-गिरती रहती हैं. ऊपर छत पर धूल-सना, मैला पंखा धुंधला, और धुंधला होता जाता है. दूर कहीं दो का घंटा बजता है तो अंधेरेदार सन्नाटा यूं कांपता है जैसे कोई अधमरी चीज हवा में उलटी लटक रही हो. . . □□□

४०३, सी क्रेस्ट-१,
सात बंगला, वर्सोवा,
बंबई – ४०० ०६१

दुनिया भगवान की

• चंद्रकांत बक्षी

रिसर्च लेबोरेटरी में प्रवेश करने से पहले रिसेप्शन के कांच के बड़े क्यूबिकल में जा कर नाम दर्ज करवा लेना आवश्यक था. भीतर दो टेबलों पर दो आदमी दो-दो टेलिफोन ले कर बैठे थे और कोने में एक पब्लिक टेलिफोन लगाया हुआ था. एक सरदार था, दूसरा दक्षिण भारतीय इसाई-सा लग रहा था.

एक टेबल के पास जा कर मैं खड़ा रहा.

—मेरा नाम है व्यास. . और मुझे डाक्टर निंजुर से मिलना है.

रिसेप्शन के इसाई जैसे लग रहे आदमी ने सामने खुला पड़ा हुआ रजिस्टर पास खींचा और वह आज के मुलाकातिओं की लिस्ट देखने लगा. तुरंत ही मैंने अपने नाम पर उंगली रख दी—यह रहा मेरा नाम! मैंने आगे से ही अपांईटमेंट ले रखा है.

—बैठिये.

उसने डाक्टर निंजुर को फोन लगाया— विजिटर टु यू, सर! . . . येस सर. . .!

फिर रिसिवर मुझे देते हुए कहा—टाक टु डाक्टर निंजुर.

—मैं व्यास बोल रहा हूं. . .

—कितनी देर हुई?

—बस. . .अभी-अभी ही आया.

—अच्छा, यू वेट! . . .मैं लेबोरेटरी की बस में आ रहा हूं. . .फिर जरा रुक कर, तू बैठना इत्मनान से, व्यास. . .मैं मीनी-बस से आऊंगा. दस मिनट इंतजार करना पड़ेगा!

—इट्स ओल राईट . . .टेक योर ऑन टाईम!

मैंने एक सिगरेट पूरा किया और लेबोरेटरी की मीनी-बस आती हुई दिखाई पड़ी. औरत-मर्द उतरने लगे, डाक्टर निंजुर भी उतरा—दूर से वेव किया, मैं कांच की दीवार के आरपार देख पाया.

मैंने भी वेव किया.

—हाय! प्रवेश करते हुए उसने कहा.

—हाय!

—तू. . .कैमरा नहीं लाया?

—आज सिर्फ देख ही लेना है. कैमरा-वर्क बाद में आ कर कर लूंगा, मैंने कहा.

—अच्छा, कम ऑन! इसी मीनी-बस में बैठ जांय... वर्ना इसे लौटने में दस मिनट लग जायेंगे.

—चल!

मैं और निंजुर कांच के क्युबिकल से निकल कर कर्ब के पास खड़ी मीनी-बस में बैठ गये. सीट पर से खिड़की के बाहर सरोवर और पहाड़ियां दिखाई पड़ रहे थे. ड्राइवर सिगरेट के दो त्वरित कश फूंक कर, सिगरेट को पैर तले दबा कर, फिर से आ कर अपनी सीट पर बैठ गया. मुंह घुमा कर, बस के भीतर देखते उसने गियर बदला.

निंजुर ने पूछा—तू स्टुडियो पर से हो आया है?

—हां यार, घर जाने का टाइम रहा ही नहीं. फिर यहां तुम लोग बहुत सख्त सिक्यूरिटी रखते हो!

—रखनी ही चाहिये! दूर पानी के बीच बनाये हुए काठ के प्लेटफार्म की ओर देखते हुए वह बोला, रिसर्च लैब है!

मैं खिड़की के बाहर पानी का विशाल पट, धूप में चमकता हुआ और शांत, देखता रहा. हवा में ठंड थी, और थोड़ी थर्राहट. बायीं तरफ के पर्वत के ढलान पर काटे गये जंगली वृक्षों के दरख्त स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे—शायद यातायात में उनकी टहनियां टकरा जाती होंगी या फिर पतझड़ के समय झड़ते हुए पत्तों की सफाई की समस्या हो जाती होगी.

—अच्छा, व्यास! तू कितनी शूटिंग करेगा?

—फिनिरड. . .तकरीबन एक हजार फीट.

—और खास?

—खास-वास कुछ नहीं. लेबोरेटरी में कैमरा-वर्क की इजाजत नहीं मिली है. और सिर्फ वैज्ञानिक बातें नहीं करनी. इधर के कर्मचारी, इनकी दुनिया, इनका जीवन यही सब आ जाना चाहिये. और यह सब भी जरूरी नहीं है. अगर एक ही वैज्ञानिक या चपरासी या लिफ्ट बॉय में दिलचस्पी लग जाय तो मैं सिर्फ उसी को शुट कर लूंगा. अगर कोई खरगोश-जैसी गुदाज लैब-एसीस्टंट दिखाई पड़ जाय तो. . .हम लोग इसी की फिल्म उतार लेंगे!

—साले!

—इट हेज टु बी ह्यूमन! . . .बिलकुल डॉक्यूमेंटरी नहीं लगनी चाहिए, और क्या?

—समझ गया, निंजुर कुछ सोच कर बोला.

मीनी-बस एक चौरास्ते पर आ कर खड़ी हो गयी. आसपास अद्यतन मकान, लंबे, ऊंचे, वर्तुंलाकार, कांच और क्रोमीअम की चमक और विज्ञान की कीटाणु-रहित तीव्रता. . .

हम उतर गये.

—चल. . .पहले मेरी लैब में. . .

★ ★

मैं निंजुर के पीछे-पीछे चलने लगा. एकाएक रुक कर उसने प्रश्न किया—व्यास! तुझे जो पास दिया गया था, है न? . . .खो मत देना, वर्ना बाहर निकलने के लिए एक घंटे की विधि करनी पड़ेगी! . . .



● श्याराम चावड़ा

निंजुर ने अपनी लैब में जा कर, उसकी दो एसीस्टंटों का परिचय करवाया, कॉफी पिलाई, फिर फोन ज्वाइन किया, फोन एंगेज्ड होने के कारण रिसिवर क्रेडल पर रख कर कहा—मेरी इच्छा है कि प्रश्न हम बेसमेंट से शुरू करें. पर एक बात, तू जरा गंध तो सह सकेगा न?

—मतलब? व्होट डु यू मीन?

—आई मीन. . .गंध, बदबू. बहुत नहीं होगी, लेकिन होगी जरूर!

—क्यों? तू मुझे नर्क में ले जा रहा है?

—नर्क में नहीं यार, पृथ्वी पर. नीचे एक और ही दुनिया है—और तेरे देखने लायक है.

—बेसमेंट में है?

—हां, वहां हमारा एनीमल-फार्म है! हमारी लेबोरेटरीज के लिए जो जानवरों की जरूरत पड़ती है, हम लोग नीचे से मंगवा लेते हैं. लेकिन वहां ये सब नहीं है—निंजुर ने अपनी लैब में दृष्टि फेरते हुए कहा, यह तो स्वर्ग है. यहां तो, उसने स्वर जरा धीमा कर कहा, अप्सरायें भी हैं. . .नीचे पृथ्वी पर दस हजार प्राणी हैं—चूहे!

—तू मुझे चूहे बताना चाहता है?

—उन चूहों पर तो हमारी लेबोरेटरी चलती है दोस्त! . . .है देखने लायक. बहुत बड़ा विस्तार है. एक-एक पिंजड़ा, उसी में एक-एक परिवार, सभी के खाने-पीने की व्यवस्था. प्रतिदिन उनका खयाल रखना, रिकार्ड रखना. जन्म से मृत्यु तक प्रत्यक जानवर का रिकार्ड रखना पड़ता है. जन्म से पहले नर और मादा का रिकार्ड रहता है. मरने के बाद उनके पोस्ट-मार्टम का रिकार्ड रहता है! निंजुर हंस दिया, साली बड़ी विचित्र दुनियां है. बाहर वाले को हम भीतर भी नहीं जाने देते!

मैं जरा सोच में पड़ गया.

—ओ. के.

निंजुर ने फोन किया. इस बार लाइन मिल गयी—चल!

निकलते समय उसने एक अप्सरा को पास बुला कर कहा—मेनका! मैं और व्यास बेसमेंट में जा रहे हैं. जरूरत पड़ने पर ही फोन करना. . .बाकी मेसेज ले लेना!

—राईट, सर! मेनका ने प्रेमपूर्वक उत्तर दिया.

भूलभूलैया जैसी लाबियां और रेलिंग, छोटी-छोटी एकदम साफ सीढ़ियां जिनमें से डिसइंफेक्टंट की तेज खुश्बू आ रही थी. नीची सिलींग, बिलकुल एक-दूसरे के सामने खड़ी व्हाईटवास की हुई बेदाग और सफेद दीवारें, सफेद ओवरआल पहन कर जल्दी-जल्दी चले जा रहे बुद्धिशाली लोग, आंखों को धक्का मारनेवाली स्वच्छता, कहीं-कहीं से आती हुई लिफ्टों की भी आवाजें. . .निंजुर कहीं गायब न हो जाय, इसी चिंता में मैं उसके पीछे-पीछे चलता-उतरता रहा. वह बिना बात किये जल्दी-जल्दी चल रहा था. आखिर एक लिफ्ट में प्रवेश करके वह बोला—अब हम आ गये!

लिफ्ट खड़ी रही. हम बाहर निकल आये और फिर कांच के एक दरवाजे को खोल कर अंदर घुस गये. सामने एक दूसरा वजनदार काला दरवाजा नजर आया. भीतर प्रवेश किया. सफेद ओवरओल पहने हुए कर्मचारी ट्रालियां चलाते हुए लाबी में दिखाई पड़े.

निंजुर ने एक लड़के से पूछा—साहब कहां हैं?

—तीन नंबर में.

तीन नंबर के कमरे का द्वार खोल कर हमने प्रवेश किया, एक बड़े हाल में चारों तरफ एक ही साइज के पिंजरे कतार-दर-कतार रखे हुए थे और बदबू—निंजुर ने जिक्र किया था, वही बदबू—नाक में-से होती हुई फेफड़ों तक घुस गयी. सामने टेबल के पार बैठे हुए आदमी ने स्मित किया. एक काला आदमी, मोटे कांच वाले चश्मे, सफेद ओवरओल, टेबल पर रखी हुई उंगलियां और पंजों का उंगलियों तक का हिस्सा श्वेत कुष्ठ के कारण पूरा सफेद —और टेढ़े दांत. . .

—यह मेरा दोस्त है, व्यास, निंजुर परिचय देने लगा, मैंने इसी के बारे में सब कुछ बताया है तुझे . . .और, मेरी ओर मुंह फेर कर, यह है हमारा भगवान! हम लोगों का एनिमल-फार्म इसी के अंदर है. इस दुनिया में जन्म से मृत्यु तक सभी कुछ इसी के हाथ में है. ही इज एन एथोरीटी औन हिज सब्जेक्ट! . . .

मैंने श्वेत कुष्ठ वाली मोटी उंगलियों से हाथ मिलाये.

—मैंने इनका नाम मिस किया, मैंने निंजुर की ओर देखा, प्रश्नार्थ.

—इसका नाम कोई मिस भी कर सकता है? इसका नाम है भगवान सिंह. लेकिन हम लोग इसे भगवान ही कहते हैं.

हम तीनों हंस पड़े, कहकहे के साथ.



लकड़ी की एक आलमारी से भगवान ने दो सफेद खुरदरे लंबे कोट निकाले, एक निंजुर ने पहन लिया, दूसरा उसे देख कर मैंने. इंफेक्शन से बचने की यह विधि थी. पूरा बेसमेंट एयर-कंडिशंड था और दस हजार जानवरों की बू से यहां की हवा भी तीव्र और बोझिल महसूस हो रही थी. लाबी वर्तुलाकार थी, बीच में बड़े-बड़े कमरे थे, जिनमें पिंजड़े रखे गये थे और पिंजड़ों में जानवर थे. और एक से लग रहे कर्मचारी, सफेद कपड़े, सफेद टोपियां . . .और ठंडी खामोशी.

इधर एक ही दिशा में आगे जाना था—जहां से गुजरते हैं, वहां वापस आने का इस स्थान का नियम नहीं है, भगवान ने समझाया.

फिर आगे चलते हुए वह कहता रहा—सालाना पचास हजार रुपये का गेहूं हम खरीदते हैं. खाद्य भंडार में चार विराट मशीन चूहों के लिए खूराक तैयार कर रहे थे, इसके सिवा चने और दूसरी सामग्री. . .

हम बाहर निकल आये. मुझे हुआ कि निंजुर को कह दूं यह सब देखने में मुझे खास रुचि नहीं है लेकिन भगवान को देख कर मैं चुप रहा.

दूसरे कमरे में प्रवेश करके हम खड़े रह गये. एक आदमी एक पिंजड़ा खोल कर छोटे-छोटे सफेद चूहों की गर्दन को पकड़ कर उन्हें नंबर दे रहा था. उसके सामने टेबल पर, बस-कंडक्टर टिकट पंच करने के लिये रखते हैं, वैसा एक पंच पड़ा था और एक कैंची थी. उसने पकड़े हुए एक चूहे के एक कान में पंच करके एक छेद किया, फिर कैंची ले कर आगे के एक पैर का दूसरा नाखून और पिछले पैरों के आखिरी नाखून काट डाले. तब चीत्कार करते हुए चूहे को पकड़ कर भगवान ने कहा—नंबर लगाने का यह हमारा सिस्टम है. यह चूहा अब किसी भी पिंजड़े में आ जाय, हम उसे उसी के पिंजड़े में रख सकते हैं—कान पंच किया मतलब एक हजार, दूसरा नाखून काटा मतलब दो सौ, और पीछे के नाखून मतलब सौ के भीतर के आंकड़े. अब यह चूहे बड़े हो कर मर जायेंगे तो भी यह नंबर उनके शरीर पर रहेंगे. फिर भगवान ने पिंजड़े के बाहर झुलते हुए कार्ड को पकड़ कर समझाना शुरू किया, इसी में सभी डिटेल्स हैं. नर का नंबर एफ एक्स ३६५२ है. मादा एफवाई ४२१७ है. यह मादा का दूसरा लिटर है, पहली बार इसे आठ बच्चे हुए थे, चार नर और चार मादा. यह पहले लिटर की तारीख, फिर दूसरे लिटर की तारीख और डीटेल्स हैं. प्रत्येक बच्चे की अलग फाइल-कार्ड है. सभी डीटेल्स हैं. एक फाइल में-से एक कार्ड निकाल कर वह समझाने लगा, यह अमेरिकन स्ट्रेईन है. छह महीने समाप्त होने तक में इस चूहे को कैंसंट होना ही चाहिए—अगर न हुआ तो यह स्ट्रेईन निकम्मा है. मरने न के बाद चूहे का पोस्ट-मार्टम होगा और रिपोर्ट फाइल की जायेगी. इसी बीच अगर लेबोरेटरी में जरूरत पड़ गयी तो हम यहां से सप्लाय करेंगे.

—ये सभी चूहे. . .कैंसर के हैं?

—हां, इस कमरे में ल्युकेमिया, ब्रैस्ट-कैंसर और कैंसर के हैं.

पिंजड़ों में छोटे-बड़े सैकड़ों चूहे थे, मटियाले, सफेद और एश रंग के. प्लास्टिक का एक ट्यूब पिंजड़े के अंदर तक जाता था जिसमें से चूहे पानी पी सकते थे. दूसरी तरफ टीन का एक चौड़ा टुकड़ा था जो पिंजड़े के अंदर तक तिरछा उतरा हुआ था. इसी के ऊपर से खूराक भीतर सरकाते रहने की व्यवस्था थी. प्रत्येक पिंजड़े में चूहे सरकाते खूराक को काटते रहने की कोशिश में जुटे हुए थे.

यह स्ट्रेईन बदल जाय तो? या. . .समझिये, इसमें क्रोसबिडिंग हो जाय—

भगवान के चेहरे पर आश्चर्य आ गया, यहां की सृष्टि के कोई नियम भंगवाली कुछ बात मेरे मुंह से निकल गयी थी! वह बीच में ही बोलने लगा—यह कैसे हो सकता है? यहां हम भाई और बहन की ही मेटिंग करवाते हैं और उसी में-से नयी प्रजा पैदा होती रहती है. स्ट्रेईन सौ फी सदी बराबर रहता है. हमारे पास सफेद, एश, मटियाले, बादामी, काले, गुलाबी सभी स्ट्रेईन हैं. सभी की प्रजाएं अलग रहेंगी. एक और बात भी है. इन चूहों को पिंजड़े के बाहर भी रख दिया जाय, वे भागेंगे नहीं. वजह यह है कि इनका जन्म हुआ है पिंजड़े में, मरेंगे भी पिंजड़े में. इन्हें पता ही नहीं है कि स्वतंत्र हो कर पिंजड़े के बाहर भी निकला जा सकता है. इनका स्वभाव ही नहीं है. सौ में से एक भी केस नहीं बनता ऐसा —प्रत्येक जानवर का कार्ड है, फाइल है, इतिहास है, नंबर लगाया जाता है. . .और आपने देखा? इन्हें पेट भर कर स्टटीलाइज्ड खूराक खिलायी जाती है, पानी पिलाते हैं, पिंजड़े के बाहर निकलने का कोई कारण नहीं है—सिवा कि लैब में प्रयोग के लिए इनकी जरूरत पड़े. . . भगवान मुसकराने लगा. ये दुनिया के सबसे सुखी चूहे हैं. प्रतिवर्ष हम लोग लाखों का खर्च करते हैं इनके पीछे. . . !. .

निंजुर कहने लगा—व्यास, भगवान को खरगोश या गिनिपीग से चूहे ज्यादा पसंद हैं. . .क्योंकि चूहिया एक साथ चौदह बच्चे भी देती है, जब गिनिपिग एक प्रसव में मात्र तीन ही पैदा होते हैं. और दो प्रसवों के बीच समय भी कई दफा ज्यादा लग जाता है. गिनि-पिग को पिंजड़ा भी बड़ा चाहिये, जगह भी विशेष चाहिये, खाते भी बहुत हैं. चूहों के लिए एक ही साईज का पिंजड़ा चल सकता है. आठ-दस चूहे एक साथ रह सकते हैं. इनका लिटर भी जल्दी आ जाता है . . .हमारा एनीमल-फार्म बड़ा ही मशहूर है. भगवान के चूहे एसपोर्ट भी होते हैं.

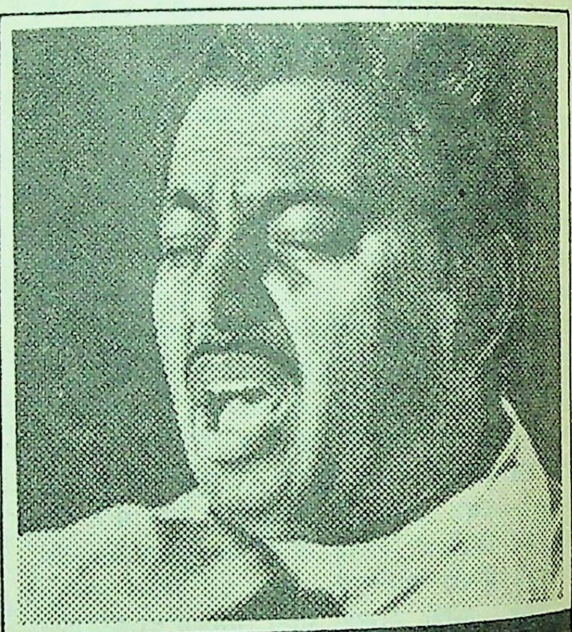
मैं भगवान को देखता रहा. वह एक बड़े चूहे को पिंजड़े से निकाल कर, लेटा कर, उसकी पीठ पर अपनी मोटी, सफेद, कुष्ठवाली उंगलियां फेर रहा था. चूहा, पालतू प्राणों की तरह, खामोश था.

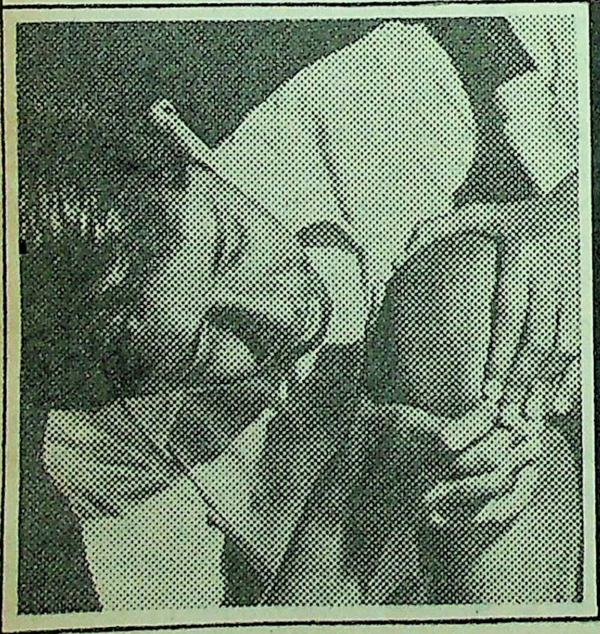
—ये लोग भी बड़े समझदार हैं. जो उंगलियां उन्हें खिलाती-पिलाती हैं, उन उंगलियों को ठीक पहचान लेते हैं, भगवान ने बड़े संतोष से कहा.

* *

निंजुर की लैब में लौट आने पर भी नाक में-से









AMRUTANJAN
Pain Balm
Amrutanjan Ltd.

बेसमेण्ट की दुनिया की विचित्र बू—चूहों के शरीरों की, खूराक की, विष्टा की, भगवान की हटती न थी.

—काफी-वाफी पी करके अब हम लेब्स देख लें, निंजुर बोला.

—नहीं यार, अब मुझे लेब्स नहीं देखनी.

—क्यों? क्यों?

इसलिए कि मैं जो फिल्म बनाना चाहता हूं उसका सामान मुझे मिल गया है. कुल हजार फीट चाहिए. नौ सौ होने पर भी चल जायेगा. फिल्म स्लो घुमाने पर समय उतना ही लगेगा. शुरू में कुछ मोन्ताज शॉट्स इस्तेमाल करेंगे. बाकी तेरे भगवान की दुनिया तो बहुत बड़ी है—कुछ प्रश्न पूछ लूंगा, बाकी शूटिंग कर लेंगे. काम अफलातुन होगा—इसमें कोई शक नहीं. और... अब सिर्फ डोक्युमेंटरी होना संभव नहीं है.

निंजुर देखता रहा.

—साले तू क्रेजी हो गया है, हमारे भगवान की तरह. लेब्स नहीं देखनी ?

—देखूंगा. पर शूटिंग बेसमेंट में ही होगी..

काफी आ गयी और मेनका भी. मेनका ने सबकी काफी बनानी शुरू की मैं देखता रहा, मेनका की रेशमी उंगलियां...पसंद आयीं.

२५, संगम, दूसरा माला, बंगाल केमिकल के पास बंबई–२५ .

□□□

एक लघुकथा

अभयकुमार • ब्रह्मदत्त

अभय कुमार थरथर कांपता खड़ा था. धर्मराज ने भौंहें चढ़ा कर चित्रगुप्त से पूछा—यह कौन है ?

बही खाता देखते हुए, चित्रगुप्त ने बताया— यह बुकिंग क्लर्क है, स्वामी.

—हूं, धर्मराज नाक से बोले—इसने अपने जीवन में कभी टिकट ली ?

बहीखाते के पन्ने तेजी से उलटते हुए चित्रगुप्त ने कहा— कभी नहीं, महाराज . इसे कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी.

—हूंऽऽ, धर्मराज ने आंखें मूंद कर कहा—तब तो यह स्वर्ग जा ही नहीं सकता. और नर्क में तिल रखने की जगह नहीं है. ऐसा करो, इसे अरब महासागर भेज दो !

—अरब महासागर? चित्रगुप्त ने कलम हाथ में ले कर आश्चर्य से पूछा.

—हूं.

—वहां भेज कर इससे क्या काम लेंगे, प्रभु ?

—बुकिंग का काम लेंगे और क्या! धर्मराज ने मुंह बना कर कहा—इसे और आता भी क्या है!

—परंतु महाराज ! वहां यह बुकिंग किसकी करेगा? चित्रगुप्त ने धीरे से हंस कर पूछा.

—बालू की बुकिंग करेगा और किसकी! नान-स्टाप बुकिंग ! बालू ही बालू, अनंत बालू. धर्मराज ने हाथ फैला कर कहा.

—तब तो बोर हो कर मर जायेगा, महाराज.

—नहीं. बीच-बीच में लहरें भी बुक करता रहेगा. एक लहर , दो लहर, हजारों , करोड़ों लहरें.— अरबों-अरबों लहरें.

—इसमें तो एक युग बीत जायेगा, सर, अभयकुमार ने हाथ जोड़ कर कहा.

—एक नहीं, तुम्हारी पृथ्वी की गणना के अनुसार, अनेक, धर्मराज ने दया से उसकी ओर देखा—परंतु नर्क से तो तुम्हारी जान बची. इतना कह कर वे जाने के लिए मुड़े.

—सर ! अभयकुमार ने बड़े जोर से चिल्ला कर पुकारा—सर, सर !

—एस ? धर्मराज ने मुड़ कर पूछा—एस, बोलो, क्या बात है?

—ड्यूटी मेरी जहां भी लगेगी, मैं करूंगा सर, मगर सर...?

—एस? बोलो, बोलो...

—ऊपर की कमाई का क्या होगा, सर? अभयकुमार ने सर नीचे झुका कर अत्यंत दुःखी स्वर से कहा.

—ऊपर की कमाई? धर्मराज ने जैसे चौंक कर चित्रगुप्त की ओर देखा. चित्रगुप्त के ओठों पर एक महीन मुसकराहट जन्मी.

—वह तुम्हारे आर्ट पर निर्भर करता है, मिस्टर बुकिंग-क्लर्क! धर्मराज ने एक उंगली उठा कर कहा—बालू से लो, लहरों से लो. न मिले तो सूरज, चांद-सितारों से वसूल करो! समझे?....चित्रगुप्त, हटाओ इसे. दूसरा कौन है? तत्क्षण उसे हाजिर करो. बोलते-बोलते धर्मराज पुनः चित्रगुप्त की मेज के पास आ खड़े हुए.

□□□

मारिशस की चार लघुकथाएं • अभिमन्यु अनत

प्रभाव

अध्यापक अच्छी तरह जानता था कि अशोक मनोहर एक अच्छे खासे मंत्री का बेटा था. बच्चे की उम्र कठिनाई से आठ वर्ष की होगी. वह प्रारंभिक पाठशाला की तीसरी कक्षा में था. उसकी पारिवारिक विशेषता के कारण अध्यापक का ध्यान उस पर सभी बच्चों से अधिक रहता था.

अशोक मनोहर के हाथ से उस दिन कांच का गिलास टूट गया था और अध्यापक बस हंस कर रह गया था. दूसरी बार अशोक मनोहर ने एक बच्चे की स्लेट फोड़ दी थी. उस पर भी अध्यापक उसी तरह हंस पड़ा था. लेकिन उस दूसरी बार की उसकी हंसी खाली नहीं जा सकी थी. अशोक मनोहर ने बड़ी-बड़ी आंखों के साथ अध्यापक को इस तरह देखा था कि क्षण भर के लिए अध्यापक दहल गया था. उसे ऐसा आभास हुआ कि मंत्री महोदय कक्षा में आ गये हों और वे अजीब आंखें उन्हींकी हों. बाद में उसे बड़ा आश्चर्य हुआ था. आठ वर्ष का लड़का और क्रोध की वह मुद्रा! उस तरह की आंखें उसने कभी नहीं देखी थीं. टमाटर-सी लाल.

कल जो कुछ घटा था उससे अध्यापक और भी कांप गया था. मंत्री महोदय का बेटा एक बच्चे की कमीज फाड़ कर उलटे खुद रोने लगा था. अध्यापक ने उसके पास पहुंच कर बड़े प्यार से कहा था—शांत हो जाओ मनोहर!

यह सुनते ही अशोक मनोहर ने सामने से झाड़ू उठा लिया था और उसे अध्यापक के सिर तक उठा लिया था.

आज की बात और भी अजीब थी. बच्चा जोर-जोर से चिल्ला रहा था, जब अध्यापक ने उसे चुप होने को कहा. वह प्रार्थना भरा स्वर था. स्वर सुनते ही मनोहर चिल्ला उठा था—मैं तुम्हारे औहदे से नहीं डरता!

अध्यापक आंखें फाड़े रह गया था. आठ वर्ष का बच्चा और ऐसी हरकतें! वह असमंजस में पड़ कर काम नहीं कर सका. उसके बाल-मनोविज्ञान का सभी ज्ञान काफूर हो गया था. वह अपने से बार-बार पूछता रहा. . . यह कैसे हो हो सकता है? सपना? नहीं तो. . .

शाम को मंत्री महोदय का लड़का अशोक मनोहर अपने घर पहुंचा. दो कमरों से होते हुए वह उस बड़े से कमरे में पहुंचा जहां उसका बाप मंत्रालय की फाइलों के साथ बैठता था. उस समय भी वह अपनी फाइलों में ही खोया हुआ होगा, जब वह घटना घटी जिसका गवाह अशोक मनोहर था. उसने अपनी मां को चंडी मुद्रा में अपने बाप के सामने खड़े पाया, टमाटर-सी लाल-लाल आंखें लिये हुए. मंत्री ने नम्र स्वर में अपनी पत्नी से कहा.

—शांत हो जाओ मनहरी!

यह सुनते ही अशोक मनोहर की मां ने सामने का झाड़ू उठा लिया और कड़क कर बोली—मैं तुम्हारे ओहदे से नहीं डरती!

अशोक मनोहर रसोई की ओर बढ़ गया. □

रंग

कटाई के मौसम में काम कुछ सवेरे समाप्त हो जाता है. घर पर की दोनों बकरियों के लिए घास जुटाते हुए मुझे कुछ देर हो गयी थी. धूप अब भी हड्डियों के भीतर तक चुभ रही थी और पगडंडी बहुत अधिक लंबी प्रतीत हो रही थी.

रास्ते के दोनों ओर के गन्ने काटे जा रहे थे. सर पर घास का बोझ लिये मैं जल्द घर पहुंचना चाह रहा था. दूसरे दिन हमारा स्वतंत्रता दिवस था. गांव की ओर से सांस्कृतिक कार्यक्रम की जिम्मेवारी मेरे ऊपर थी. पाठशाला के छात्र मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे.

मैंने अपनी रफ्तार तेज की.

निकोले साहब की कोठी से हो कर बस्ती को पहुंचना था. ईख के खेतों के बीच में निकोले साहब के तरबूज के लहलहाते खेत थे

मैं मोड़ पर पहुंचा ही था कि निकोले साहब का दामाद बरगद की आड़ से निकल कर मेरे सामने आ गया. उसकी तनी हुई बंदूक को देख कर मुझे हैरानी हुई. मैं कुछ पूछता कि इससे पहले उसने कड़क कर कहा :

—तो आज तुम पकड़े गये. नीचे गिराओ अपने बोझ को.

मेरी हैरानी और भी बढ़ गयी, मैंने धीरे से पूछा :

—क्या बात है साहब?

अपने लाल हो चले गोरे चेहरे से पसीने को पोंछते हुए उसने कहा :

—बोझ नीचे फेंको और मेरे साथ चलो.

—पर कहां और क्यों? साहस के साथ मैंने पूछा.

—तीन दिन से तुम रोज तरबूज चुराते आ रहे हो.

—साहब मेरे सिर पर घास है, तरबूज नहीं.

—मैं सामने नहीं आता तो अब तक तुम्हारी घास के भीतर तरबूज पहुंच ही जाते.

आपको गलतफहमी हुई है. मैं अपने गांव की बैठक का प्रधान हूं.

—बंद करो! बड़े साहब के सामने अपनी सफाई देना,

—लेकिन साहब मैंने तरबूज नहीं चुराया. आप चोर पहचानने में भूल कर रहे हैं.

—सरदार ने चोर का जो हुलिया बताया है वह तुमसे एकदम मिलता है.

तर्क करके अपने को बचाना कठिन था, इसलिए मैं बंदूक की नली के आगे-आगे चल पड़ा.

हुलिया एकदम मिलने का मतलब था रंग. □

अपने लोग

शहर में पहुंचे उसका सातवां दिन था.

—गांव में बस जिंदगी भर ईख ही काटते रह जाओगे.

किसी की इसी बात पर वह गांव छोड़ आया था. वहां अगर गन्ने काटने का काम ही उसे मिल जाता तो इधर नहीं आता.

सात दिन से उसने कोई सात सौ दरवाजे खटखटाये.

नौकरी कहीं नहीं थी.

जिस १५ रुपये के साथ वह शहर पहुंचा था वह तो चार ही दिन बाद समाप्त हो गया था. अपनी कलाई घड़ी बेच कर उसने जो ३० रुपये पाये थे उसीका १५ रुपया उसकी जेब में था.

गलियों के चक्कर काटने के बाद वह उसी बाग की एक बेंच पर जा बैठा जहां उसकी रातें बीती थीं. बेंच पर पहले से एक आदमी बैठा हुआ था. कुछ दूरी पर पत्थर की दूसरी बेंच पर कॉलिज के दो विद्यार्थी बैठे हुए थे. लड़की का फ्राक ठीक सामने के फूल के रंग का था.

वह औरत आज भी उसी तरह सैलानियों की तलाश में सामने से गुजर गयी. कुछ देर बाद उसकी बगल में बैठे हुए आदमी ने उसकी ओर देख कर उससे पूछा :

—गांव से आये हो न?

—हां.

—नौकरी की तलाश में?

—हां.

—नौकरी तुम्हें मिल सकती है.

उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ. आदमी ने आगे कहा :

—पच्चीस रुपये चाहिए.

—मेरे पास सिर्फ पंद्रह हैं.

सौदा तय हो कर रहा. उसने आदमी को पंद्रह रुपये दे दिये. आदमी ने जेब से एक अधमैला लिफाफा निकाल कर उसकी ओर बढ़ा दिया.

—इस पते पर पहुंच कर तुम चिट्ठी मनेजर को दे देना. उसी वक्त नौकरी मिल जायेगी.

चिट्ठी ले कर वह दौड़ गया. कई गलियों के चक्कर काटने के बाद उसे मालूम हुआ कि लिफाफे पर जो पता था उस नाम की न तो कोई गली शहर में है, और न ही कोई कारखाना. लेकिन लिफाफा खाली नहीं था. उसके भीतर कुछ था जरूर. उसने लिफाफे को फाड़ा. छोटे से कागज का टुकड़ा था जिस पर लिखा हुआ था :

—यार मुझे माफ करना. घर पर बीमार पत्नी और तीन बच्चे हैं, जिनके लिए यह धंधा करना पड़ता है. इस धंधे के अलावा मैं भी तुम्हारी तरह बेकार हूं.

उसे जोरों से भूख लगी थी, पर बेचने के लिए कुछ नहीं था. □

भीतर की बातें

महाराज ने सभी अखबार फड़वा डाले.

—झूठे होते हैं ये सभी अखबार. शासन की निंदा करते हैं.

मंत्रियों ने भी राजा को यही बताया कि अखबार सनसनी पैदा करते हैं, बेबुनियाद बातें छाप-छाप कर. राज्य में कोई दुखी नहीं था.

दूसरे दिन राजा अपनी डेमलर कार में बैठा. ड्रायवर को आदेश दिया कि सबसे गरीब इलाके की ओर चले. राजा को विश्वास था कि गरीब इलाका हो सकता है प्रजा नहीं.

अभाव-ग्रस्त परिवार अपने घर राजा को पा कर पहले तो प्रसन्न हुआ, पर बाद में चिंतित होना पड़ा. राजा को क्या खिलायें, क्या पिलायें?

कुटिया से बाहर आ कर घर के मालिक ने अपनी पत्नी से बातें कीं. घर में दाना भी नहीं था. गिरवी रखने लायक जो आखिरी चीज थी वह दो दिन पहले जा चुकी थी. बहुत सोचने के बाद बच्चे की पुस्तकों पर ध्यान गया. पत्नी ने खिड़की के रास्ते तीनों पुस्तकें अपने पति को थमा दीं. उन्हें लिये वह उसी दुकान को दौड़ गया जहां दो दिन पहले उसने वर्षों पुरानी रामायण बेची थी.

आधे घंटे बाद वह घी की मिठाइयों के साथ घर लौटा.

उसी रात राजा ने अपने दरबार हॉल में प्रेस कानफ्रेंस की.

दूसरे दिन लगभग सभी अखबारों में राजा जी के चित्र के साथ मोटे अक्षरों में राजाजी का भाषण आया.

जिस देश की सबसे गरीब प्रजा के घर मेहमान को घी की मिठाइयां खिलायी जाती हों उस देश को दुखी देश नहीं कहा जा सकता. □

(संचयन एवं संयोजन : इगलासिया)

उपन्यास अंश

जन सेवक

• मधुकर सिंह

सीताराम पांडे बहू को पढ़ाने-लिखाने और अकल-ज्ञान देने के बहाने से आधी-आधी रात तक उसके कमरे में रह जाते हैं. और नींद आने लगती है तो उसी कमरे में सो भी जाते हैं. पत्नी जब भी टोकती है, समझा-बुझा देते हैं कि बी. डी. ओ. और 'जनता बरतन कारखाना' के मालिक बनवारी सिंह एम. एल. ए. का विचार है कि इस बार हमारी बहू मुखिया के लिए चुनाव लड़े. अब तक हमारे यहां अनपढ़ ही मुखिया होते रहे हैं. पढ़ी-लिखी, समझदार महिला मुखिया हुई तो खानदान और गांव की मर्यादा बढ़ेगी. वह समझाते रहते हैं—देखो बहू, गांव एकदम शहर में तब्दील हो गया है. जनता कारखाना चालू होने वाला है. बिजली, बड़ी-बड़ी दुकानें, स्कूल, कालेज, पोस्टआफिस, सब कुछ यहां बनेगा. शहर में अकेले कैसे रहोगी? आजकल नौजवान अच्छे मिजाज के नहीं हैं. पच्चीस-छब्बीस साल की उमर में कहीं भी भटक जाओगी. लछमनपुर में मशीन तुम्हारे जीने के लिए ही तो बैठ रही है!

बहू ज्यादा उत्तेजित हो, इसके पहले ही उसे पकड़ कर पलंग पर दबा देते हैं और बुढ़ापे की हविस नसों के ऊपर-ऊपर दौड़ने लगती है. बहू जब ज्यादा गुस्से में आती है, तो उसे लालच देते हैं—बहू, यह जनता कारखाना किसका है? तुम्हारा!

—आपके बाबा का है, न? बहू खिलखिलाती है.

—तुम पहले मुखिया बनोगी. इसके बाद मुखियाओं के ऊपर प्रमुख. इलाके में ही नहीं, कारखाने पर भी तुम्हारा रौब रहेगा. जिसे चाहना, कारखाने में रखना, जिसे चाहना, निकाल देना.

—आप क्या करेंगे, बूढ़े बाबा?

—मैं तो मैना के साथ भजन गाता रहूंगा. तुम बी. डी. ओ. से मेल-जोल रखना. शहर की सारी सुविधाएं बी. डी. ओ. के साथ मिल-जुल कर अपने घर में खींच लाना.

बहू जितना ही नागिन की तरह गुस्से में आती है, सीताराम उतना ही उसे लालच में डाल कर धर्म से डराते हैं.—हम लोगों में विधवा-विवाह नहीं, बहू, नीच जातियों में है. माना कि तुम जवान हो, मगर धर्म तुम्हें इसकी अनुमति कभी नहीं दे सकता.

—मुझे मुक्ति चाहिए, बाबा!

—कैसी मुक्ति?

—आपसे और गांव से.

—यह सब कैसे संभव है, मेरी बेटी?

—मेरी बेटी! बहू जोर-जोर से खिलखिलाती है और ऐसी उत्तेजित हो जाती है कि पत्नी की भी नींद खुल जाती है और वह बहू को शर्म सिखलाने के लिए चली जाती है.

★ ★

—अब तो तुम चरन ठाकुर से भी बड़ा कहलाओगी.

—किस तरह, बाबूजी?

—अब तो वह जेल जायेगा.

—उसका कसूर क्या है?

—बनवारी सिंह का विरोध. युवकों को राजनीति सिखाना. हरिजनों का साथ देना—यह सब अपराध नहीं है? बनवारी सिंह उसका नाम डकैती में दे चुके हैं. उनकी बात कौन उठायेगा?

—उसने किसी के घर डकैती भी की थी, बाबूजी?

—उसके रहने से कारखाने को हर तरह से खतरा है. रोज किसी-न किसी बात के लिए झंझट बनी रहती. कुछ दिनों के बाद कहता कि यह कारखाना जनता का है, काम करने वाले मजदूरों का है. अब आराम से जेल में पड़ा रहेगा.

—आप लोग जो चाहें करा सकते हैं न, बाबूजी?

—तुम धीरे-धीरे समझदार होती जा रही हो, बहू.

—मुझमें तो सब कुछ आपका दिया हुआ है.

सीताराम पांडे अपने जो भी कपड़े उतार कर सिरहाने रखते हैं, उन्हें बहू कहीं छिपा देती है. उन्हें वस्त्रहीन होने की आदत होती चली जा रही है. आधी रात के बाद जब बाहर जाने के लिए कपड़े ढूंढ़ते हैं, तो बहू उन्हें बहुत छकाती है. आज एक घंटे से बहू उन्हें परेशान किये हुए है. उन्होंने दौड़ कर बत्ती बुझा दी है.

—बाबूजी, आज से आप इसी तरह रहने की आदत बना लीजिए.

—तुम्हें यह सब अच्छा लगता है?

—गांव में एक बार हो आइए.

—लोग क्या कहेंगे?

—लोग कुछ नहीं कहेंगे. अवतारी पुरुष मान कर सभी आपको प्रणाम करेंगे. आप ऐलान कर दीजिएगा कि मुझे ऊपर से इसी तरह रहने का आदेश मिला है. सबको मानना पड़ेगा.

आंगन में मैना सीताराम पांडे की आवाज सुन कर जोर-जोर से नारा लगाती है—खाना हो तो गम खाओ, कौवा-मैना मिल कर गाओ. सीताराम! सीताराम! बहू फिर हंसती है—मैना भी आप ही का नाम रटती है!

—यही नाम प्रभु का भी है और मेरा भी है!

—सब आपकी माया है, बाबूजी. मैं आपकी माया में कैसे फंसती जा रही हूं! आपने मुझ पर क्या जादू कर दिया है? आप साठ वर्ष के बूढ़े हैं और मैं जवान हूं. हमारे बीच रिश्ता क्या है?

—जनता बरतन कारखाना की मालकिन हो कर ऐसा सोचती हो?

—मालकिन बना कर मेरी इज्जत जैसे भी लूटो, मैं कहां कुछ कहती हूं? अभी कुछ देर आपसे खेलूं नहीं?

—जी भर खेलो, बहू!

—तब कपड़े क्यों मांगते हैं? खेत, घर, सब कुछ मेरे नाम कर दीजिए. नहीं तो कपड़े कभी नहीं दूंगी.

—कसम से, बहू, सब कुछ कचहरी में चल कर लिख दूंगा. मेरे कपड़े बता दो कहां हैं?

बहू कपड़े निकाल कर उन्हें देती है. पांडेजी कपड़े पहन कर जल्दी-जल्दी वहां से भागते हैं. मैना उन्हें पुकारती रह जाती है, मगर कुछ भी नहीं सुनते. वह बदहवास हो कर घर से बाहर निकलते हैं और तार का पंखा ले कर बाहर खाट पर सो रहते हैं.

★ ★

सामने कारखाने की दीवार दैत्याकार नजर आती है. पीछे से पेट्रोमैक्स की रोशनी भभक कर आती रहती है. युद्धस्तर पर काम चल रहा है, रात-दिन. इसका उद्घाटन होगा, कोई बड़ा आदमी इसकी मशीन छू कर उद्घाटन करेगा, तब बड़ा मजा आयेगा. वह बड़ा आदमी बनवारी सिंह और सीताराम पांडे को एक ही आदमी समझेगा. वह सोच-सोच कर गदगद हो रहे हैं.

उन्हें नींद बिल्कुल नहीं आ रही है. बाकी रात पहाड़ से भी ज्यादा भारी और असह्य है. नींद की गोली मंगा कर रखते हैं और एकाध खा लेते हैं. तब भी नींद क्यों नहीं आती? क्या बुढ़ापा खाली झख मारने के लिए ही होता है? इस बुढ़ापे से तंग आ गये हैं. वह मृत्यु से बहुत चिढ़ते हैं. जहां बहू बोली कि भगवान आपको जल्दी उठा क्यों नहीं लेता! वहीं बच्चों की तरह बिफर कर रोना शुरू कर देते हैं. पत्नी समझाते-बुझाते थक जाती है, मगर कोई सहारा नजर नहीं आता. आंखों में जो आंसू भरते हैं, उनमें पुतलियां डूब जाती हैं और दुनिया बिल्कुल कालिख बन जाती है. हविस रेशे-रेशे में सुलगती रहती है. तबीयत होती है, अंधेरे को कच्चा चबा जायें. बहू को जब भी उनसे घृणा हुई है, मैना से भी ज्यादा तेज रटने लगती है.—मर जा बूढ़े, मर जा! जल्दी-जल्दी मर जा!

एक दिन बहू मैना को आंगन में सिखला रही थी—त्यागो बूढ़े रसना काम, मर जा बेटा, सीताराम! जय-जय प्रभुजी सीताराम! उन्होंने सुन लिया था. तब से मैना को अलग नहीं रखते. पिंजरा हाथ में लटकाये फिरते हैं. बहू से उन्होंने पूछा था—बहू, अमरफल कहां मिलता है? बहू हंस कर बोली थी—लोककथाओं में. कह कर हंसने लगी थी. मगर नासमझ सीताराम पांडे अचकचा कर कहने लगे थे—चलो न, अमरफल वहीं से काढ़



● के. के. गोयल

लायें. हम-तुम, दोनों खा कर अमर हो जायेंगे. बहू फुसफुसाने लगी—त्यागो बूढ़े, रसना, काम. मर जा बेटा, सीताराम! जय-जय प्रभुजी सीताराम!

वह खाट पर उलट कर बैठते हैं और कारखाने की दीवार की ओर टकटकी लगाते हैं, जैसे उसके भोग के लिए उन्हें काफी दिन जिंदा रहने का भगवान की ओर से वरदान मिला है. हरिजन, मजदूर, राजनीतिज्ञ, नीच, सब के सब रावण हैं. मृत्यु-भुवन के सभी भार हैं. सब को जल्दी-जल्दी मरना होगा. उन्हें खयाल आता है, कहीं पेट्रोमैक्स जलता छोड़ कर सब के सब सो न गये हों. मजदूर देहचोर, कामचोर, जूताचोर होते हैं. इनकी वजह से राष्ट्रीय उद्योग खतरे में पड़ जायेगा. चल कर देखना चाहिए कि क्या स्थिति है. बनवारी सिंह देख-भाल करने का सारा भार इन्हीं पर छोड़ गये हैं. इन्हें मजदूरों को बर्खास्त करने का भी अधिकार है.

पिंजरे के बदले लालटेन उठाये सीताराम पांडे उसी आखिरी पहर रात को कारखाने की ओर चले आ रहे हैं. फाटक के पास लालटेन उठा कर साइनबोर्ड पढ़ते हैं—जनता बरतन कारखाना, लछमनपुर. उन्हें तसल्ली होती है. अंदर इनकी धारणा के विपरीत काम बड़ी तेजी से चल रहा है. ठेकेदार का मुंशी बाहर चौकी निकलवा कर आधी नींद पड़ा हुआ है. जब भी आंख खुलती है, चारों तरफ नजर दौड़ा कर आंखें मूंद लेता है. काम की यही रफ्तार रही, तो एक महीने के भीतर ढांचा खड़ा हो जाने में कोई संदेह नहीं है.

—ठेकेदार बाबू, सो गये हैं क्या? सीताराम पांडे लालटेन की रोशनी में उसका चेहरा पहचानने की कोशिश करते हैं.

मुंशी अचकचा कर उठता है. —पांव लागी, पांडे बाबा. मैं हूं हरिलाल मुंशी! वह फिर जम्हाई लेता है.

—आशीर्वाद. सोय रहत हो अंधेरे में, मुंशीजी?

—अभी तो अढ़ाई बजे के लगभग लेटा था. जोरों

से नींद आ रही है.

—मुझे तो नींद ही नहीं आती, इसलिए काम देखने चला आया.

—आपको हमारा बहुत खयाल रहता है.

—रिटायरमेंट के बाद जन-सेवा ही तो बच रही है. वरना झख मारता, और क्या?

—आपको एक बात मालूम है?

—कैसी बात? सीताराम पांडे लालटेन नीचे रख कर चौकी पर बैठ जाते हैं.

—कारखाने के लिए जो एक खतरा था, वह फिलहाल टल गया है. चनर ठाकुर गिरफ्तार हो गया.

सीताराम पांडे खुशी से उछल पड़ते हैं. —यह सब अचानक कैसे हो गया?

—बाबू बनवारी सिंह ने डकैती और खून के मामले में फंसा दिया है. बरिस-दो बरिस तक वहीं सड़ता रहेगा.

—मगर खून का मामला कैसे साबित हो गया?

—बुलाकी चमार की हत्या के जुर्म में. बुलाकी की कल रात हत्या हो गयी. चमारों का लीडर बन कर अखबार में खबर देने जा रहा था.

—बुलाकी को किसने मारा?

—यह मुझे क्या मालूम, पांडे बाबा!

—गांव में इतनी बड़ी-बड़ी घटनाएं हो गयीं और मुझे अभी तक कुछ भी मालूम नहीं था. असल में घर की लड़ाई और नौजवानों की चरित्रहीनता से रात-दिन परेशान रहता हूं. अखबार और राजनीति का कोई पता नहीं चलता.

★ ★

सीताराम पांडे को कुछ-कुछ खयाल आता है, बुलाकी चमार ने एक रोज राजा बनवारी सिंह से मुंह लग कर बातें की थीं और बहस भी कर रहा था. चनर के बहकावे में आ गया होगा. रोक रहा था, यह गैरमजरुआ जमीन है. चमारों की बस्ती है. कारखाना बनता है, तो लोग-बाग उजड़ जायेंगे. और खयाल आता है, उसने बनवारी सिंह को यह भी धमकी दी थी कि सरकार की आंखों के सामने ही छटपटा कर मरेंगे.

—डर गये, पांडे बाबा?

—मुंशी की बात! जब राजा बनवारी सिंह हमारा रक्षक है तो डर किस बात का?

—तब चुप क्यों हो गये हैं?

—चुप कहां हूं? मैं तो रात-दिन बोलता रहता हूं. मुझे नींद बहुत कम आती है. भोलू याद पड़ता है तो रात के वक्त डर भी लगता है.

—डर की कोई बात नहीं. धीरे-धीरे लोग उस घटना को भूल गये हैं. बाप-भाई का भी घाव भर गया है. बनवारी सिंह ने जयराम को नौकरी का वचन दे दिया है.

—डर की बात नहीं. भोलू की अकाल मृत्यु है न! हालांकि मैं भूत-प्रेत कुछ भी नहीं मानता.

सीताराम पांडे तो मानते हैं. किस्सा बताने लगे कि उन्होंने भूत देखा है. मुंशी के दिमाग में उनके किस्से के साथ-साथ भोलू का चेहरा ताजा होता जा रहा है. लगता है, भोलू, सिर पर पंद्रह ईंटें एक साथ उठा कर फाटक की ओर से चला आ रहा है.

—रात बहुत थोड़ी बची होगी. आप भी यहीं सो रहिए न, पांडे बाबा!

—अब तो सुबह होगी. अब सोना क्या? तुम्हीं कुछ और जानते हो तो सुनाओ.

—मुझे तो नींद आ रही है. मुंशी को डर भी लगता है कि सो जाने पर ठेकेदार साहब से कहीं अनाप-शनाप न बक दें. इनकी जी-हुजूरी भी बहुत जरूरी है. पूछता है— एक और खुशी की बात जानते हैं कि नहीं?

—झटपट बता दो न, हरिलाल!

—मूर्तियों के लिए नमूना भी पूना चला गया है.

—कैसी मूर्तियां? सीताराम पांडे को हठात् महसूस हो रहा है कि वह जानकारी में बहुत पिछड़ गये हैं.

—राजा साहब की दो आदमकद कांसे की मूर्तियां बनायी जायेंगी. राजा साहब दोनों हाथ जोड़ कर झुके रहेंगे.

राजा साहब, जिंदाबाद! सीताराम पांडे की आह्लाद में नारा लगाने की तबियत होती है.

—क्या एक बात की तुम्हें और जानकारी है? चनर की ओर से गवाह कौन-कौन है?

—इसकी तो मुझे कोई जानकारी नहीं है.

—इस तरह से तो कोई हिम्मत नहीं कर सकता. मगर हरिलाल, एक बात तय मान लो. बनवारी सिंह जो चाहते हैं, वह हो कर रहेगा. मेरी बहू को अब कोई नहीं हरा सकता. बहू लछमनपुर की मुखिया बनेगी.

मुंशी उठ कर एक बार देख आता है. एक आदमी कौड़ी बांटने का काम कर रहा है. इसलिए देहचोरी का कोई सवाल ही नहीं है. जितनी खेप ढोयेगा, उतनी कौड़ी बनती जायेगी. कौड़ी के हिसाब से उन्हें पैसे मिल जाते हैं. फिर भी, मुंशी उठ कर घूम आता है.

★ ★

दोनों कुछ देर तक खामोश बैठे हैं. मुंशी उठंग कर ही झपकी ले रहा है. खामोशी के बीच अचानक उन्हें पिंजरा याद आता है. कहीं बहू मैना को अनाप-शनाप न सिखा रही हो! झटके से खड़े हो जाते हैं. —अच्छा हरिलाल, तुम्हें नींद आ रही है. मैं चलता हूं. मुझे नींद वालों से चिढ़ है, मगर तुमसे प्यार करता हूं.

—पांव लागी! मुंशी उन्हें अलसाये हुए देखता है.

रास्ते भर उन्हें बहू का भजन सताता रहा है— 'त्यागो बूढ़े रसना, काम. मर जा बेटा सीताराम. जय-जय प्रभु जी सीताराम.' कहीं मैना सीख न गयी हो! बहू को नींद बहुत आती है. जवानी में सब को आती है. मगर गुस्से में होगी तो मैना को अब तक पढ़ा चुकी होगी. घर जाते ही लालटेन को पटक देते हैं और मैना के पास जा कर परीक्षा लेते हैं. मैना उन्हें भजन सुनाने लगती है— खाना है तो गम खाओ, कौवा-मैना मिल कर गाओ. सीताराम, सीताराम.

सीताराम पांडे को तसल्ली होती है. बहू की सीख

का इस पर कोई असर नहीं हुआ है. खिड़की से झांक कर देखते हैं, बहू अंग भंग कर सो रही है. बदन पर कपड़ों की कोई चिंता नहीं है. एकदम निर्लज्ज है. मिजाज ललचाता है, फिर ढुक चलें. मगर अब बहू की नींद खराब करना बुरी बात है.

पिंजरा उतार कर बाहर निकलते हैं. पत्नी टोक देती है — रात भर नाटक करते रहेंगे, सोयेंगे नहीं?

मन तिलमिला उठता है. जी में आता है, बुढ़िया का सिर डंडे से फोड़ दें.

—तुम्हें मार कर चमड़ी निकालेंगे.

—दिमाग खराब हो गया है? मर क्यों नहीं जाते?

सीताराम पांडे तमतमा कर पत्नी पर थप्पड़ चला देते हैं. पत्नी उनके नाजक अंग को पकड़ कर लटक जाती है. वह बाप-दा कह कर चीखने लगते हैं. इस चीख-चिल्लाहट में हूं निकल कर आती है और बुढ़िया को धकेल कर चित्त पड़े सीताराम की टांग घसीटते हुए ले जाती है. वह उन्हें चौखट के बाहर कर देती है. जगह-जगह बदन में खरोंचें आ गयी हैं. मगर भय के मारे कुछ बोल नहीं रहे हैं. — बहू, धोती खुल कर आंगन में रह गयी है. उसे तो दौड़ कर ला दो.

बहू धोती ला कर उनके ऊपर फेंकती है और दांत किटकिटाते हुए पूछती है— आपका हंगामा, शोर-गुल कब तक चलता रहेगा? आपसे सच कहती हूं, जहर खा लूंगी. किसी के साथ हमेशा के लिए भाग जाऊंगी. आपका महाभारत मुझसे बर्दाश्त नहीं होता.

बहू रोने लगती है.

वह तड़प उठते हैं— मेरे प्राण तुममें बसते हैं, बहू! तुम्हारे बगैर मेरा सत्यानाश हो जायेगा. तब जनता कारखाना के बनने का कोई मतलब नहीं रहेगा. मेरे सपने की दीवार को मत गिराओ. मगर तुम भाग कर किसके साथ जाओगी? बुलाकी चमार तो मार दिया गया है!

—लछमनपुर में एक हजार बुलाकी हैं. बुलाकी को आप लोग कैसे मार सकते हैं?

सीताराम पांडे को संदेह होता है, बुलाकी से इसका पुराना संबंध तो नहीं था? मगर बुलाकी यहां तक पहुंच कैसे सकता है? बहू को किसी और बात को ले कर बुलाकी से सहानुभूति होगी.

—आप लछमनपुर के लाउडस्पीकर हैं!

—जनसेवक जी क्यों नहीं कहतीं?

बहू के मुंह में थूक इकट्ठा होता जा रहा है. वह उनके मुंह पर थूक देती है और झटके से दरवाजा बंद कर देती है. सीताराम पांडे चेहरे के थूक को धोती से सोखते हुए चिल्लाते हैं— पिंजरा उतार कर दे जाना, बहू! मेरे बगैर मैना मर जायेगी. दरवाजा खोलो!

बहू कुछ भी सुन नहीं रही है. सीताराम पांडे रोते और भद्दी गालियां बकते हुए दरवाजा पीट रहे हैं. □□□

घरहरा, आरा (बिहार)
(राजपाल एंड संस, दिल्ली से शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'सीताराम नमस्कार' का एक अंश)

दो लघुकथाएं

महात्मा और मनुष्य

● देवव्रत जोशी

गांधी जी विशाल हृदय वाले, निपुण सेनानी थे. उनके नियम-संयम और व्रत-निष्ठा में संदेह की गुंजाइश नहीं थी. उनके साथ (नियम-पालन संबंधी) निर्वाह दिग्गजों से भी नहीं हो पाता था. प्रतिकूल परिस्थितियों, विषम आंधियों के आघातों से भी वह पराभूत होते नहीं देखे गये.

अग्रज कवि शिवमंगलसिंह सुमन ने बापू संबंधी एक अनुद्घाटित सत्यकथा सुनायी, जिसने एकबारगी स्तब्ध और विचलित कर दिया.

सांप्रदायिक तनाव की चरम सीमा के ये वे दिन. बापू की ऐतिहासिक नोआखाली यात्रा. घृणा की लपटों के बीच वह कमलवत् मुसकराते, प्यार बांटते, घायल दिलों पर मरहम लगाते घूमते थे दिन भर. कभी उन्हें खिन्न, उद्विग्न, अभिभूत नहीं देखा गया.

नोआखाली में बापू की कुटिया. रात का गहरा सन्नाटा. सब थके, चैन की नींद सोये. सहसा कुटी के बाहर जोर से रोने की आवाज. . . जो धीरे-धीरे सिसकियों में बदल गयी. फिर सब कुछ पूर्ववत्. . . शांति. . . सन्नाटा. . .

एक बापू-भक्त को इस रुदन की 'आहट' मिल गयी थी. सोचा, कोई दुखी जन आया होगा. वह चुपचाप बाहर आया.

देखा, बापू थे. . . कुटिया से बाहर आ कर उस नीरव, निर्जन निस्तब्धता में रो कर हलके हो रहे थे. . .

बापू ने उसे देखा. निकट आ कर उसके कंधे थपथपाये. फिर फीकी मुसकान चेहरे पर ला कर बोले—महात्मा ही थोड़े हूं. . . मनुष्य भी हूं, भाई! . . . आज सहा नहीं गया तो दिल का गुबार निकालने अकेले बाहर आ गया, ताकि तुम लोगों को कष्ट न हो. . .

भक्त अकाल-पुरुष के चरणों में गिर कर फफक उठा. □

सिंहासन

● रिजवान जहीर उस्मान

एक राजा था. राजा अंधा था. राजा ने ढिंढोरा पिटवाया—जो मेरी आंखें लौटा देगा, राजपाट उसी को दे दिया जायेगा.

राजधानी में एक संन्यासी आया. संन्यासी ने राजा की आंखें ठीक कर दीं. संन्यासी को राज-पाट मिल गया. संन्यासी सिंहासन पर बैठा. संन्यासी अंधा हो गया. □

अंतिम संस्कार

रमेश गुप्त

पांच अप धड़धड़ाती हुई गुजर गयी. गति चली गयी, शेष रह गयी एक गूंज, एक अनाम शोर और कसमसाता-सा सन्नाटा.

रेलवे लाइन के पास कंकड़-पत्थरों से भरी पगडंडी पर वे दोनों चले जा रहे थे. साथ-साथ गंदगी के बदबू भरे ढेर और उन ढेरों से सटी झुग्गियां और क्लोरोफॉर्म भरी ट्यूबों जैसी उन झुग्गियों में कैद केंचुए जैसे छटपटाते, अर्द्धचेतन, चेतनालुप्त और मरे हुए तक भी इनसान.

उन दोनों में से एक बुरी तरह खांस रहा था. शायद उसे खांसी का दौरा पड़ गया था. खांसते-खांसते उसका शरीर कांप गया, सांस फूल गयी और टांगें लड़खड़ा गयीं. उसने रेलवे लाइन पर ढेर सारा बलगम उगल दिया.

—अब तो जिंदगी दूभर हो गयी है, पहलवान, इससे तो अच्छा है, भगवान मौत दे दे! उसने हांफते हुए कहा.

—सर्दी बहुत बढ़ गयी है, पहलवान बोला. वह एक बड़े-से कंकड़ की वजह से लुढ़कते-लुढ़कते बचा.

पहले वाले को रेलवे लाइन के पास एक सिगरेट का टोंटा पड़ा मिल गया. उसने उसे उठाकर सुलगा लिया और उसका एक कश खींचते ही वह फिर खांसने लगा.

—मर जायें तो इन सब झंझटों से छुटकारा हो जाये. न रोटी की फिकर, न सर्दी का डर!

—अरे रामू के काका, मरना भी तो आसान नहीं !

—सो तो है, पहलवान!

मौत की छाया में जिंदगी तलाशते वे लोग रेलवे लाइन के पुल के नीचे बनी झुग्गियों की ओर बढ़ गये.

डूबती शाम का सहमा-सहमा -सा अंधेरा नीचे लटक आया था. जिंदगी की सारी विवशताएं, असमर्थताएं तथा विपन्नताएं काले नाग की तरह कुंडली मार कर उस बस्ती में बैठी हुई थीं. जीने के सारे सूत्र टूट कर बिखर गये थे.

★ ★

—धन्नो फटी धोती से ठंडी हवा के थपेड़ों से अपनी रक्षा करती, मिट्टी की सील भरी दीवार से टिकी, तार-तार चटाई पर पड़े रामू को ताक रही थी.

—मां, बापू अभी तक क्यों नहीं लौटा? भैया की तबीयत तो और ज्यादा बिगड़ती जा रही है. रामू से एक साल छोटी प्यारी की खोखली आवाज झुग्गी के मृतप्राय: सन्नाटे को कसमसा गयी.

अभी कुछ दिन पहले दीवाली हो कर चुकी थी. छोटू अमीरों की कोठियों के बाहरी सिरों पर जलती हुई ढेरों मोमबत्तियां चुरा लाया था. उसी की वजह से दस-बीस दिन के प्रकाश का प्रबंध हो गया था. उन्हीं में से एक मोमबत्ती का पीला प्रकाश झुग्गी में फैल रहा था.

रामू का बापू उसके लिए दवा लाने के बहाने खिसक गया था. बाकी के चार बच्चे पास ही के बाजार में मशहूर चाटवालों की दुकान के बाहर रखे कूड़े के डिब्बों से झूठे पत्ते उठा कर चाट रहे थे.

धन्नो को लगा, रामू के बदन में होने वाला हलका कंपन भी बंद हो गया है. वह आगे को झुक गयी. रामू की आंखें मुंद गयीं. उसका बदन बर्फ की तरह ठंडा पड़ चुका था.

धन्नो पल भर को कांपी. एक गहरी हिचकी उसे आयी. पर बिजली की-सी गति से उसने मौत से समझौता कर लिया.

—प्यारी, वह नासपीटा तो न जाने कहां मर गया! जा, पहलवान काका को तो बुला ला. घर में मिट्टी पड़ी है. एक गहरी सांस छोड़ कर धन्नो बोली.

—रामू मर गया! प्यारी बिलख पड़ी.

—चीख काहे रही है, कलमुंही! वैसे तो बड़ी सावितरी बनती है! मैं दस नंबर में काम नहीं करूंगी... अरी चुड़ैल, वहां काम करती होती तो रामू की दवा के लिए कुछ पैसे तो मिल जाते!...पर तुझे तो वह साहब खा जाता न!

—मां, दस नंबर वाला साहब बहुत खराब है. पर रामू मर गया...छोटू...नहीं मां, मैं कल से काम पर चली जाऊंगी.

—काम पर जब जाना हो, तब जाना...इस समय तो पहलवान काका को बुला ला.

इससे पहले कि प्यारी उठती, झुग्गी के बाहर खांसी के स्वर गूंज गये.

—आ गया, करमजला! धन्नो बुदबुदायी. वह विवशताभरी दृष्टि से शून्य में ताक रही थी. भावना-संवेदना शून्य-सी वह हिमबिंदु बनी बैठी थी. वे दोनों अंदर आ गये.

—मुक्ति हो गयी बेचारे की! पहलवान ने रामू के निर्जीव शरीर पर एक नजर डाली.

—कफन के लिए कुछ पैसे हैं?

—पैसे? धन्नो बुदबुदायी. उसके ओठों पर एक फीकी-सी मुसकान उभर आयी. उस मुसकान में दुनिया भर का सारा व्यंग्य तथा विद्रूपता समायी हुई थी.

—पैसे होते तो यह मरता ही क्यों?

—कुछ भी नहीं है?

—जो जिंदा हैं, उनकी रोटी के लिए पैसे नहीं हैं और तुम मरे हुए...

धन्नो ने अपनी बात अधूरी छोड़ दी. उसका स्वर

नागफनी का कांटा बन गया.

—पहलवान , चलो, अमीरों की बस्ती से मांग लायें, कहेंगे, घर में जवान लड़के की लाश पड़ी है.

—बेकार है. नहीं मिलेंगे.

—क्यों?

—उनके लिए हमारी यह मजबूरी बेकार हो गयी है.

—पहले तो मिल जाते थे.

—अब वे इसे बहाना समझने लगे हैं. रामू की मां, कोई फटी-वटी चादर हो तो...

—वह तो निकालनी ही पड़ेगी.

—मैं अभी आया. थोड़े-से बांस-फूस, और दो आदमियों का इंतजाम भी तो करना है.

पहलवान चला गया. सिर्फ नाम पहलवान...पर बदन में हड्डियों के सिवा और कुछ नहीं था.

★ ★

—क्या सोच रही है, धन्नो? रामू के काका की जड़ दृष्टि 'धन्नो से जा टकरायी.

—कुछ नहीं,

—कुछ तो सोच रही होगी!

—कहीं से कुछ आटे का इंतजाम हुआ?

—न—हीं. .

—फिर कुछ क्षण का कसमसाता-सा मौन. छटपटाती प्यारी की हल्की, दबी-घुटी हिचकियों का धीमा स्वर झुग्गी की रिक्तता को और ज्यादा घनीभूत किये दे रहा था.

—मैं कल से दस नंबर में जाऊंगी.

रामू के काका ने अविश्वास भरी दृष्टि से प्यारी को देखा. एक अनाम, अव्यक्त -सी खुशी का स्रोत अंतर में उमगने को हो आया.

—क्या सोच रहा है, तू?

—कुछ नहीं.

—कुछ तो सोच रहा होगा.

—सोच रहा हूं, अच्छा हुआ रामू चला गया... एक मुंह तो कम हुआ.

धन्नो जड़ हुई सब कुछ सुनती रही.

★ ★

पीपल के पेड़ से किसी पक्षी की मनहूस आवाज गूंजी तो रघु भैरव के मंदिर के चबूतरे से नीचे उतर आया. वह मरी हुई चाल से तीनों वेदियों के पास से गुजर कर जमुना की ओर जानेवाली सीढ़ियों के पास ठिठक कर खड़ा हो गया.

दूर तक मायावी वीरानी व्याप्त थी. क्षय रोगिणी-सी जमुना की धारा पीली रेत के बिस्तरे पर पड़ी छटपटा रही थी.

रघु पलटा. उसने गहरी सांस छोड़ कर धन्नों के नीचे तीनों सूनी वेदियों की ओर ताका. वे सचमुच सूनी थीं. एकदम बर्फ की तरह ठंडी तीन दिन से एक भी मुर्दा नहीं आया था.

रघु के अंतर में रेत-सी घुल गयी. उसका मन वितृष्णा से भर गया. वह बुरी तरह उत्तेजित हो गया.

एक तरफ कहते हैं कि आबादी को बढ़ने मत दो, दूसरी तरफ ससुरे नये-नये अस्पताल खोल कर, दवाइयों के कारखाने लगा कर, नयी-नयी दवाइयां और इलाज के तरीके ईजाद करके लोगों को मरने भी नहीं देते!

पुराने दिन भी क्या थे! हर साल-दो साल में कोई-न -कोई महामारी फैल जाती थी. कभी प्लेग, कभी चेचक, कभी मलेरिया...उसे याद वे दिन हैं. तब उसके बाबा यहीं थे....एक-एक दिन में दो-दो सौ मुर्दे आते थे. तब रोटी छोड़, रोज जलेबियां खाने को मिलती थी.

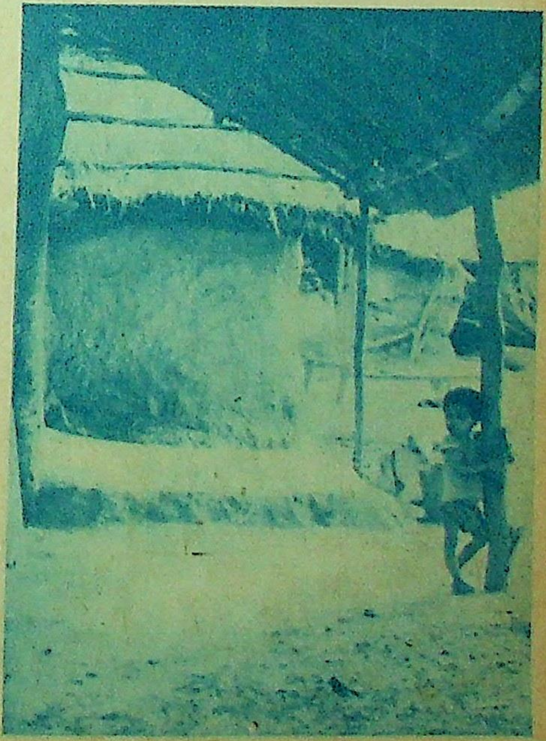
और अब? ऊपर वाला भी कैसे-कैसे मजाक करता है! तीन बार में पांच बच्चे दे दिये. दो बार जुड़वां. एक लाभ आये, तब दो प्राणियों का पेट नहीं भरता!..तिस पर घर में सात प्राणी हैं. तीन दिन से एक भी मुर्दा नहीं आया है....अगर यहीं हाल रहा तो...

श्मशान पर उतरते गहराते कोहरे के आवरण में रघु प्रेत-छाया जैसा छटपटा रहा था...

महंगाई का यह हाल है और ससुर लोगों ने मरना छोड़ दिया है. चारों तरफ महंगाई है, पर सिर्फ इसी धंधे में मंदी आयी है.

जो भूले-भटके मर जाते हैं, वे शहर से दूर इस श्मशान भूमि तक नहीं पहुंच पाते. आधे से ज्यादा तो उस कमबख्त बिजली के श्मशान में पहुंच जाते हैं. आधे शहर के बीच बनी श्मशान-भूमियों से आगे नहीं बढ़ पाते.

जी चाहता है, इस बिजली के श्मशान को बम से उड़ा दूं. कल-कारखानों और जिंदा आदमियों को तो बिजली मिलती नहीं पर मुर्दों के लिए इनके पास बिजली है!



● एस. पी. सिन्हा



क्या जमाना आ गया है! लोग अपना धर्म-कर्म तक भूल गये हैं. हर काम में भागदौड़ जल्दबाजी. आदमी मरा नहीं कि जल्दी-जल्दी से उसे बिजली से फूंक कर भाग गये. यहां तक आने की किसे फुर्सत है? जितना टाइम यहां तक आने में लगेगा, उतने में लाखों के वारे-न्यारे हो सकते हैं.

कहीं बिजली से फुंकने में मुक्ति मिलती है? मुर्दे को बिना गंगा-जमुना में नहाये, कहीं उसकी मिट्टी संवरती है? पर आजकल के नास्तिक लोगों को अंतिम क्रिया-करम भी ठीक से करने की फुर्सत नहीं!

रघु पलटा. उसने लकड़ी की सूनी टाल की तरफ देखा. खचेरू टाल के दरवाजे के पास ऊंघता-सा बैठा बीड़ी फूंक रहा था.

रघू ने खचेरू को देखा और तमतमा गया.

इस साले खचेरू के लालच ने मरवा दिया, वरना पिछले साल तक सब कुछ ठीक था. बिना मुर्दों के आये भी काफी आमदनी हो जाती थी.

सरकार ने लावारिस लाशों के अंतिम संस्कार के लिए लट्ठे और लकड़ियों की मंजूरी दे रखी थी, एक-दो लावारिस लाशें आतीं. एक-दो और फर्जी. अंतिम संस्कार हो जाता. बिना लट्ठे और कम लकड़ियों के साथ काम हो जाता. काफी पैसे बच जाते थे.

पर इस साले खचेरू को ज्यादा लालच चढ़ गया. आटे में नमक की तरह तो बेईमानी खप जाती है. पर नमक में आटा डालो तो पकड़े ही जाओगे. रजिस्टर में रोज आठ-दस लावारिस लाशों के अंतिम संस्कार दर्ज होने लगे. सरकार को शक हुआ. खुफिया जांच-पड़ताल हुई. लावारिस लाशें मेडिकल कालेज में भेजी जाने लगीं.

कई बार जी चाहता है. . .मुर्दे आयें या न आयें, मैं इस खचेरू के बच्चे का गला दबा कर इसका यहीं अंतिम-संस्कार कर दूं!

रघु भुनभुनाता हुआ अपनी अनमापी विपन्नता के इतिहास को दोहराता रहा. उसने हसरत भरी निगाहों से उन तीनों सूनी वेदियों को देखा और भरी चाल से, दोनों बिवाइयों से भरे पांवों को घसीटता हुआ अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़ा.

* *

रात गहरा रही थी और अब किसी के आने का सवाल ही नहीं उठता था.

—राम नाम सत्य है! सत्य बोलो गत है!!

रघु के पांव जम गये. उसकी आंखें चमक उठीं. वह ठिठका और चौकन्नी निगाहों से अंधेरे के आवरण को भेद कर चारों तरफ देखने लगा. .

क्या यह वास्तविकता थी या भ्रम?

घने कोहरे और रात के अंधेरे के सायों को भेद पाने में उसकी आंखें असमर्थ थीं. उसकी सारी संज्ञाएं उसके कानों में एकत्र हो चुकी थीं.

—राम नाम सत्य है!

स्वर पास आ चुका था. यह भ्रम नहीं, नंगी सच्चाई थी. मृत्यु की घोषणा करनेवाले इस बर्फीले स्वर ने रघु के मृतप्राय अंतर में नवजीवन की गर्मी फूंक दी.

वह खुशी से झूम उठा. पर तभी उसने सोचा, रात के अंधेरे में ये लोग क्यों आये हैं? कहीं कोई गोल-माल, हत्या-वत्या का केस न हो?

तब तक वे लोग विश्राम-चबूतरे तक पहुंच गये. पास ही सरकारी बिजली का खंभा था, जिसके छोटे बल्ब की पीली-सी रोशनी में वे लोग उसे साफ दिखायी दे गये. रघु ने अर्थी को देखा. पलक झपकते ही वह सब कुछ समझ गया.

जिस मरने वाले को चौथा आदमी और कोरा लट्ठा तक मयस्सर नहीं, वह रघु गुरु को क्या कुछ दे सकता है? रघु बड़बड़ाया और उसका दिल डूब गया. उन लोगों ने अर्थी विश्राम-चबूतरे पर रख दी.

—कौन है? आदमी या औरत? रघू ने चबूतरे के पास जा कर पूछा.

—लड़का.

—कितना बड़ा?

—सोलह साल का.

—कैसे मरा?

वे दोनों हंस पड़े—भयंकर मायावी और घिनौना-सा अट्टहास. तीसरा गर्दन झुकाये खड़ा रहा.

—बोलते क्यों नहीं? रघु ने उन्हें डांटा.

—मौत आयी और बस मर गया.

—रात में कैसे ले आये?

—रात में जिंदों के लिए तो झुग्गी में जगह होती नहीं. . .फिर. . .

—ठीक है. . .ठीक है. कितनी लकड़ियां चाहिए?

—लकड़ियां? उनको खरीदने के लिए पैसे कहां हैं? जमुना में बहाने की इजाजत दे दो, पंडितजी. तुम्हारा बड़ा उपकार होगा.

—जमना में तो बच्चे बहाये जा सकते हैं. पर यह तो पूरा आदमी है! इसे बहाना गैरकानूनी होगा. तुम्हें लकड़ियां लेनी ही पड़ेंगी. रघु ने दृढ़ता से कहा. उसने सोचा, खचेरू से ही कुछ कमीशन मिल जायेगा तो किलो-डेढ़ किलो आटे का जुगाड़ लग सकता है.

—क्या भाव है?

—बारह रुपये मन. कम से कम चार मन तो लग ही जायेंगी.

—बाप रे बाप! मरे हुए को फूंकने के लिए भी पचास-साठ रुपये चाहिए! इत्ते पैसों में तो महीने भर का आटा आ जायेगा.

अनायास काले बादलों के बीच जैसे सुनहरी बिजली चमक गयी. रघु का अंतर जगमगा गया.

—तो तुम्हारे पास इतने पैसे नहीं हैं?

—पैसे होते तो फिर बात ही क्या थी?

—ठीक है! तुम मुर्दे को छोड़ जाओ.

—सच! पहलवान बोला.

—तुम इसका क्या करोगे?

—परोपकार.

—भगवान करे, तुम जुग-जुग जियो, पंडितजी.

भारमुक्त हो वे चले गये.

रघु हुमक उठा.

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में दो अंक मुफ्त. यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में पांच अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:

एक वर्ष—१० रुपये
दो वर्ष—१९ रुपये
तीन वर्ष—२७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष—३० रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ----------------

पता ----------------

हस्ताक्षर ----------------

सारिका

दिसंबर १९७६

- ग्यारह विशिष्ट कहानियां ○ आद्यकथाकार — हिंदी
- श्री दुष्यंतकुमार की पहली पुण्यतिथि पर कन्हैयालाल नंदन का विशिष्ट लेख.
- महत्वपूर्ण लघुकथाएं
- अभिमन्यु अनत के धारावाहिक उपन्यास 'लाल पसीना' की सातवीं किस्त. ○ सभी स्थायी स्तंभ.
- इस अंक के कहानीकार

इस्मत चुगताई, रणजीतकुमार साहा, सच्चिदानंद धूमकेतु, राकेश वत्स, कन्हैयालाल गांधी, भगवान, बीरराजा, शांता वर्मा, वीरेंद्र सक्सेना, अनय, राही मासूम रजा आदि.

प्रतीक्षा... प्रतीक्षा... प्रतीक्षा

सारिका के अगले अंकों में एक नयी शुरुआत—

आपके सपने

'सारिका' के पाठकों के लिए, पाठकों का ही, एक नया स्तंभ 'आपके सपने' प्रारंभ करने की हमारी योजना है. हम जो सपने देखते रहते हैं (निद्रावस्था में) उनमें अधिकांश तो बिल्कुल साधारण होते हैं, और प्रायः हमें याद भी नहीं रहते. किंतु कभी हमें अपने जीवन से संबंधित कुछ ऐसे विचित्र और अद्‌भुत स्वप्न दिखायी पड़ते हैं, जो हमें उद्वेलित कर देते हैं, जिन्हें हम भुला नहीं पाते और जो हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं. पाठकों से निवेदन है कि वे अपने किसी ऐसे ही सपने का वर्णन तथा उसने उसके जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया, इसका विवरण, लगभग ६०० शब्दों में लिख भेजें. जो सपने रोचक और विशिष्टता लिये हुए होंगे, उन्हें इस स्तंभ में प्रकाशित किया जायेगा. लिफाफे पर लिखें—

'आपके सपने'
'सारिका'
टाइम्स ऑफ इंडिया
बंबई-१

—जय भैरव बाबा की! वह चीख पड़ा और सोचने लगा, भैरव बाबा की कृपा हुई तो इन पांचों पिल्लों को रोटी तो मिलेगी ही, दो-दो जलेबियां भी पल्ले पड़ जायेंगी.

—कहां पंडित काका, यह माजरा क्या है? तब तक खचेरू उठ कर रघु के पास आ खड़ा हो गया.

—खचेरू, चबूतरे पर अर्थी रखी है. तनिक ध्यान रखियो. मैं अभी आधे घंटे में आया.

—तुम चल कहां दिये, काका? खचेरू ने खांसते हुए पूछा. रघू ने कोई उत्तर नहीं दिया. उसमें तो जैसे नयी जिंदगी आ गयी थी. श्मशान से बाहर आ कर वह कुछ ही दूर पर बनी अपनी झोंपड़ी के पास पहुंचा. बगल की झोंपड़ी में दीनू रहता था. वह सुबह अखबार बांटता है. उसके पास साइकिल है.

रघू ने दीनू से साइकिल मांग ली. वह सीधा प्रोफेसर कुलश्रेष्ठ की कोठी की ओर रवाना हो गया.

★ ★

वह काफी तेज रफ्तार से साइकिल चला रहा था. उसे पुराने मेडिकल कालेज की याद आ रही थी. वह तब मेडिकल कालेज में लाशों को सप्लाई किया करता था. हर लाश पर उसे दस रुपये मिलते थे. तब सस्ता जमाना था. जल्दी ही उसका यह धंधा चौपट हो गया. मेडिकल कालेज को एक अस्पताल से जोड़ दिया गया. अस्पताल में ही इतने लावारिस लोग मरने लगे कि कालेज वालों को विद्यार्थियों को चीरफाड़ सिखाने के लिए शवों की कमी नहीं रही.

अभी एक साल पहले पास ही में, शहर से काफी दूर, एक नया मेडिकल कालेज खुला था. भैरव बाबा की कृपा से कालेज के साथ कोई अस्पताल नहीं जुड़ा था. वह भागा-भागा प्रोफेसर कुलश्रेष्ठ साहब के पास गया था. उसने उनसे मुर्दों के लेने का आग्रह किया था.

—भई, हमारे पास अन्य अस्पतालों से शव आ जाते हैं अगर कभी जरूरत हुई तो हम तुम से संपर्क कर लेंगे. तुम भैरव श्मशान घाट वाले हो न?

—जी, हां तब रघु ने भरे स्वर में कह दिया था.

उस समय प्रोफेसर साहब टाल गये थे. आज वह प्रोफेसर से ऐसी विनती-चिरौरी करेगा कि उनसे न करते नहीं बनेगा. फिर कम से कम बीस-तीस तो कहीं नहीं गये!

रघु प्रोफेसर साहब की कोठी में पहुंच गया. वह पाइप पीते हुए अपने लान में टहल रहे थे. उनका शक्तिशाली अलसेशियन कुत्ता पोर्टिको में बंधा था. रघु को अंदर आता देख वह जोर-जोर से भौंकने लगा.

—नो वाल्टर. . . नो! प्रोफेसर साहब ने पाइप निकाल कर कहा. फिर वह रघु की ओर बढ़ आये. फिर उन्होंने पूछा, कौन हो?

—हुजूर, मैं रघु हूं. वही भैरव श्मशान घाटवाला.

—ओ हां, रघु! कहो, कैसे आना हुआ?

—हुजूर, एक बार तो सेवा का मौका दे दीजिए! सिर्फ एक ही है. बड़ी उम्मीद ले कर आया हूं.

—रघु, हमने तुमसे पहले भी कहा था कि यहां कोई स्कोप नहीं है. तुम तो जानते ही हो, हमारे लिए लाशों की कोई कमी नहीं. . . लोग मरते हैं. . . धड़ल्ले से मरते रहते हैं. . . सड़क-दुर्घटना में, भूख से, झगड़ों में, शीत-लहर से, लू से, बाढ़ से, दिल टूटने से, मिलावटी दवाओं से, विषैली शराब से. . .

रघु सोच में डूब गया — इत्ते सारे लोग मरते हैं! पर मर कर वे कहां गायब हो जाते हैं? पर उस पर इस तर्क का कोई असर नहीं हुआ.

—हुजूर, आज एक तो ले लीजिए. मैं बड़ी आशा ले कर आया था. घर में अन्न का एक दाना भी नहीं है.

—तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आता?

—हुजूर, नौजवान लड़का है. एकदम ताजा लाश है. कहीं कोई बदबू, घाव, खून नहीं. . .आप देखेंगे तो. . .

प्रोफेसर कुलश्रेष्ठ पाइप पीते रहे. वह कुछ नहीं बोले. विचारमग्न-से वह इधर-उधर टहलते रहे. फिर उन्होंने जेब से एक नोट निकाल कर रघु की ओर बढ़ाते हुए कहा—ठीक है. हम उसे मंगवा लेंगे. यह लो, तुम्हारा इनाम.

रघु ने हुलस कर वह नोट थाम लिया. पर वह कितना हलका नोट था.

—कुल पांच रुपये, हुजूर? हुजूर. . माई-बाप. . . दस साल पहले तो दस रुपये का रेट था. रघु ने डूबे स्वर में कहा.

—तो क्या अब सौ रुपये चाहिए? प्रोफेसर साहब का स्वर चिड़चिड़ा हो आया.

—हुजूर, आजकल महंगाई का जमाना है. गेहूं तीन रुपये किलो, भुने चने सात रुपये. . . लकड़ियां बारह रुपये मन. . . .

—तो तुम्हें जहां ज्यादा पैसे मिलें, वहीं चले जाओ. . लाओ, नोट वापस करो.

रघू घबरा गया. उसने नोट को कस कर मुट्ठी में भींच लिया और दो कदम पीछे हट गया. वह सोच रहा था— और चीजों के स्टॉक दबाओ तो दो के चार हो जाते हैं. पर इसे रोकने पर. . . सुबह पांच रुपये की जगह पांच पैसे भी नहीं मिलेंगे.

—अब तुम जा सकते हो, रघु! हम शव को मंगवाने का प्रबंध करते हैं.

रघू चलने को हुआ तो प्रोफेसर साहब ने कॉलेज के थियेटर की ओर बढ़ते हुए कहा — रघु, चीजों के दाम डिमांड और सप्लाई पर निर्भर करते हैं.

रघु लौट पड़ा. उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था. साइकिल उसके पास थी. फिर भी वह शोकमग्न-सा पैदल चला जा रहा था. उसे लग रहा था, जैसे वह किसी का अंतिम संस्कार करके लौट रहा है. पर किसका?

१, बाबर प्लेस, नयी दिल्ली – १

☐☐☐

ठहाका

• ब्रह्मदत्त

लाल रंग की वह छाया एक पांच मंजिला इमारत में प्रविष्ट हो गयी. कुणाल ने मेरी तरफ देख कर खींसे निपोरीं. मैंने सिर उठा कर ऊपर पांचवी मंजिल पर दृष्टि डाली, लेकिन देखा, विस्तृत स्याह आसमान. आसमान में काफी बादल लटके हुए थे और मुझे उनमें नीचे सड़कों की, मकानों-दुकानों की रोशनियां झिलमिलाती दिखायीं पड़ीं. मालूम नहीं, मैंने सच देखा हो या कल्पना जागी? मेरी आंखें सदा से कमजोर हैं.

—चलो, कुणाल ने मेरी पीठ छू कर कहा.

मैंने एक गहरी सांस ली.

—चलना यार! कुणाल ने पीठ पर हाथ दबा कर ठेला.

—चलो, मैंने कुछ चिढ़ कर कहा और चल पड़ा—रात वाला प्रोग्राम पक्का है न, यह जानते हुए भी कि कुणाल झूठा है, मैंने पूछा.

—हे-हे-हे...' खीसें निपोरीं.

—चल! मैंने दांत पीस कर कहा—खीसा खाली था, तो इतना चलाया क्यों?

—व्यायाम है! चला करो खूब. कभी बीमार नहीं पड़ोगे. कुणाल बेशरमी से बोला.

—अबे...मैंने घूंसा उठा कर कहा—बड़ा बुद्धिमान हो गया है ?

—हां थोड़ा-थोड़ा तो हूं. उसने मुसकरा कर कहा-मगर क्या करूं? कोई मेरी बुद्धि का उपयोग नहीं करता!

—चलो, मैं कर देता हूं, मगर पहले यह बताओ कि तुम्हें यदि दुनिया का राजा बना दिया जाये तो सबसे पहले कौन-सा आर्डर निकालोगे? मैंने आंखें तरेर कर पूछा.

—मेरी बात छोड़ो! वह ओंठ बिदका कर बोला—पहले तुम बताओ कि तुम होओगे तो क्या करोगे?

कुणाल बेशरम है, पर चालाक भी कम नहीं है. बड़ा चालू है. मैंने सोचा भी नहीं था कि वह मेरा प्रश्न मुझ पर ही उलट देगा. हड़बड़ा कर बोल पड़ा—अरे यार, अगर मैं दुनिया का राजा हो जाऊं तो हरेक आदमी को...याने कि तुझको एक-एक मोटर, बंगला और...और...त....

अभी मैं पूरी बात कह भी न पाया था कि कुणाल का चेहरा विचित्र रूप से तुड़मुड़ा गया. मैं समझ गया कि अब वह लगायेगा एक ठहाका.

और उसने लगाया.

चूंकि मेरी आंखें सदा से कमजोर हैं. मैंने समझा कि वह मेरी खिल्ली उड़ा रहा है.

—अगर मैं, अगर मैं...कांपते होंठों से मैं बोला—अगर मेरे हाथ में किसी भी प्रकार की सत्ता दे दी जाये, कुणाल, तो पहला आदेश मैं यही निकालूंगा कि... कि आज से ठहाका लगाना अनिवार्य है.

अनवरत हंसी के मध्य उसने पूछा—क्यों?

—क्योंकि ठहाका लगाना सबसे बड़ा पुण्य है कुणाल! अभी तू चाहता तो मुझे मार सकता था और तू जीत भी जाता, क्योंकि मैं कितना बलवान हूं, मैं जानता हूं. पर तू क्या मुझे पीट सकता है? वह भी इस तरह अट्टहास करते हुए?

—कभी नहीं, गुरु, कभी नहीं!

—इसलिए मैं आर्डर जारी करना चाहता हूं सबसे पहले कि दुनिया में कोई भी काम शुरु करना हो तो पहले लगाओ एक ठहाका . हो सके तो काम के दौरान में भी ठहाका जारी रहे. और काम के अंत में तो ठहाका लगाना ही है, चाहे जो हो जाये!

—क्या बात कहीं है! कुणाल ने सिर घुमा कर मेट्रो के बस-स्टॉप पर तन कर खड़ी एक खूबसूरत लड़की पर नजर डाली. मैंने गौर किया, उसके चेहरे पर एक चमक आ गयी है.

ठहाका लगाने वाला बड़ा साफ सुथरा, श्लील और सुंदर होता है, मैंने सोचा भले वह कुणाल की तरह घर में पैसे मारता हो, औरत या दारुखोरी करता हो; लेकिन जब कभी ऐसा आदमी ठहाका लगाता है, सब कचरा बाहर फिक जाता है. भीतर रह जाता है, आईने की तरह लकदक करता हृदय, सिर्फ हृदय.

आह कैसी होगी वह दुनिया , जहां हर काम के पहले लोगों को एक ठहाका लगाना पड़े? रात को सोने के पहले ठहाका, सुबह बिस्तर छोड़ने के पहले ठहाका. भोजन के पहले, बच्चों को डांटने के पहले और दफ्तर में घुसने के पहले , एक ठहाका . सिर्फ एक ठहाका. बस में, टैक्सी में, घर में, दुकान में, सब जगह एक ठहाका. ठहाका ही ठहाका.

बॉयलर खोलने के पहले ठहाका.
खेत में हल उतारने के पहले ठहाका.
बंदूक का घोड़ा दबाने के पहले ठहाका.
ठहाका और ठहाका.
बच्चा पैदा होने के पहले ठहाका.
मुर्दा चिता पर चढ़ाने के पहले ठहाका.

बिना ठहाका के दुनिया में कोई भी काम न होने पाये काम तो काम, जिंदगी को हो जाने दो एक ठहाका! जिंदगी और जिंदगी. ठहाका और ठहाका.



• एस. एल. खुल्लर

मैं सोचता हूं, यह दुनिया इसीलिए इतनी बेरौनक है, इतनी बदसूरत और इतनी बदनाम हो गयी है. क्योंकि लोग ठहाका लगाना भूल गये हैं!

अगर ठहाका आये, तो मुझे पूरा यकीन है कि इस दुनिया में फिर कोई जंग पैदा नहीं होगी. कोई स्त्री फिर कभी किसी चकले पर नहीं बैठेगी. बच्चा भीख नहीं मांगेगा, आदमी ईमान नहीं बेचेगा. मैं दावे के साथ कहता हूं कि ठहाका लगाने वाला न तो किसीका हक मार सकता है, न खून कर सकता है. जो काम-जिस प्रेम और शांति का प्रसार कभी कोई धर्म नहीं कर सका है, मैं डंके की चोट पर कहता हूं. कि वह एक काम, एक ठहाका अकेले ही पूरा कर देगा!

क्योंकि ठहाका लगाना गंगा-स्नान है और ठहाके लगाने वाला तीर्थ-स्थान! □□□

१२-३४६, बेलासिस ब्रिज, तारदेव, बम्बई-४०००३४

आत्मरचना (३२)

गर्दिश के दिन

• गुरुबचन सिंह

कुछ दिन हुए, मैं उस गली से होकर गुजरा था और उस घर की ओर हसरत भरी नजरों से देखा था, जिसमें मैंने कभी आंखें खोली थीं. उन दिनों उस क्वार्टर की खूबी यह हुआ करती थी कि उसमें एक ही कमरा था, जिसकी एक खिड़की और एक दरवाजा हुआ करता था. रोशनदान कोई नहीं. सामने छोटा-सा बरामदा, जिस पर टीन का छाजन, छोटा-सा आंगन, जो दीवार से घिरा हुआ था. उस घर के अंदर दिन के समय भी लालटेन या मोमबत्ती जलाकर कोई खास वस्तु तलाश की जाती थी. जब खाना पक रहा होता तो कोठरी चूल्हे या अंगीठी के धुंएं से भर जाती. गरमी के दिनों में कुछ ही क्षणों में पसीने से नहा लिया जाता. इस घर में मेरे दो भाई, एक बहन और माता-पिता का गुजर हुआ करता

जून, १९७२ से सारिका में इस महत्वपूर्ण लेखमाला की शुरुआत हुई थी और अब तक आप इसमें हरिशंकर परसाई, शानी, से. रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत बक्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर चंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रवींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवी, दामोदर सदन, हृदयेश, रामसरूप अणखी, एम. टी. वासुदेवन नायर, कृष्णप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, रॉबिन शा पुष्प, राजेंद्र यादव, दीप्ति खंडेलवाल, श्रवण कुमार, अजित पुष्कल, ओम गोस्वामी की आत्म-रचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है—इसी संघर्षशील यथार्थ का निरूपण करने वाली, प्रख्यात लेखकों की आत्म-रचनाएं इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए हिंदी-उर्दू कथाकार गुरुबचन सिंह की यह आत्मरचना.

था. आए-गए मेहमान भी इसी में समा जाते. ऐसे तंग माहौल में मैंने आंखें खोली थीं.

जिस लाइन में हमारा घर पड़ता था, उसमें कुल मिलाकर बारह क्वार्टर थे. –एक दूसरे से सटे हुए. इस तरह आमने-सामने और अगल-बगल कई लाइनों में भी अनेक क्वार्टर थे, जिनमें भारत के विभिन्न प्रांतों और विभिन्न जातियों के लोग रहते थे. उनका ताल्लुक मजदूर वर्ग से था. उनका जीवन, रहन-सहन और सोचने-समझने का ढंग लगभग एक जैसा था. यह वह वातावरण था, जिसमें मैं परवान चढ़ा.

मेरे पिता बहुत गरीब घर से थे. बाप का साया बचपन ही में सिर से उठ गया था. जो थोड़ी-बहुत जमीन थी, वह दादा-परदादा के जमाने ही में निकल गयी थी. मेरे पिता मेरे ताऊ के साथ दूसरे के खेतों में मजदूरी करते थे यानी हल चलाते थे. फिर वे ताऊ के साथ ही नौकरी की तलाश में गांव से निकल पड़े थे. वह उम्र उनकी नौकरी की नहीं थी. जगह-जगह की ठोकरें खाते हुए जमशेदपुर पहुंच गए थे. तब टाटा का कारखाना कोई बड़ा नहीं था. सुना तब इलाकों में छोटे-छोटे गांव और बस्तियां हुआ करती थीं. कहीं-कहीं कंपनी के क्वार्टर और साहबों के बंगलें और फिर जंगल ही जंगल.

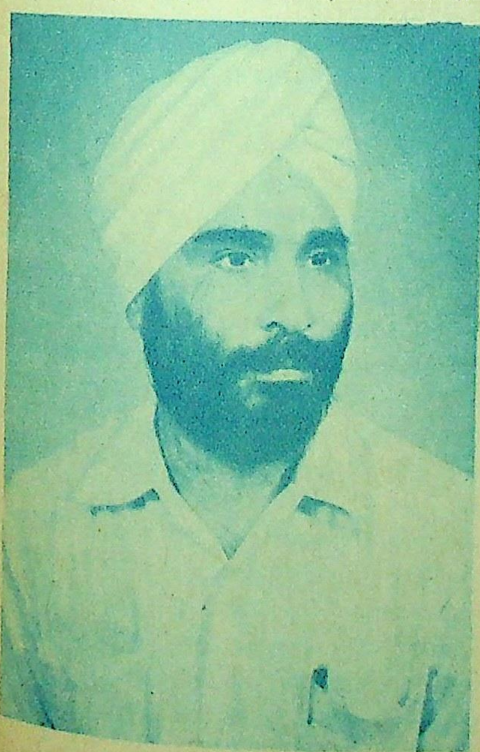
हमारे पूर्वज ब्राह्मण थे. गांवों के ब्राह्मण हमारे कुनबे का आदर करते थे, निर्धनता को भी वरदान मानते थे. जब पिताजी बाप-दादा और बड़े-बूढ़ों के जमाने की कहानियां सुनाने लगते तो, हम सब भाई-बहन अतीत में कहीं ऐसे खो जाते जैसे सब कुछ हमारी आंखों के सामने ही घटा हो. मां के संस्कार कट्टर थे. खानदान और रख-रखाव में कड़ी और गंभीर. हम भाई-बहनों को भरसक ताड़ कर रखतीं. बहुत कम किसी के घर जाने देतीं और कुछ खाने तो बिल्कुल न देतीं. सो मेरा स्वभाव आज भी ऐसा बना हुआ है, मैं कहीं किसी के यहां, चाहे वह रिश्तेदार ही क्यों न हो, उनके खाने के निमंत्रण को किसी बहाने से अस्वीकार करने की चेष्टा किया करता हूं.

मां को रामायण के काफी अंश कंठस्थ थे. जब मेरे पिताजी 'बी' शिफ्ट पर होते, रात ग्यारह बजे के करीब वापस घर लौटते, मां घर का सारा काम निबटा कर हमें रामायण की टीका सुनाने बैठ जातीं. करुण, मार्मिक शब्दों में बालकांड उन्हें बहुत प्रिय था. सुनते-सुनते जाने कब हमारी आंख लग जाती. वे शायद पिताजी के लौट आने तक रामायण बांचती रहतीं.

हिंदी का अक्षर-ज्ञान मां ने दिया था. मां ने जैसे अपनी करुण पीड़ा और संस्कार कूट-कूट कर मुझमें भर दिये थे. मैं दो भाइयों और एक बहन में सबसे बड़ा था. मैं बीमार ही पैदा हुआ हूं और बीमार ही रहा हूं. बचपन में मेरे जिंदा बचने की उम्मीद कम हुआ करती थी. मैं बड़ी मुश्किलों से पाला-पोसा गया था. इसलिए शायद मां को मुझसे विशेष स्नेह और मोह था जिसने मुझे और भी नाजुक और भावुक बना दिया था. ये सब ऐसी स्थितियां थीं, जिन्होंने मेरे अंदर के लेखक को जन्म दिया.

मेरे पिता मुझे इंजीनियर बनाने के हवाई किले बांधा करते थे लेकिन घर की माली हालत ऐसी थी कि मैट्रिक तक जाते-जाते मैं एक बार टाटा के टेक्निकल इंस्टीट्यूट में दाखिल होते-होते किसी प्रकार बच गया था. एक-दो मरतबा इधर-इधर कारखाने की नौकरी पर भी गया. लेकिन लेखन के रंग ने जो हाई स्कूल में आते-आते स्कूल मैगजिन को देखकर जोर पकड़ चुका था, मुझे कहीं भी टिकने नहीं दिया. मैं स्कूल का छात्र बना रहा.

लेखन का आरंभ अपने आप में एक बहुत बड़ी घटना थी. लड़कों के साथ खेलते-खेलते मेरी बांयी टांग के घुटने के पीछे कृपाण चुभ गयी थी. तीन-चार दिनों ही में विष के कारण मेरा पांव सूज गया था और अंदर ही अंदर गलने लगा था. डाक्टरों ने तजरबे के लिए आपरेशन या फिर आधी टांग काटने का निर्णय दिया था लेकिन आपरेशन कामयाब रहा. इस घटना ने मुझे बड़ा भयभीत और कुछ उन मौतों ने जो वार्ड में मेरे अगल-बगल की चारपाईयों पर घटी थीं, आत्मकेंद्रित कर दिया था. मेरे मन में जीने के प्रति मोह जाग गया था. फिर मर कर जीवित कैसे रहा जा सकता है, इसे मैंने रवि ठाकुर पर एक छोटा-सा लेख पढ़ कर जो कोर्स की अंग्रेजी पुस्तक में था, समझने की कोशिश की थी. मृत्यु कब कैसे दगा दे जाती है, इसे मैंने बचपन की एक मित्र करमों की मौत देखकर महसूस किया था, जो दस वर्ष की उम्र में टाईफाइड से मर गयी. आज भी वह दृश्य आंखों के सामने आ जाता है जब कि करमों को अर्थी पर लेटाया गया था. ऊपर से चादर डाल दी गयी थी और उसके चार बड़े भाई अपनी सबसे छोटी बहन को कंधों पर लाद कर श्मशान की ओर ले चले थे. मैं भी पीछे-पीछे हो लिया था. तभी गली की एक औरत ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा था — तुम कहां चले? जाओ, अपने घर जाओ.



मैं खड़ा उस अर्थी का जाता देखता रहा था. मेरी आंखें नम थीं. मैं कमजोर स्वास्थ्य, शांत स्वभाव के कारण लड़कों की अपेक्षा लड़कियों से अधिक मिलना और खेलना पसंद करता था. वे मुझसे मिलकर खुश भी होतीं थीं. धीरे-धीरे समझ में आता गया था कि, लड़कियों का साथ ज्यादह दिनों तक नहीं टिकता.

मैं किताबी कीड़ा कहलाता था. रवि, शरत और बंकिम बाबू की बंगला पुस्तकों के हिंदी अनुवाद तथा प्रेमचंद आदि की पुस्तकें जो स्कूल के पुस्तकालय में उपलब्ध हुआ करती थीं, मैंने आरंभ में ही पढ़ डाली थी. लिखने का चस्का इससे भी लगा. गद्य और पद्य दोनों. मां मेरी इस कोशिश पर खुश थीं. लेकिन जब मैं चार-छः घंटे लगातार इसी काम में लगा रहता, खाना-पीना और सोना भी भूल जाता, तब वे मुझे डांटती और टोकती भी थीं क्योंकि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था.

★ ★

मैंने उर्दू गली के एक पंजाबी पंडितजी से और पंजाबी एक ज्ञानीजी से सीखनी शुरू की थी और बंगला हाई स्कूल के एक छात्र से जो घर के पास रहता था.

मैं हिंदी-उर्दू दोनों भाषाओं में लिखने का प्रयास करता. एक ओर किसी प्रकार मैट्रिक पास करने की चिंता, दूसरी ओर कोई पक्की नौकरी पा लेने की लालसा. तीसरी ओर कहीं छप जाने का मोह. मेरे अंदर इतना संघर्ष रहा करता था कि मैं अपने आपको बहुत अभागा समझने लगा था. उन दिनों जमशेदपुर में कोई कालेज नहीं हुआ करता था बल्कि पंद्रह-बीस बरस पहले भी यहां कोई कालेज नहीं था. औकात वाले अपने बच्चों को दूसरे शहरों में ऊंची शिक्षा के लिए भेजा करते थे. मेरा ऐसा सौभाग्य होगा, मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था.

कंपनी के स्कूल में मेरे साथ अमीर घरों और अफसरों के लड़के पढ़ा करते थे. उनमें से आज कई ऊंचे पदों पर हैं, कई अच्छे बिजनेस चलाते हैं. उनमें से चंद एक कभी मुझसे हमदर्दी रखते थे. लेकिन मैं तब भी अपने आप को उनसे जोड़ पाने में सफल नहीं हो पाता था. मेरी उनसे कोई पहचान ही नहीं है.

मेरे बचपन का एक साथी हुआ करता था, इस्माईल. तीन क्वार्टर छोड़कर चौथे क्वार्टर में रहता था. उसका बाप एक मामूली खलासी था. इस्माईल को कोई मेरा हमदम कह देता, कोई दोस्त. उसने जहां-तहां से लाकर मुझे उर्दू की जितनी पुस्तकें पढ़ने को दी थीं, उतनी शायद मैं खुद नहीं जुटा सकता . उसका एहसान तो जिंदगी भर नहीं भूलूंगा. उसे खुद भी पढ़ने का बहुत शौक था, इतना कि उर्दू में उसे सौ में पचहत्तर से अस्सी तक मार्क आते थे और हिसाब में जीरो . और वह मिडल क्लास से आगे नहीं पढ़ सका था. उसे मेरा नाम किसी पत्रिका में देखने का बहुत शौक हुआ करता था. और जिस दिन अपने समय की उर्दू की श्रेष्ठ पत्रिका 'साकी' के कहानी विशेषांक में मेरी प्रथम कहानी 'न जाने कब' जो कि कोयले की खदानों में काम करने वाली मजदूर औरतों पर लिखी गयी थी, प्रकाशित हुई, उसने गली-महल्ले में

मेरा वह ढिंडोरा पीटा था कि सब चौंक गए थे. लोगों को पास जमा करके वह मेरी कहानी पढ़ कर सुनाया करता था. और इस गर्व से मेरी प्रशंसा किया करता था जैसे उसके इलाके में किसी नए अफलातून ने जन्म ले लिया हो. लेकिन अफसोस मेरा वही मित्र कपड़े रंगने के एक करखाने में नौकरी करता हुआ टी. बी. का शिकार हो गया था. और जिस प्रकार मैंने उसे सूखकर दम तोड़ते हुए देखा था, ऐसी मौत मैंने फिर कभी नहीं देखी. लंबे बरस बीत गये उसकी मौत को. उस दिन के बाद मैं किसी को उस जैसा लंगोटिया दोस्त नहीं कह सका. ताश खेलने में वह मेरा पार्टनर हुआ करता था. उसकी मौत के बाद आज तक मैंने कभी ताश को हाथ नहीं लगाया. जो ताश हम खेला करते थे, वह ढूंढ़ने से आज भी घर में कहीं मिल जाएगी.

चारपाई से लगने से पहले उसने मुझे एक दिन कहा था, 'बचन नौकरी छोड़ो और पढ़ाई पूरी करो. नहीं तो सारी जिंदगी धक्के खाओगे.' तब मैं एक मिल में बारह आने रोज पर काम करने लगा था. मैंने ऐसा ही किया था, जो उसने कहा था.

ऊपर की घटनाएं शायद दूसरों के लिए कोई महत्व न रखें लेकिन इनका मेरे जीवन और लेखन पर जो असर पड़ा, मेरी लेखनी को जो गति मिली, उसे मैं ही समझ सकता हूं. मेरा विश्वास है जिस लेखक के जीवन में जितनी अधिक, जितनी करुण, मार्मिक घटनाएं घटती रहती है, उतना ही उसका लेखन प्रखरता से गति पाता है.

आज तक मेरी दर्जनों कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं, तीन कहानी संग्रह और दो उपन्यास निकल चुके हैं. एक-दो पुस्तकें इस वर्ष प्रकाशित हो जाएंगी. सोचता हूं यदि आज इस्माईल जिंदा होता तो उसे यह सब देख कर जाने कितनी खुशी होती.

★ ★

यह कहना अन्याय और स्वार्थ में नहीं गिना जाएगा कि जमशेदपुर से उर्दू और हिंदी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाला सबसे पहला कहानीकार मैं ही था. जमशेदपुर के पुराने कथा-लेखकों में श्री राजनाथ राय और कमल जोशी भी हैं लेकिन वे नौकरी के सिलासिले में बाद में बाहर से यहां आए थे.

अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू, जमशेदपुर ने कभी कहा था—यह हमारे लिए फखर की बात है कि गुरुबचन सिंह ने उर्दू दुनिया को यह एहसास कराया कि जमशेदपुर में सिर्फ लोहा ही नहीं बनता , यहां अदब भी पैदा होता है.

मैं जब हिंदी में प्रकाशित होने लगा तब न यहां कोई कालेज था, न प्रोफेसर, न संस्थाएं जो गद्य-लेखन को प्रोत्साहित कर सकें. ले-देकर कुछ स्कूल के टीचर और कवि छोटी-मोटी गोष्ठी और समय-समय पर कुछ पुस्तकालयों की ओर से कवि सम्मेलन अवश्य हो जाते थे. मैं भी कवि-सम्मेलनों में कविता-पाठ किया करता था.

हिंदी में मेरी प्रथम रचना 'नया समाज' में आयी थी. स्वर्गीय मोहन सिंह सेंगर ने बहुत प्रोत्साहित किया था. हिंदी में निरंतर लिखते रहने को कहा था. मैं जैसे संस्कारों में पला था, भाव अभिव्यक्ति के लिए उर्दू और उसे पढ़ने वालों का वातावरण आड़े आता था. ऐसा लगा करता था जो मैं कहना चाहता हूं, नहीं कह पा रहा हूं. कहीं संकोच है, कहीं भाषा की पाबंदी और कहीं तंगनजरी. मैं हिंदी ही में लिखता गया. समय की लगभग सभी पत्रिकाओं में लिखा, जिनमें से कुछ अच्छी पत्रिकाएं बंद हो चुकी हैं. मैं लेखन के क्षेत्र में हमेशा उत्साहित रहा हूं. अब भी हूं. यदि धक्का पहुंचता है तो हिंदी के प्रकाशकों के व्यवहार या उनकी नानुकुर से.

★ ★

कुछ नौकरी करने और मैदान छोड़कर भागने से सिद्ध हो गया था कि मैं प्रैक्टिकल काम के योग्य नहीं. इसे मेरे पिताजी ने भी महसूस किया. तब मुझे दफ्तर की नौकरी करनी पड़ी और आगे की पढ़ाई भी. जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, जमशेदपर में कोई कालेज नहीं था. पैसे वाले या जरूरतमंद अपने बच्चों को दूसरे शहरों में शिक्षा-प्राप्ति के लिए भेजते थे. किसी प्रकार मुझे आई. ए. की परीक्षा के लिए रांची के डिग्री कालेज में बैठना पड़ा था.

जमशेदपुर के शिक्षा के इतिहास में वह एक नया उज्ज्वल मोड़ था जब कुछ साहसियों द्वारा यहां नाईट कालेज की स्थापना हुई. संचालकों के पास न कोई विशेष फंड था, न अपनी बिल्डिंग. मैं भी उस कालेज का छात्र बन गया.

बचपन में मैं एक ऐसे स्कूल में पढ़ने जाया करता था, जहां लड़के-लड़कियां एक साथ पढ़ा करती थीं. जिस कालेज में दाखिला लिया, वहां भी यही हाल था. लड़के-लड़कियां एक साथ कीट्स और बायरन की कविताएं समझने की कोशिश किया करते थे. शेक्सपीयर के विचारों की गहराई तक उतरने का प्रयत्न करतीं. अच्छा-खासा रोमानी माहौल रहता. जाने कैसे मैं शह पा कर एक अमीर घर की लड़की के संपर्क में आ गया था. उसने कुछ दिनों बाद मुझे गलत समझाना शुरू किया तो लगा उसकी बगल में एक चेहरा ऐसा भी है, जो मुझे सही समझता है. उसकी ओर नजर घूमी तो पता चला, वह बड़े-बड़े सपने देखती है, यहां तक कि उसे बंबई जाकर एक्टिंग करने का भी शौक है.

विश्वास करें तो किस पर? समझ में नहीं आता. मुझे इस बात का हमेशा दुख रहा है. गैर तो गैर, अपनों ने भी मुझे गलत समझने की कोशिश की है जब कि मैं अपने प्रति किसी के द्वारा किए गए अन्याय को भी भूल जाता हूं. खैर, मैंने इस घटनाओं से यह सीखा कि इस युग में सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिन्हें न तो गंभीरता से लेना चाहिए, न जिनके प्रति भावुक बनना चाहिए.

★ ★

जो साहित्यिक संस्था कभी यहां सबसे अधिक सक्रिय रहा करती थी, वह थी——अंजुमने तरक्की-पसंद-मुसन्नफीन यानी प्रगतिशील लेखक संघ. इसमें उर्दू लेखकों और कवियों की संख्या अधिक हुआ करती थी और हिंदी के कुछ लेखक और कवि भी शामिल हो जाया करते थे. मैं बरसों इस अंजुमन का ज्वाइंट सेक्रेटरी

रहा. अधिक व्यस्त रहने के कारण सेक्रेटरी की जिम्मेवारी नहीं लेता था. मेरी लेखनी और हरकतों को महज झूठे शक की बिना पर कुछ सरकारी लोग मांपते रहते थे. इसकी प्रतिक्रिया नौकरी के दायरे में होती रही. अब वे बातें पुरानी हो चुकी हैं. पुरानी घटनाओं को याद करता हूं तो हंसी आती है.

बरसों पहले मैं किरानी था और आज भी मेरा वही दर्जा है क्योंकि मैं सीधा-सपाट आदमी हूं. मैंने महसूस किया है, दुनिया में ईमानदारी से चलकर जीना काफी जोखम का काम है. इस जीने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है, सो करता रहता हूं. आखिर चैन कहां है? आराम और निश्चितता कहां है? मेरी रचनाएं मनुष्य की परेशानियों और संघर्ष की रचनाएं हैं, जिनमें प्रायः स्वयं बोलता हूं क्योंकि मैं सामान्य जन से अलग नहीं, उसकी एक इकाई हूं.

पिछले चार-पांच वर्षों के दरम्यान कुछ घटनाएं ऐसी घटीं हैं जिन्होंने मुझे लगभग परास्त कर दिया. लगभग चार वर्ष पहले जैसे मेरे जीवन का एक और अध्याय समाप्त हुआ और दूसरा आरंभ हुआ. इसे मैं नया जीवन नहीं मानता बल्कि एक ऐसा मोड़ कहने को विवश हूं जिस पर मुझे नए ढंग से सोचने-समझने और जीवन पथ पर आगे बढ़ने के लिए मजबूर होना पड़ा है. पहली घटना थी, मां की मृत्यु. शायद कोई बहुत बड़ी घटना नहीं थी. सबकी मांएं होती हैं और एक दिन वे बेटे-बेटियों को छोड़ इस दुनिया से चली जाती हैं. यह तो स्थितियों और समय की बात है कि ऐसी घटना का कौन कितना असर लेता है. मां की मृत्यु के पश्चात जो अभाव मैंने महसूस किया, उसकी पूर्ति के लिए मैं प्रत्येक अधेड़ उम्र या बूढ़ी औरत के चेहरे पर मां का चेहरा तलाश करने लगा. मैंने अक्सर ऐसा महसूस किया है कि सबके साथ मैं एक ऐसे पथ पर हूं, जहां अचानक एक जगह कहीं भी रुक जाना पड़ता है. शायद वही सांसारिक मंजिल है. 'काल याचना' कहानी मासिक में छपी मेरी रचना में इसी मनोव्यथा का चित्रण है.

लेखन एक कठिन काम है. लेखन को कठिन मैं इसलिए कहता हूं कि बहुत सोच-विचार के बाद बहुत गहराई तक जाकर कुछ लाने से ही सफल रचना तैयार होती है. उसमें संचित अनुभवों का पुट देना पड़ता है. जिसने जीवन देखा या उसकी कटुता को भोगा ही नहीं, वह सार्थक रचना कैसे दे सकता है? लिखना उसके लिए फैशन है या ऐय्याशी है.

दस-पंद्रह साल पहले की बात है. एक उपन्यास के संबंध में अपने एक बंधु के साथ, उस समय के कलकत्ता के सबसे अधिक वीभत्स वेश्यालय सोनागाछी में गया था. कुछ गालियां घूमकर जो मैंने देखा, जो कुछ अनुभव किया, प्रतिक्रियास्वरूप शोक और गम में डूबा हुआ-सा उस बाजार से बाहर आ गया था. मैंने महसूस किया था, जो देख रहा हूं, उसका चित्रण संभव ही नहीं. वह उपन्यास कुछ परिच्छेदों के बाद आगे ही नहीं बढ़ पाया था. उसकी अधूरी पांडुलिपि ढूंढ़ने से कहीं मिल जाएगी. धन्य है वह रूसी साहित्यकार एल्कजंडर कुप्रिन जिसने बरसों रंडियो के मुहल्ले में रहने के बाद यामा (अनुवाद : गाड़ीवालों का कटड़ा) जैसा उपन्यास लिखा था.

लेखक जिस दुनिया में रहे, जिसे उसने देखा हो, समझा हो, ईमानदारी से उसका चित्रण अपने लेखन में करे, तो यह अपने आप में साहित्य के प्रति एक बहुत बड़ा न्याय है. यह दूसरी बात है कि उसकी रचनादृष्टि उसे साहित्य में कौन-सा स्थान दिलाती है.

जितने मेरे पिता कंपनी के प्रति वफादार रहे, उतना ही मेरा छोटा भाई कभी बागी माना जाता रहा. यह जमाना था जब वह समाजवादी पार्टी का सक्रिय कार्यकर्ता था. मजदूर आंदोलनों में जेल जाता रहा. बरसों नौकरी से डिसमिस होकर घर बैठा रहा. उसे भी लेखन की ललक थी. पंजाब से प्रभाकर कर आया था. उसने अपने मित्र स्वर्गीय बृजनंदन प्रसाद के सहयोग से 'नई दिशा' पाक्षिक का प्रकाशन आरंम्भ किया था. जमशेदपुर की पत्रिकारिता के इतिहास में इस पत्र को प्रथम साहित्यिक स्थान मिलेगा. अर्थाभाव के कारण 'नई दिशा' बंद हो गयी थी.

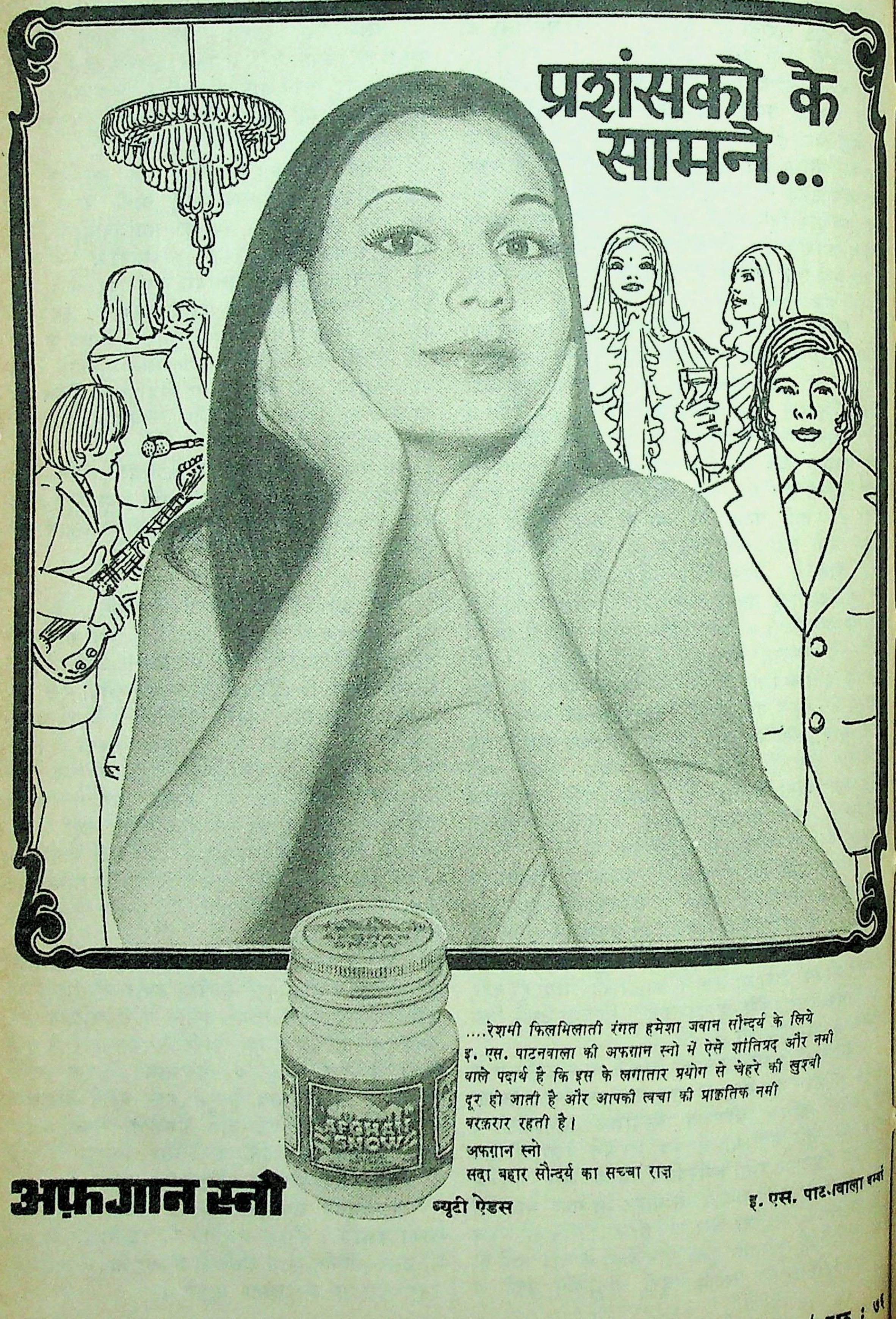
निश्चित है कि ऊपर की घटनाओं का मेरे लेखन पर प्रभाव पड़ता. मेरी कई रचनाएं छद्म नाम से भी कभी पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं हैं. जानने वाले इसे जानते ही हैं.

★ ★

मैंने ऊपर दो घटनाओं की ओर संकेत किया था, जिनके कारण मैं टूट-सा गया. उसी क्रम में दूसरी घटना है, मेरे पिता की मृत्यु. मेरे पिता ने अपने जीवन में जितना संघर्ष किया, हमारे परिवार के लोगों में से और किसी ने नहीं किया. सारे परिवार के लिए उनका जीवन एक आदर्श है. उन्होंने सबको दिया, लेकिन कभी मांगा किसी से कुछ नहीं. जो कष्ट और कठिनाइयां आगे चल कर हमारे सिर पर आतीं, उन्होंने खुद ही एक हद तक झेल लिया. यही उनका हम पर सबसे बड़ा उपकार है. वे हमारी जिंदगी को इतना आसान कर गए कि हमें कभी किसी के सामने हाथ फैलाने की नौबत नहीं आयी. जो उन्होंने दिया, वह फलता-फूलता गया.

बड़ी से बड़ी कठिनाइयों के दिनों में भी जैसा कि मैंने सुना है, उन्होंने किसी से पैसा उधार नहीं लिया था. और जिन्होंने उनसे लिया, उन्होंने कभी लौटाया नहीं. उनके बारे में यह मशहूर था कि वे गली-महल्ले में कभी किसी से नहीं झगड़ते थे. मेरे सामने वे एक आदर्श श्रमिक थे. कितने चाव से मुझे किसी बहाने कारखाने में बुलवा लेते थे. कई बातें समझाते. अपने अधीन काम समझने को कहते. छेनी और हथौड़ा हाथ में में दे कर सीधा हाथ चलाने का ढंग बताते.

वे मामूली खलासी से उठकर फिटर, मिस्त्री और लोको इंचार्ज के ओहदे तक गए थे. पढ़े-लिखे नौजवान जो उनके अंतर्गत काम करते थे, उनका आदर करते थे उनकी सूझ-बूझ का लोहा मानते थे.



प्रशंसको के सामने...
....रेशमी झिलमिलाती रंगत हमेशा जवान सौन्दर्य के लिये इ. एस. पाटनवाला की अफ़ग़ान स्नो में ऐसे शांतिप्रद और नमी वाले पदार्थ है कि इस के लगातार प्रयोग से चेहरे की खुश्की दूर हो जाती है और आपकी त्वचा की प्राकृतिक नमी बरक़रार रहती है।
अफ़ग़ान स्नो
सदा बहार सौन्दर्य का सच्चा राज़
अफ़ग़ान स्नो
ब्यूटी ऐड्स
इ. एस. पाटनवाला बम्बई

उन्हें जिंदगी भर जिस बात का गम रहा, वह था शिक्षा न प्राप्त कर सकने का. प्रायः करुण स्वरों में उनके मुंह से सुना जाता, काश मैं कुछ पढ़ा-लिखा होता. . .

इसमें दोष किसी का नहीं था. परिस्थितियां ही कुछ ऐसी थीं. दूसरे के खेतों में हल चलाना और फिर नौकरी के लिए गांव छोड़ सैकड़ों मील दूर चले आना. बड़ी मार्मिक कहानी है.

वे न तो मुझे किसी कारीगर के रूप में देख सके और न ही इंजीनियर के रूप में. लेकिन जब उन्होंने मेरी कुछ छपी हुई पुस्तकें देखी थीं तो बहुत खुश हुए थे. इधर जब रेडियो से नाटक आदि प्रसारित होता, मैं रेडियो स्टेशन जाता तो बड़े खुश होते.

उनका मंझला लड़का ट्रेड यूनियन के संबंध में जब सारे एशियाई मुल्कों का दौरा करके और फिर स्विट्जरलैंड आदि से भी हो कर घर लौटा और एक दिन उनके चरण छुए तो वे गद्‌गद हो उठे थे. उन्हें अपना सबसे छोटा लड़का याद आ गया था जिसकी बरसों पहले मृत्यु हो चुकी है. उस बूढ़े बाप के संसार से उठ जाने से घर ऐसा सुना हो गया कि वे सारी कहानियां रुक गयीं, जिन्हें वे अपने जीवन पुस्तक से सुनाया करते थे.

* *

उसके बाद मेरी जिंदगी का एक और नया मोड़ आ गया. मैंने अपना आसन उस कमरे में वहां बना लिया, जिस स्थान पर वे सोते या आराम करते थे, लेटे रहते थे. उनके आदेशानुसार वहीं बैठ कर पाठ करता हूं. लेखन-कार्य भी वहीं चलता हूं.

मेरे परिचित लेखकों का दायरा काफी बड़ा है. लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि मैं बहुत कम लेखकों से व्यक्तिगत रूप से मिल से पाया हूं. मैं स्वभाव का संकोची हूं. मां की छत्रछाया में यह कुछ संस्कारों का असर है कि मैं चाय-कॉफी आदि कुछ भी नहीं पीता.

श्रीमती के सहयोग से इधर मेरी कुछ रचनाएं पंजाबी में आयी हैं. आठ-दस रचनाओं ने ही कुछ प्रतिष्ठा बना दी है. विभिन्न भाषाओं के लेखक आज जितने एक दूसरे के निकट हैं, पहले शायद कभी नहीं थे. इसमें 'सारिका' ने सराहनीय दायित्व निभाया है.

इतना कुछ कह कर भी मैं बहुत कुछ नहीं कह पाया हूं क्योंकि सब कुछ एक साथ कहने को नहीं होता. मैंने इस आत्मकथा में गर्दिश के दिन का शब्द-व्यवहार नहीं किया क्योंकि गर्दिश में तो अब भी हूं. जरा रुकूं, सांस लूं, तब न कहूं? क्या पता इसी गर्दिश में कहीं खो जाऊं और लोग मेरे बारे में सोचते ही रह जाएं क्योंकि तृप्ति की कल्पना में जो आनंद है, शायद तृप्ति में नहीं.

□□□

कृतघ्नता का फल

एक नगर में एक ब्राह्मण रहता था जिसे अपनी पत्नी से बेहद प्रेम था. किंतु वह दिन-रात परिवार के अन्य सदस्यों के साथ लड़ा-झगड़ा करती. तंग आकर ब्राह्मण उसे साथ लेकर एक दूर देश के लिए निकल पड़ा.

वे एक वन से होकर गुजर रहे थे कि ब्राह्मण की पत्नी प्यास से बेचैन हो उठी. वह उसके लिए पानी की खोज करके वापस आया तो उसे निष्प्राण पाया. देववाणी हुई—यदि तुम उसे अपनी आधी जिंदगी दे दो तो वह जीवित हो सकती है. ब्राह्मण ने पूजा के साथ ज्यों ही कहा कि मैं अपनी आधी जिंदगी अपनी पत्नी को देता हूं कि वह जीवित हो उठ बैठी. वे एक नगर के द्वार पर एक बगीचे में पहुंचे तब ब्राह्मण ने कहा—मैं भोजन तलाश लाता हूं.

उस बगीचे में एक अपंग व्यक्ति पनचक्की चलाते हुए मधुर कंठ से गा रहा था जिसे सुनकर ब्राह्मण-पत्नी उस पर मुग्ध हो उससे बोली—यदि तुम मेरे नहीं बने तो एक ब्राह्मणी की हत्या के दोषी बनोगे. और उसे मानना पड़ा.

जब ब्राह्मण भोजन लेकर लौटा और दोनों भोजन करने लगे तो वह बोली—तुम्हारे चले जाने पर मैं निर्जन महसूस करती हूं. इस अपंग को एक टोकरी में बैठा कर स्वयं ढो लूंगी.

इस पर ब्राह्मण को राजी होना पड़ा.

एक दिन जब वे एक कुएं के पास आराम कर रहे थे तो ब्राह्मण-पत्नी ने अपने पति को कुएं में ढकेल दिया. फिर टोकरी सिर पर ले वह नगर में पहुंची, एक राज-सैनिक ने उसे चोर समझ कर राज दरबार में पहुंचा दिया.

राजा ने टोकरी खुलवायी तो उसमें एक अपाहिज व्यक्ति को पाकर अचरज में आ गया. तभी ब्राह्मण-पत्नी बोली—महाराज, यह मेरा अपंग पति है. नाते-रिश्तेदारों ने इसे इतना तंग किया कि मैं इसे सिर पर उठा कर आपके पास लायी हूं, न्याय पाने के लिए.

—तुम मेरी बहन हो. मैं तुम्हें दो गांव देता हूं. राजा ने प्रभावित हो कर कहा.

ठीक उसी समय वह ब्राह्मण भी वहां आ पहुंचा. उसे देखते ही ब्राह्मण-पत्नी चीख उठी—राजन्, यही है हमारा शत्रु!

राजा ने उसे तत्काल मृत्युदंड दे दिया. इस पर ब्राह्मण ने कहा—इस स्त्री ने मेरी एक वस्तु ले रखी है. कहिए कि वह वस्तु मुझे लौटा दे.

राजा के डर से ब्राह्मण-पत्नी ने कहा—मैं इसकी वस्तु इसे वापस करती हूं. इतना कहते ही वह गिर कर मर गयी.

□□□

राजनीति और आम आदमी

● विश्वनाथ त्रिपाठ

राजनीति और आम आदमी के आपसी संबंधों को विश्लेषित और रेखांकित करने वाला यह लेख दिसंबर, १९७५ में राजगीर में हुए समांतर लेखक सम्मेलन में पढ़ा गया था.

हमारे बीच ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो राजनीति को सारी बुराइयों की जड़ मानते हैं. लेकिन ये लोग सभी राजनैतिक विषयों पर अपने विचार अवश्य रखते हैं. उन्हें उग्र लहजे में प्रकट भी करते हैं. इनकी विशेषता यह है कि ये राजनीति पर बहस बहुत गर्मागर्म करते हैं, किंतु अपने वैचारिक निष्कर्षों के अनुसार सक्रिय नहीं होते. जो सक्रिय होते हैं, उन्हें ये लोग गाली देते हैं.

ऐसे लोग प्रायःमध्यवर्ग या निम्न मध्यवर्ग के होते हैं. ये लोग प्रायः स्वभावतः रूढ़िवादी संस्कारों के तो होते हैं, लेकिन प्रगति-विरोधी नहीं होते. महंगाई का, अकाल का, व्यवस्था-हीनता आदि का सबसे भयंकर असर इसी वर्ग पर पड़ता है. निम्न वर्ग — यानी आर्थिक दृष्टि से इनसे भी नीचे का वर्ग—तकलीफें इनसे ज्यादा सहता है, लेकिन वह रूढ़िवादी संस्कारों से इतना ग्रस्त नहीं होता.

आज के समय में सबसे गत्वर वर्ग दो हैं, पूंजीपति वर्ग और निम्नतम वर्ग. मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग अपनी परेशानियां अपनी रूढ़िवादिता और संस्कारों के कारण भी बहुत बढ़ा लेते हैं. मेरा अनुमान है कि जिसे 'आम आदमी' कहा जाता है, वह निम्न मध्यवर्ग के ही घेरे में आयेगा. 'आम आदमी' कहने से उच्च वर्ग अथवा निम्नतम वर्ग या सर्वहारा का बोध नहीं होता.

यह 'आम आदमी' एक ओर रूढ़िग्रस्त संस्कारों से मुक्त नहीं होता, दूसरी ओर सभी प्रकार के राजनैतिक आंदोलनों से सबसे ज्यादा प्रभावित होता है. हमारे देश में शीर्षस्थ नेता — खासतौर पर दक्षिणपंथी पार्टियों के—ज्यादातर उच्च वर्ग या उच्च मध्यवर्ग से आये हैं. आम आदमी के समूह ने ज्यादातर अनुगामियों की ही सेना तैयार की है.

'आम आदमी' चाहे सर्वहारा न हो, किंतु उसका भाग्य उसी वर्ग के साथ नत्थी है. यह 'आम आदमी' की बहुत बड़ी विडंबना है कि वह उस वर्ग से अपने को जोड़ नहीं पाता, जिसके साथ कि उसका भाग्य बंधा हुआ है. इसका बहुत बड़ा कारण यह है कि यह वर्ग संगठित नहीं होता. किसान-मजदूर के पास संगठित होने और संघर्ष करने के लिए मूर्त्त मुद्दे होते हैं, मजदूरी, बोनस, लगान, बेगार का खात्मा. लेकिन 'आम आदमी' के पास लड़ने का कोई सूत्र—मूर्त सूत्र—नहीं होता. मजदूर का दुश्मन मिल-मालिक है, खेतिहर का दुश्मन जमींदार है, लेकिन 'आम आदमी' का शोषक सामने नहीं होता. वह यही समझ पाता है कि उसके पास पैसा नहीं है और इसीलिए उसे कदम-कदम पर विवशता और अपमान झेलना पड़ता है. उसके सामने शोषक निश्चित नहीं होता, इसीलिए वह संघर्ष में सर्वहारा की तरह आगे नहीं रहता—इसीलिए वह संगठित नहीं होता. संघर्ष और संगठन के अभाव में ही वह रूढ़िवादिता के जुए को उतार कर फेंक नहीं पाता.

इस कमजोरी का दुष्परिणाम यह होता है कि वह अपना वास्तविक हित-चिंतक भी नहीं पहचान पाता. उसे यही समझ में आता है कि महंगाई दूर होनी चाहिए, उसके बच्चे को शिक्षा मिलनी चाहिए, उसे मकान मिलना चाहिए, भ्रष्टाचार दूर होना चाहिए. लेकिन यह सब कौन करेगा— कौन करना चाहता है? यह सब समाजवाद से होग[ा] या सर्वोदय से? इस बारे में वह निश्चित नहीं है. कहने की जरूर[त] नहीं कि उसके इस अनिश्चय का पूरा फायदा प्रतिक्रियावादी ताक[तें] उठाती हैं. आम आदमी का अनि[श्]चय, उसकी किंकर्तव्य-विमूढ़ता फासिज्म की सबसे बड़ी शक्ति है. यह किंकर्तव्य-विमूढ़ता ही सांस्कृतिक क्षेत्र में मूल्यांधता फैलाती है. इस अनिश्चय, यानी सही दुश्मन और सही दोस्त की पहचान के अभाव में ही दुश्मन के खात्मे का नारा नहीं भ्रष्टाचार के खात्मे का नारा लगता है. विरोध किसी व्यवस्था का नहीं, किन्हीं व्यक्तियों का किया जाता है. यह विवेक हीनता उन लोगों में सबसे ज्यादा दिखलायी पड़ती है, जो राजनीति मात्र को बुराई और भ्रष्टाचार की जड़ मानते हैं. इस विवेक-हीनता का शिकार 'आम आदमी' बहुत आसानी से हो जाता है. विचित्र विडंबना है कि जो समझ राजनीति मात्र का विरोध करती है, वही हत्या को राजनीति का साधन बनायी जाती[...]

इसलिए हमारे बुद्धिजीवि[यों], कलाकारों और सबसे ज्यादा राजनीतिज्ञों को 'आम आदमी' को सचेत करने की बहुत जरूरत है. सर्वहारा फासिस्ट प्रचार का शिकार कभी नहीं बनता. फासि[ज्म] और अंधराष्ट्रवाद का शिकार 'आम आदमी' बन सकता [है].

वस्तुतः 'आम आदमी' को सचेत करने की सबसे बड़ी जिम्मेदारी प्रगतिशील राजनीति[क] पार्टियों की होती है. 'आम आदमी' गलत रास्ते पर त[भी] जाता है, जब देश में साफ और स्पष्ट राजनीति का अभाव होता है, जब प्रगतिशील राजनीति 'पह[ल]' नहीं करती. हमारे देश में 'आम आदमी' को सबसे ज्यादा प्रभावि[त] गांधी के व्यक्तित्व ने किया [...]

इसका सबसे बड़ा कारण था कि गांधी ने देश की आम जनता की आशाओं-आकांक्षाओं को जानने के साथ-साथ उसकी सीमाओं को समझ कर उनका आवाहन किया था. बड़ी बात यह हुई कि गांधी ने देश की जनता के सामने ठीक नारा दिया. बुद्धिजीवियों, खासकर साहित्यकारों के बीच 'नारा' शब्द बहुत बदनाम है. ठीक समय देश को ठीक नारा दे पाना कितना मुश्किल और महान कार्य है, यह वही समझ सकता है, जिसने कभी कोई 'नारा' देने की कोशिश की हो. ये नारे देश के 'आम आदमी' के सामने एक उद्देश्य प्रदान करते हैं, एक स्वप्न का निर्माण करते हैं और उसे सक्रिय होने की प्रेरणा प्रदान करते हैं. कुल मिला कर ऐसे नारे अपने समूचे युग को सार्थकता, मूल्य और नैतिकता देते हैं. इस सार्थकता, नैतिकता और मूल्यवत्ता का सबसे निर्णायक वाहक और प्रचारक देश का 'आम आदमी' होता है. इसलिए इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि किसी राजनैतिक आंदोलन की कसौटी यह है कि वह आम आदमी को कितना विवेकवान बनाती है, और आकृष्ट करती है.

'आम आदमी' उच्च वर्ग की ओर भी देखता है और अपने से निम्न वर्ग की भी ओर. इस तबके के व्यक्ति सीढ़ी पर चढ़ कर ऊपर भी पहुंच जाते हैं और ढुलक कर सर्वहारा भी बन सकते हैं. लेकिन एक बात तय है कि इस तबके की, यानी 'आम आदमी' की, सही दिशा सर्वहारा की ओर है. प्रगतिशील राजनीति की सफलता इस बात पर बहुत निर्भर है कि मध्यवर्ग सचेत हो कर सर्वहारा का कितना साथ देता है. जो लोग राजनीति पर बात करते समय केवल 'सर्वहारा' पर ही ध्यान देते हैं, निम्न मध्यवर्ग या मध्यवर्ग पर विचार नहीं करते, वे संकीर्णतावाद के शिकार होते हैं. सर्वहारा की निर्णायक भूमिका से इनकार का सवाल नहीं है, सवाल सर्वहारा को मजबूत और शक्तिशाली बनाने का है. हमारे देश में ऐसी वामपंथी राजनैतिक पार्टियां भी हैं, जो मध्यवर्ग की क्रांति-सहयोगी भूमिका न समझ पाने के कारण संकीर्णतावाद का शिकार बनती हैं, विचारों में उग्रपंथिता दिखाती हैं और आचरण में फासिस्ट तत्वों का साथ देती हैं. इस दृष्टि से भी 'आम आदमी' के महत्व को समझना बहुत जरूरी है. यह बात भी निर्विवाद है कि निम्न मध्यवर्ग सर्वहारा का सबसे निकट का समूह है. इसीलिए न केवल राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक बल्कि कला के क्षेत्र में भी आम आदमी किसान-मजदूर के साथ बहुत दूर तक दिखलायी पड़ता है. यह अकारण नहीं है कि किसान की जिंदगी पर सबसे ज्यादा लिखने वाले प्रेमचंद के साहित्य में निम्न मध्यवर्ग के चरित्र सबसे ज्यादा दिखलायी पड़ते हैं.

विश्वनाथ त्रिपाठी नये साहित्य के समर्थ और जागरूक समीक्षक हैं. वामपंथी, जनवादी और प्रतिबद्ध चिंतक होने के कारण उनकी संपूर्ण संवेदना सामान्य जन के नजरिये से साहित्य का विश्लेषण करती है.

कहने का मतलब यह कि समाजवाद की दिशा में अग्रसर होने वाले देश को 'आम आदमी' के मोर्चे पर अनिवार्यतः लड़ना पड़ेगा. इस समय हमारे देश की प्रगतिशील लड़ाई का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मोर्चा शायद 'आम आदमी' का मोर्चा है. इस मोर्चे की लड़ाई निर्णायक रूप से जीत लेने पर ही समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की निर्णायक तैयारी संभव है. हम सब जानते हैं कि 'गरीब' की सही और सम्मानजनक संज्ञा गरीब नहीं, 'सर्वहारा' है. लेकिन 'गरीबी हटाओ' नारे को हम सामयिक और ऐतिहासिक आवश्यकता के अनुकूल मानते हैं, क्योंकि गरीब 'सर्वहारा' से अधिक व्यापक शब्द है. इससे हमारी संख्या बढ़ती है, हमारी शक्ति बढ़ती है. जो लोग सर्वहारा के विरोधी हैं, वही गरीब के भी दुश्मन हैं. महंगाई, चोरबाजारी, मिलावट, नौकरशाही, मूल्यांधता, निराशावादिता आदि गरीब, निम्नवर्ग, मध्यवर्ग, खेतिहर मजूर सबके दुश्मन हैं. इस नारे का समर्थन करने और इस लंबे जुलूस में शामिल होने से हम अपने 'समान दुश्मन' को आसानी से पहचान लेते हैं और इस समय अपने दुश्मन को पहचान पाना सबसे जरूरी काम है.

आम आदमी को सचेत करना वामपंथी, जनतांत्रिक और प्रगतिशील राजनीति की जिम्मेदारी है. इस बात से सचेत करने की कि राजनीति और राजनीति में अंतर होता है. सभी तरह की राजनीति बुरी नहीं होती. राजनीति भी अच्छी होती है और बुरी होती है. हमारे देश ने आजादी राजनीति से पायी है, जमींदारी-प्रथा राजनीति ने समाप्त की है, बैंकों का राष्ट्रीयकरण राजनीति ने किया है, बंधुआ मजदूरी राजनीति ने समाप्त की है. भ्रष्टाचार भी अराजनीति नहीं, राजनीति ही समाप्त करेगी. शर्त केवल यह है कि आम आदमी अपना फायदा - नुकसान समझने की दृष्टि प्राप्त कर ले, अपने सही दुश्मन को पहचान ले और सर्वहारा के साथ हो ले. प्रगतिशील राजनीति को इस बात का प्रयास करना पड़ेगा कि इस देश का 'आम आदमी' राजनैतिक आंदोलनों से अलग-अलग न रहे. वह अपने देश की राजनीति में सक्रिय साझेदारी करे. आम आदमी को सही राजनीति की दृष्टि देने और फिर उसे सक्रिय करने का अर्थ होता है प्रतिक्रियावाद की जड़ काटना. आम आदमी सक्रिय होगा तो वह प्रत्येक सुधार के लिए सरकार की ओर नहीं देखेगा. उसमें पहल करने की क्षमता उत्पन्न होगी. तब वह शायद सही और गलत राजनीति में फर्क भी कर सकेगा. □□□

कृतियां

एक उपन्यास

'सोनभद्र की राधा'

लेखक : मधुकर सिंह; प्रकाशक : राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६; पृष्ठ संख्या : ११७, मूल्य : सात रुपये.

'जिस दिन काम करने वाले लोग वस्तुओं के हकदार बनेंगे, उसी दिन ये सारी दीवारें आप ही गिर जायेंगी. अभी तो आदमी को बहुत लड़ना है.'

मधुकर सिंह का उपन्यास सामाजिक बीमारियों को 'एक्सपोज' करता चलता है.यद्यपि उपन्यास का नायक एक 'सुपरमैन' है, वह साधारण रंग-रूप या गुणों वाला युवक नहीं है, फिर भी उपन्यास के मूल संदर्भ में वह सक्रिय-संघर्षी है. गोबिन (नायक) का बाप चमार है और मिसिर बाबा के यहां हल चलाता है. मिसिर बाबा बनगांव के सबसे धनी व्यक्ति हैं, उनके मुकाबले का केवल बलेसर रैदास ही उस गांव में है. बलेसर अपने आपको मिसिर बाबा से बिल्कुल भी कम नहीं समझता. पैसा पास में होने से बलेसर भी अपने आप को चमार की जगह पंडित समझने लगता है और 'चमार बिरादरी से घृणा रखता है'. मिसिर बाबा की लड़की अनुराधा गोबिन से प्यार करती है. उसका भाई महेश प्रगतिशील मस्तिष्क का प्रतीक है. गांव में चेचक फैल जाने से अचानक महेश की मृत्यु हो जाती है और परिस्थितियां एक बार फिर से अनुराधा को अकेले 'लड़ने' के लिए विवश कर देती हैं.

गोबिन गांव में आयी एक रामलीला पार्टी के साथ चला जाता है. रामलीला पार्टी के महंतजी गोबिन की सुंदरता से बहुत प्रभावित हैं और अंततः जमुनापुर के सुदामा तिवारी जी के अनुरोध पर गोबिन को रामलीला में राम का पार्ट दे दिया जाता है. तिवारी जी गोबिन पर लट्टू हैं.

इन्हीं सुदामा तिवारी जी की एक अट्ठारह वर्ष की विधवा बहू है, जो शादी के एक महीने बाद ही विधवा हो गयी थी. तिवारी जी को 'तो चिंता इस बात की करनी है कि बहू की जिंदगी का निर्वाह कैसे हो!' और निर्वाह के लिए 'एक दिन तो उसने अपनी बहू का ही हाथ पकड़ लिया. यह तो कहो कि वह बेचारी रोने लगी और तिवारी की आंख भी अपनी बेटी गौरा से मिल गयी.' इस विधवा बहू की स्थिति गोबिन बताता है : 'एक रोज उनकी बड़ी बहू मुझे ड्योढ़ी के अंदर घेर कर कह रही थी—मैं इस नरक की जिंदगी से ऊब चुकी हूं. मुझे ले कर कहीं भाग चलिए. मेरे पास काफी रुपये हैं, और मेरे सारे गहने भी. हम कहीं भी जिंदगी अच्छी तरह बसर कर सकते हैं.' और यही विधवा बहू कई बार पहले भुनेसर को आंख मार कर अपने पास बुला भी चुकी थी. और अंत में अपनी ननद गौरा और भुनेसर की सहायता से अपने पूर्व-प्रेमी प्राण गुप्त के साथ गांव छोड़ कर चलीजाती है.

उपन्यास का मूल स्वर व्यापक है. आदमी को 'आदमी' कहे जाने की मांग सर्वोपरि है. गोबिन कवि भी है और रामलीला के बाद वह स्टेज पर अपनी कविताएं पढ़ता है : 'जो बाज हमारा चैन छीन कर आकाश में भाग रहे हैं—हम उनका पीछा करें! हमारे पास लड़ाई के लिए क्या है! आओ, सहस्रों-लाखों हाथों को एक में जोड़ दो—' गोबिन रामलीला पार्टी को छोड़ कर एक अलग गांव सिरीपुर में आ कर सक्रिय हो जाता है. गांव के सारे परिवार एक जगह रहने-खाने लगते हैं. वहां कोई जात-पांत या अमीर-गरीब की दीवार नहीं रहती. अनुराधा बाढ़ के दिनों में बाढ़ से संघर्ष करती अपने गोबिन के पास पहुंच जाती है, और गोबिन अपने जैसे 'हजारों' गोबिन तैयार करने में सफल हो जाता है.



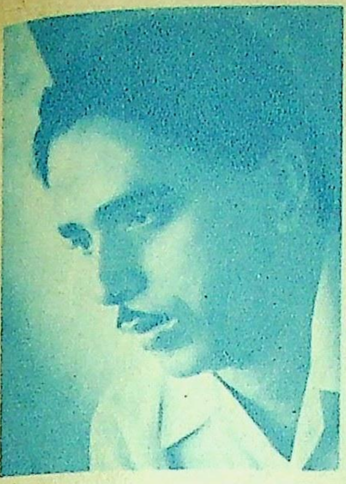
मधुकर सिंह

इस पूरे उपन्यास में एक उत्तेजना-सी व्याप्त है और उपन्यास का अंत इन कविता-पंक्तियों से होता है—'मेरे दोस्तो! यही लोग तुम्हारे हत्यारे हैं, तुम्हें आदमी समझने से इनकार कर रहे हैं. इस असली सूरज की कसम, तुम्हें मरते दम तक इस लाल और इनसान सूरज के लिए संघर्ष करते रहना होगा!'

हालांकि उपन्यास को कहीं-कहीं नाटकीय मोड़ व संयोग भी मिले हैं, तो भी वे अतिरिक्त नहीं महसूस होते. उपन्यास एक नये क्रांतिकारी समाज की वैचारिक-भूमिका तो बांधता है, मगर दिशा धुंधली देता है. उपन्यास की सबसे बड़ी लड़ाई है—'तुम किसी से यह न बताना कि तुम आदमी हो और जिंदा रहना चाहते हो. और न यह बताना कि तुम्हारी जवान बेटियां और जवान बहुएं जालिमों के बिस्तरों पर सोते-सोते लाश रह गयी हैं—रोटी के टुकड़ों के लिए और अब कितने जन्मों तक फैलाते रहोगे हाथ!'

उपन्यास में सामंत वर्ग का पूरी तरह से बहिष्कार किया गया है और उसकी 'जगह समाजवादी मुल्क में जीने का क्या सुख होता है' को उदरस्थ करने की बात पर जोर दिया गया है.

□ राजकुमार गौतम



शैलेश मटियानी

एक कहानी-संग्रह

'महाभोज'

लेखक : शैलेश मटियानी; प्रकाशक : पराग प्रकाशन, दिल्ली-३२; पृष्ठसंख्या : १४१; मूल्य : दस रुपये.

'महाभोज' की कथाओं में यदि कोई अभाव है, तो बस इतना कि लेखक के नाम की चरितार्थता को सिद्धि तक पहुंचाने वाली रचनात्मक विशिष्टता इनमें नहीं है. कथाएं कमजोर नहीं हैं, न कथा-व्यक्तित्व को आघात पहुंचाने वाली अक्षमता ही है. पारखी दृष्टि सर्वत्र व्याप्त है. पर पाठक को घायल मर्मावस्था तक पहुंचाने वाली संपूर्णता नहीं है. कथाएं औसत अनुभवों की तहों को टटोलती हैं; पात्रों की आंतरिकता में गहरे झांकने का प्रयत्न भी करती हैं. कमी है तो उस मार्मिकता की, जो पाठक को चरम की उपलब्धि तक पहुंचा सके. हो सकता है कि इस निर्णय की पृष्ठभूमि में लेखक से जुड़ी हमारी अपेक्षाएं एवं आकांक्षाएं अधिक उत्तरदायी और दोषी हों! लेकिन आकांक्षाओं का भी एक सत्य होता है, जो सार्थक चरितार्थता की खोज करता है. मटियानी मात्र एक शब्द नहीं है, बल्कि इतिहास के पन्नों पर राह बनाता एक सत्य है. नाम की

विचार

● प्रामाणिकता रचना के मर्मांतक एहसास से उभरती है. **'महाभोज'** के कथा-सूत्रों में इतिहास-बोध जाग्रत करने वाला वह मर्मांतक एहसास नहीं है.

शैलेश ने शिल्प के स्तर पर कोई अन्वेषणात्मक अध्याय नहीं जोड़ा है. कथानक और पात्र जिंदगी की धड़कनों से जन्मे हैं; आम आदमी की संवेदनाओं से जुड़े हैं. इनमें मानव-स्वभाव की अनोखी रागात्मकता भी है, पर राग-संवेदना को योगदान में रूपांतरित करने वाली कलात्मक विशिष्टता नहीं है. इन कथाओं के पात्र और कथ्य जिंदगी के विभीषक रागों-अनुरागों से भरे-पूरे हैं; त्रासदायक मनःस्थितियों को भोगते हुए संवेदनशील जन-मन हैं; विचित्र प्रवृत्तियों में रचे-बसे कथा-पुरुष हैं, पर अनुभव को इतिहास की अनिवार्यता की हदों में पहुंचाने वाला शिल्पी अनुपस्थित है. आम आदमी की, रवानगी में बहती भाषा है, जिसमें कलाकार की नयी बिंबात्मकता है, पर क्या मात्र इतनी सक्षमता शैलेश के प्रति जाग्रत हमारी आकांक्षाओं को तृप्त कर सकती है? इसीलिए इन कथाओं के प्रति हमारी प्रतिक्रिया हमारी अपनी अपेक्षाओं से जन्मती है, शैलेश की कथाओं से नहीं.

यों इन कथाओं में क्या नहीं है, जो हमें असंतोष की मुद्रा सौंपे? मैमूद बकरे को संतान की तरह पोषती जद्दन की आत्मीयता है, जो मेहमानों के लिए कटे मैमूद की मौत में स्वयं को कटा हुआ पाती है (**'मैमूद'**.) अपने भविष्य को खोजता अपराधी राधे काछी है, तथा जिंदगी की पूर्णता को टटोलती शांति अहीरन है (**'भविष्य'**.) छिद्दा पहलवान के अन्याय से जूझने की असमर्थता में घुटता, विघटित होता रामभरोसे है (**'छिद्दा पहलवान वाली गली'**.) अपने बच्चों की परवरिश के लिए अपंग लालमन के मलमूत्र को धोती गनेशी है, जो जिंदगी की भयानकता को समझ कर पूरी वयस्क हो गयी है (**'मिट्टी'**.) अपनी शिकार बुढ़िया महिला के दर्द में छटपटाता उठाईगीर गफूर मियां का मन है (**उठाईगीर.**) उत्सव में विधवा मन का परित्राण खोजती अभागिन गीता है, जो उत्सव के बाद फिर अभागिन हो जाती है (**'उत्सव के बाद'**.) अपने बेटे के हत्यारे सत्यप्रकाश को फांसी के तख्ते तक पहुंचा कर अपना बयान बदलती गिरिजादेवी हैं, जो सत्यप्रकाश की मां की मृत्यु की करुणा से मातृत्व की भीतरी तहों में आहत हो जाती हैं (**'पत्थरों के बीच से लौटते हुए'**.) एक रामखिलावन नामधारी बोझ-स्वरूप बालक है, जो अपनी अभागिन मां की पीड़ाओं से भावात्मक रूप से जुड़ा है, पर उसके पास न अपनी भूख का विकल्प है, न मां की मौत का (**'चील'**.) आखिरी बकरी को हलाल करते-करते खुदा के हाथों हलाल हो गये खत्तन मियां हैं, जो सलमा बीबी की याद को मन के अंधेरे में मोमबत्ती की तरह जलाये थे (**'हलाल'**.) आदर्शों में अस्तित्व की सार्थकता खोजती अनुत्तरदायी चौतीराम की आदर्श-अनुराग से भरी पत्नी शिवरती है, जिसकी आत्मा पर आदर्श पवित्रता की बलिवेदी की तरह चिपका है (**'महाभोज'**.)

फिर क्या नहीं है इन कथाओं में? भाषा नहीं है कि प्रामाणिक चित्रांकन नहीं है कि चील जैसा प्रतीक नहीं है कि कायरता का विस्फोटक अहं यानी छिद्दा पहलवान का आतंक नहीं है? **'महाभोज'** की कथाओं में शैलेश के नाम को बचाये रखने वाली सारी बारीकियां मौजूद हैं, पर शैलेश के नाम को आगे बढ़ाने वाली मर्मांतक कथात्मा नहीं है, जो अनुभूति का नया अध्याय खोल सके.

□ **रामदेव आचार्य**

समांतर कहानी पर एक चर्चा-गोष्ठी

दिल्ली के 'लेखिका संघ' की ओर से पिछले दिनों 'कांस्टीट्यूशन क्लब,' नयी दिल्ली में समांतर कहानी पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया. इस गोष्ठी की अध्यक्षता कथाकार श्री कमलेश्वर ने की और प्रख्यात कथाकार श्री जैनेंद्रकुमार, श्री उपेंद्रनाथ अश्क और श्री राजेंद्र यादव ने भी गोष्ठी में भाग लिया. गोष्ठी में श्रीमती सुमन मेहरोत्रा और श्री हिमांशु जोशी ने अपने निबंध पढ़े.

हिमांशु जोशी ने अपने लेख में कहा कि **'कफन'** और **'पूस की रात'** के बाद, यानी स्वतंत्रता के बाद, आयातित संस्कृति का दौर शुरू हुआ. पश्चिम का दर्शन अपना रंग दिखलाने लगा, जिसने अपने ही देश में लेखक को अजनबी बना दिया. इस दौर की कहानियों पर विचार करते हुए हिमांशु ने आगे कहा कि **'खोयी हुई दिशाएं'** ने इस दृष्टि से (समांतर सोच की दृष्टि से) नयी दिशा की ओर संकेत किया. मानव-यंत्रणा तथा बाह्य शक्तियों के उस पर दबाव के कुछ और पक्ष उजागर हुए. 'नयी कहानियों के दौर में जहां व्यक्तिगत सामाजिकता का स्वर अधिक उभर कर आया, वहां समांतर कहानी समग्र समाज की समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक रही. इसके साथ ही व्यक्ति तथा समाज के प्रति प्रतिबद्धता का महत्वपूर्ण स्वर भी उभरा.'

हिमांशु का आधारभूत तात्पर्य यह था कि 'प्रश्न नये पुराने का नहीं, एक सही-साफ दृष्टिकोण का है. हर आदमी के लिए जीना ही नहीं, सही रूप से जीना भी जरूरी है. जो हम हैं, वह आज का यथार्थ है, जो हमें होना है, वह कल का—वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं. आज का लेखक एक की निर्मम अभिव्यक्ति करते हुए दूसरे के लिए संघर्षशील है.'

श्रीमती सुमन मेहरोत्रा ने अपने लेख 'समांतर कथा साहित्य में आम आदमी की तस्वीर' में कहा कि आज के कथा-साहित्य के अनुभव बोध, संवेदना के आग्रह, आधुनिक जीवन-दृष्टि की प्रक्रिया, समांतर विकास तथा उसके स्तरीय संदर्भों की रचना आदि ने उसे शिव और सुंदर पर नहीं, प्रमुखतः सत्य पर केंद्रित किया है... आज का आम आदमी दोहरा जीवन जीने की त्रासदी से गुजर रहा रहा है. उन्होंने आम आदमी और समांतर लेखन पर विस्तार से विचार करते हुए कहा : 'आज का समांतर लेखन कई व्यक्तिगत प्रश्नों को समयगत धारणाओं की तुला पर तोलता है और इसी में अपनी आंतरिक शक्ति का उद्बोधन करता है. . .आम आदमी की केंद्रीय स्थिति यह है कि वह 'बाहरी' शक्तियों के समक्ष असमर्थ, जिंदगी की विसंगतियों को भोगता हुआ, बहुस्तरीय संत्रास का अनुभव करता है, फिर भी जीना चाहता है.'

इन दोनों लेखों के बाद चर्चा प्रवर्तन करते हुए कथाकार कामतानाथ ने कहानी के ऐतिहासिक विकास की पृष्ठभूमि में समांतर कहानी की अनिवार्यता पर विचार किया. कामतानाथ ने समय के सत्य को परिभाषित करते हुए कहा कि जनसंघर्ष ही समयगत सत्य का वास्तविक रूप है. उन्होंने प्रगतिशील आंदोलन की चर्चा की और कहा कि उसकी सबसे बड़ी विशेषता जन जीवन से जुड़ा होना थी. उस समय की सामाजिक विसंगतियों और संस्कारगत रूढ़ आदर्शों पर उस दौर की सशक्त कहानियों में तीखा प्रहार मिलता है—लेकिन उनकी दुर्बलता यह थी कि वे जीवन की सत्यता और यथार्थ पर कम आधारित थीं, उनमें फार्मूलाबद्धता और विचारात्मक इकाइयां अधिक थीं. कामतानाथ ने नयी कहानी की 'प्रामाणिकता की खोज,' उसके संपूर्ण स्वीकार को किन्हीं अंशों में मानते हुए यह भी स्वीकार किया कि 'नयी' कहानी ने व्यक्ति को उसके परिवेश से जोड़ा, लेकिन इसमें भी सबसे बड़ी दुर्बलता यह रही कि लेखक की अपनी प्रतिबद्धता गायब रही.

कामतानाथ ने कहा कि समांतर कहानी साधारण जन की जिंदगी, व्यवस्था के विरुद्ध उसके संघर्ष और जिंदगी को बेहतर बनाने की आकांक्षाओं को आत्मसात करती है. आम आदमी संघर्षरत है, अपने संपूर्ण अस्तित्व के संकट के दौर से गुजर रहा है—समांतर

समांतर साहित्य पर बहस : (बायें से) सर्वश्री उपेंद्रनाथ अश्क, जैनेंद्र कुमार, कमलेश्वर और भीष्म साहनी



कहानी उसके इसी संकट की कहानी है, जिसमें पूर्ववर्ती संबंधहीनता, मूल्यहीनता और अनास्थावादी धारणाओं का भी निषेध है.

प्रख्यात कथाकार भीष्म साहनी ने समांतर कहानी में आम आदमी की तस्वीर पर विचार करते हुए कहा कि आम आदमी संकटपूर्ण स्थितियों में जी रहा है, उसके सामने कई समस्याएं हैं, लेकिन वह उतना असहाय नहीं है. उसमें अपने स्वत्व के प्रति संघर्षशील होने की क्षमता है.

डॉ. विनय ने कहा कि प्रत्येक युग के साहित्य का एक केंद्रीय चरित्र होता है, जो युगीन परिस्थितियों के आग्रह से एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में रचनाशीलता को प्रेरित करता है. लेखक उसी को चित्रित करता है. समांतर कहानी की केंद्रीय धुरी सामान्य जन है. कथा की प्रस्तुत संवेदना युग के आग्रह का ही परिणाम है. समांतर कहानी न केवल आम आदमी की असहायता और विवशता का चित्रण करती है, वह उसकी जुझारू, संघर्षशील प्रकृति को भी उजागर करती है, जिसके तहत वह अपने जीने की खोयी हुई शर्तों को पाने की कोशिश करता है.

इसके बाद श्री जैनेंद्रकुमार ने आम आदमी पर बात करते हुए आम और खास की दार्शनिक व्याख्या की और कहा कि आम आदमी पर विचार करते समय कहीं हम आदमी के किसी एक रूप की उपेक्षा तो नहीं कर रहे? क्या वह लालकिले के दीवाने-आम, दीवाने-खास की तरह ही पृथक तो नहीं? उनका विचार था कि सिर्फ आदमी की बात की जाये, जिससे मानवता का व्यापक भाव आ सके. बाद में न बोलना चाहते हुए भी अश्क जी ने कहा कि वह तो पिछले तीस साल से आम आदमी की ही बात कर रहे हैं, लिख रहे हैं, तब किसी ने उसे नहीं माना. . . . व्यंग्य की चुटकी लेते हुए उन्होंने कहा कि कहानी चाहे सामान्य व्यक्ति की हो या विशेष की, कहानी होनी चाहिए. अश्क जी के विचार में विशेष व्यक्ति की मानसिक यातना भी अच्छी कहानी का विषय हो सकती है. जैनेंद्र जी के दार्शनिक कथन पर आपत्ति करते हुए डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने कहा कि विशेष और सामान्य को जोड़ कर मानवतावाद की बात करना वास्तविक स्थिति को नकारना और सही दिशा को अवरुद्ध करना होगा.

अब गोष्ठी के अध्यक्ष श्री कमलेश्वर ने बोलना शुरू किया और समांतर कहानी पर अनेक आरोपों का सीधा जिक्र न करते हुए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कहानी की यात्रा बताते हुए समांतर कहानी की समय-सापेक्षता की अवधारणा पर प्रकाश डाला. उन्होंने समांतर कहानी के वैचारिक पक्ष को प्रस्तुत करते हुए कहा कि शाश्वत और समय-निरपेक्ष साहित्य का सृजन काफी समय से होता आ रहा है, जो अंततः आत्मविस्मृति से भरा है और सामान्य व्यक्ति के दुख-दर्द की उपेक्षा करता रहा है. अब समय इस बात का है कि वास्तविक स्थितियों को पहचान कर आम आदमी के संघर्ष में लेखक भागीदार बने. स्थितियां जिस तरह से बदलती हैं, उनकी सही जांच-पड़ताल जरूरी है, जिससे साहित्य को सही दिशा मिले. अपने मत की पुष्टि के लिए कमलेश्वर ने कई लघुकथाएं उदाहरणार्थ सुनायीं और इस बात पर बल दिया कि आम आदमी से संबद्ध साहित्य के प्रश्न को ले कर प्रतिबद्धता के साथ संबद्धता को भी जरूरी मानना चाहिए. हमें जो कुछ भी अभिव्यक्त करना है, वह मनुष्य-सापेक्ष होने के साथ समय-सापेक्ष हो. 'केवल व्यक्ति की असहायता को वाणी देना समांतर साहित्य का दायित्व नहीं, उसका दायित्व उस व्यवस्था पर चोट करना है, जिसके तहत व्यक्ति कमतर जिंदगी जीने पर विवश होता है.'

□ **प्रमिला विनय**



अखिलन

ज्ञानपीठ पुरस्कार-'७५

ग्यारहवां ज्ञानपीठ पुरस्कार-१९७५, तमिल के विख्यात कथाकार श्री अखिलन को उनके उपन्यास 'चित्तिरप्पावै' के लिए दिया गया है. पुरस्कार-समर्पण समारोह संभवतः दिसंबर के पूर्वार्द्ध में होगा, जिसमें श्री अखिलन को पुरस्कार की राशि एक लाख रुपया, प्रतीक वाग्देवी की कांस्य प्रतिमा और प्रशस्तिपत्र भेंट किया जायेगा.

अखिलन का जन्म १९२२ में तिरुचिरापल्ली के एक छोटे-से कस्बे पेरुगलूर में हुआ. छोटी उम्र में ही अखिलन अपनी स्कूली पढ़ाई छोड़ कर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े. इन्होंने १९४२ में 'भारत छोड़ो' आंदोलन में युवकों को संगठित किया और जेल गये. १९४५ से १९५७ तक इन्होंने रेल डाक सेवा में कार्य किया. आजकल आकाशवाणी के मद्रास केंद्र पर प्रोड्यूसर हैं.

अखिलन ने लगभग ४० पुस्तकों की रचना की है, जिनमें उपन्यास, कथा-संग्रह, नाटक, निबंध और बाल-कथाएं शामिल हैं. इन्हें तमिल अकादमी, साहित्य अकादमी तथा अन्य राज्य पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है. □

धारावाहिक उपन्यास (छठी किस्त)

लाल पसीना

• अभिमन्यु अनत

अब तक आपने पढ़ा है :

सदियों पूर्व विस्तृत महासागर के बीच ज्वालामुखी के विस्फोट से मॉरिशस द्वीप का जन्म हुआ. सदियों तक यह द्वीप वीरान पड़ा रहा. फिर विभिन्न देशों ने इसे भारत तक पहुंचने का रास्ता बनाया. भारतीय मजदूरों के दल वहां पहुंचाये जाने लगे— इस आश्वासन पर कि अंग्रेज लोग मॉरिशस को फ्रांसीसियों से मुक्ति दिला कर भारतीयों को सौंप देंगे और मॉरिशस की धरती का सारा सोना उन्हें मिलेगा. इन मजदूरों में कुंदन भी था, जिसे स्वर्ण के बदले मिली उम्र-कैद. पर वहां वह अकेला नहीं था. अनेक भारतीय वहां थे— निर्दोष, भोले-भाले भारतीय लोग, जो अकसर बिना बात जेल भेज दिये जाते थे. . . अब कुंदन को जेल से निकलने का रास्ता मिल गया था. . . . वह जेल से भाग निकला और एक गांव में जा पहुंचा. गोरे मालिक लोग भारतीय मजदूरों पर तरह-तरह के जुल्म ढाते थे. कुंदन ने अपना नाम बदल कर देवननन् कर लिया और मजदूर बन कर रहने लगा...इन मजदूरों में गांव के मुखिया रघुसिंह का लड़का किसन भी था. किसन अपनी जाति के लोगों की बेबसी देख कर परेशान रहता था. पुष्पा से उसका स्नेह था. कुंदन ने पुष्पा को एक भेंट दी. . . . एक पीली धोती. . . अब आगे पढ़िए—

पुष्पा के हाथ से पीली धोती ले कर फूलवंती ने उसे गौर से देखा. दूसरे ही क्षण उसकी आंखों के सामने एक के ऊपर एक कई चित्र झिलमिला उठे. उन पिछले सैकड़ों सपनों की तरह इसे भी उसने सपना ही समझा. लेकिन सपने दूसरे क्षण मिट जाते थे. यह तो आंखें मूंदते खोलते ज्यों का त्यों बना रहा. धोती को हाथ में लिये फूलो बाहर से आते हुए बिरहे को सुनती रही. वह बिरहा सपना नहीं था— और अगर वह बिरहा सपना नहीं था, तो वह धोती सपने की नहीं हो सकती थी. वह उसे उलट-पलट कर देखती रही. वर्षों पहले की कई यादें एक साथ आयीं.

. . नदी किनारे धोती धोते समय उसके निचले छोर में केले के दाग का लग जाना. . . . एकदम ऊपर के माग में अपने पति की रक्षा के लिए फूलो ने केले के दूध से जो मंगलचिह्न बना दिया था— वह भी ज्यों का त्यों था.

यह वही धोती थी.

इस बात का पूरा विश्वास हो जाने पर फूलो बारी-बारी से पुष्पा और धोती को देखती रही. काफी चेष्टा के उपरांत भी उसके मुंह से शब्द नहीं निकला. उस कम समय में अपनी मां के चेहरे की उन विचित्र प्रतिक्रियाओं से पुष्पा हैरान थी. वह भी निःशब्द उसे घूरती रही. उसने अपनी मां की आंखों को सजल हो जाते देखा और अंत में उसके मुंह से निकल ही पड़ा —क्या बात है, मां?

फूलवंती कुछ नहीं बोली. उसने जल्दी से अपनी आंखें पोंछ लीं. फिर भी भीतर से डबडबायी आंखों के कारण उसके सामने की चीजें धूमिल रहीं. पुष्पा का चेहरा भी धुंध में डूबा रहा.

फूलवंती की ओर एकटक देखते हुए पुष्पा ने दोबारा प्रश्न किया.

उसकी मां फिर भी चुप रही. उसकी वह ऊपर की चुप्पी भीतर की खलबली को स्पष्ट कर रही थी. भीतर की उथल-पुथल के कारण को जानने के लिए अधीर पुष्पा एकदम छोटी बच्ची की तरह मां से लिपट गयी. ऐसा करके मौन रूप से उसने अपने प्रश्न को फिर से दोहराया. उत्तर में फूलवंती का हाथ उसके बालों को सहलाता रहा. दिन में पुष्पा की एक छोटी-सी भूल पर वही हाथ थप्पड़ के रूप में उसके गाल पर पड़ा था.

कई बार ऐसा हुआ था.

कई बार अपनी मां के थप्पड़ खाने के कुछ ही देर बाद पुष्पा को उसका स्नेह मिल जाता, पर आज का स्नेह भिन्न था.

सूर्य की किरणों के साथ बाहर के बकाइन के पत्तों की जो छाया भीतर आ गयी थी, उसी कंपन के साथ पुष्पा के खयाल भी भीतर ही भीतर कंपित रहे. जब एकाएक किसी बदली के कारण पत्तों की छाया सूर्य-किरणों के साथ ओझल हो गयी, तो उसकी जगह पुष्पा ने अपने भीतर के खयालों को आंखमिचौनी खेलते पाया.

. . . मां को बीते दिन याद आ गये होंगे. . . पर यह धोती?. . . शायद पिताजी इसी रंग की धोती पहनते होंगे . . .

और भी कई तरह के खयाल धूप में पत्तों की परछाईं की तरह झिलमिलाते रहे. जिस तरह धूप के बीच से पत्तों की परछाईं को पकड़ना असंभव था, ठीक उसी तरह अपने संभावित खयालों में से एक को सही मान लेना उसके लिए कठिन रहा. उसकी मां कई बार रोयी थी. कई बार उसकी आंखों से आंसू बहे थे. कई बार पुष्पा को अपने से सटा कर उसने परिस्थिति की पीड़ा को सहा था. लेकिन हर बार की विकलता के कारण स्पष्ट होते थे. वजह जानने में पुष्पा को इतनी देर कभी नहीं हुई थी. स्वयं विकल हो कर उसने धीरे से भिन्न स्वर से पूछा—क्या बात है, मां?

फूलवंती की खामोशी टूट कर रही.— है धोती तोके के देलक, बेटी?

—देवननन् चाचा ने.

दूसरे ही क्षण पुष्पा के साथ फूलो कुंदन के घर के भीतर थी.

—मैया, ई केकर धोती है?

—मेरी है, क्यों?

—नाहीं— ई आपकी नाहीं.

—कैसे कह सकती हो?

—सच-सच बता मैया, ई केकर ह?

—सच, सच यह है कि. . . . कुंदन के चुप होते ही पुष्पा ने कहा— चुप क्यों हो गये, चाचा?

—मेरे एक मित्र की है.

फूलवंती ने तुरंत कहा—नाहीं देवननन् मैया, ई धोती मेरे पति के राहल.

—तुम्हारे पति की?

—हां, मैया.

—तुम भूल रही हो. धोती की तरह धोती हुआ करती है.

—मैया, आप कैद से आईल हैं न?

—नहीं तो.

—है धोती त हम लाख धोती में पहचान लेवब.

—क्या था तुम्हारे पति का नाम?

—बता दे, पुष्पा.

—मेरे पिता का नाम मंगरू है, चाचा.

कुंदन को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ. बाहर बच्चों का शोर पराकाष्ठा पर था.

★ ★

एक सप्ताह पहले बस्ती के बच्चों को चोर-सिपाही का खेल खेलते पा कर कुंदन ने सभी को अपने इर्द-गिर्द बुला लिया था. बच्चों के सामने ही उसने अमरूद की लकड़ी काट कर गुल्ली-डंडा बनाया था और अपने बचपन के दिनों को याद करते हुए बच्चों को वह खेल खिलाया था. चोर-सिपाही का खेल खेलते हुए बच्चों को उसने इसलिए गुल्ली-डंडे की ओर आकर्षित किया था, क्योंकि जिस ढंग से वे बच्चे चोर-सिपाही का खेल खेल रहे थे, वह कुंदन को अच्छा नहीं लगता था. नये खेल से बच्चे खुश थे. उनकी उमंग कोलाहल का रूप ले लेती थी.



शाम के उस धूमिल वातावरण में भी घरों की दोनों कतारों के बीच के खुले भाग में बच्चे खेल में लगे थे. किसन काम से अभी-अभी लौटा था. हाथ-पांव धोने के लिए घड़े में पानी नहीं था. कुएं सूखे पड़े थे. किसन चौखट के पास बैठे बच्चों का खेल देख रहा था. काम से लौटते हुए रास्ते में उसने ईख की जो पिछली गुल्ली चूसी थी, उससे उसके हाथ-मुंह लसलस हो गये थे.

किसन का जी बच्चों के साथ मिल जाने को करता. वे सभी खेल में इस तरह खोये हुए थे कि आस-पास की बाकी चीजों का उन्हें तनिक भी भान नहीं था. किसन ने बार-बार चाहा था कि वह भी कुछ घड़ियों के लिए अपने को सामने की स्थिति-परिस्थिति से काट ले. असंभव था ऐसा करना. एक बार उसने गोपाल के बाप से पूछा था कि उसके गांजा पीने का क्या कारण था. इस पर गोपाल के बाप ने गांजे के धूएं से ललछौंह मूछों पर ताव देते हुए कहा था— अपन को इ सब झंझट से अलग करेके और कोई उपाय भी तो नाहीं.

अपने को झंझटों से अलग करने के लिए एक बार किसन ने भी चुपके से उस पौधे का एक कश ले ही लिया था, जिसे गोपाल का बाप चोरी-चुपके पिछवाड़े के जंगल से ले आता था. सुना गया था कि इस पौधे को रोपने वाला वही पहला आदमी था. उस कश से किसन का सर चकरा कर रह गया था. उसे झंझट से राहत नहीं मिली थी.

इस समय बच्चों को निश्चितता के साथ खेल में जुटे पा कर उसका मन ललच-ललच कर रह जाता था. दिन भर की अपनी सारी थकान को भूल कर वह भी बच्चों के साथ बच्चा बन जाने की सोच रहा था.

घर के भीतर से आती हुई चक्की की घरघराहट उसके भीतर के खयालों को और भी बोझिल किये जा रही थी. चावल के पकाने योग्य न होने के कारण चक्की में मकई पीसी जा रही थी. मां का गुनगुनाना, जो उसे हमेशा बहुत अच्छा लगता था, इस समय उसके कानों को खल रहा था. जांते की वह घरघराहट उसके कानों में बजती हुई, उसे कीड़े भरे चावल की याद दिला रही थी. कानों के रास्ते से चुभती हुई मस्तिष्क तक पहुंच कर वह आवाज उसे झनझनाती रही.

अंधेरा एकाएक घिर आया था. इसका खयाल किये बिना किसन हाथ-पांव धोने के लिए नदी की ओर चल पड़ा. अपने आप में यह सोचते हुए कि जब कारखाने में पानी ही की जरूरत थी, तो वह नदी से भी लिया जा सकता था. गांव का सारा पानी क्यों बटोर लिया गया था? छोटी-छोटी बातों पर मजदूरों को बड़ी-बड़ी


सुलक्षणा पंडित
प्रस्तुत करती है
फिनिलिन
दिनभर की ताजगी के लिए
अतिसुंदर पॉलिएस्टर
साड़ियों का नया संग्रह
PHOENIX
भारत के सर्वोत्तम परिधान !

यातनाएं देने के लिए? निर्ममता की हद उसके खयालों को और भी अस्त-व्यस्त कर जाती.

वह रास्ते से लौट कर कुंदन के घर आ गया. कुंदन पहले ही नदी पर पहुंच गया था. पुष्पा घर के भीतर चिराग जला कर बाहर आ रही थी. किसन को देख कर ठिठक गयी. उसके मुंह से निकला—देवननन् चाचा नदी की ओर गये हैं.

—मैंने कुछ और ही सोचा था.

—क्या सोचा था?

—मैं जाती हूं.

—पूरी बात तो सुन जाओ.

—तुम्हीं बोलो, तुम्हीं सुनो.

—अच्छा तो फिर नहीं बोलता. अब तो ठहरो.

—मैं नहीं ठहरती.

नीचे बिछी हुई वाक्वा की चटाई पर बैठते हुए किसन ने पूछा—क्यों नहीं ठहरतीं?

—तुम अब पहले जैसे नहीं रहे.

—तुम चाहती हो कि मैं पहले ही जैसा रहूं—उसी घुटनों तक की कमीज में बहती हुई नाक के साथ. . .

—तुम मेरा मतलब अच्छी तरह समझते हो.

—समझता हूं, तभी तो कह रहा हूं कि. . . .

—पहले तुम इस तरह रूखेपन से बातें नहीं करते थे. हर समय मेरे पीछे-पीछे रहते थे. कहानियां सुनाते थे. मेरे लिए गीत गाते थे.

—तुम उस समय की बात कर रही हो, पुष्पा, जब मैं गुलाम की उम्र का नहीं था.

कुछ क्षण के लिए दोनों चुप हो गये.

घर के बीच की दीवार के पीछे से सहमे हुए स्वर में हनुमान चालीसा सुनायी पड़ता रहा.

लोटे को राख से मांज चुकने के बाद उसे अपनी ओढ़नी के छोर से पोंछती हुई फूलवंती उसके चमकीले भाग में अपलक आंखें गड़ाये रही. धीरे-धीरे सामने के माहौल से कटती हुई वह पीछे को लौटती गयी. . . .

वह भारत छोड़ कर सात समुद्र पार आना चाहती थी. उसने तो अपनी मां से कहा था कि वह वहीं रह कर सभी कुछ झेल सकती है. उसकी मां, जो पति की मृत्यु के बाद से अपनी कमर को सीधा नहीं कर पायी थी, फूलो से लिपट गयी थी. उसे अपने जीवन की कोई आशा नहीं थी. महामारी में सभी कुछ तहस-नहस हो गया था. उस लंबी सूखारी ने उसे भी भीतर-बाहर से सुखा दिया था. बिहार की भूमि बंजर-सी पड़ी हुई थी. आरा के इस छोर से उस छोर तक हाहाकार था. फूलो का गांव बेबसी की सांसें लेता-सा लग रहा था. खेतों में अस्त-व्यस्तता थी. न काम था, न रोटी थी. फूलो की मां अपने दो बच्चों को भूख से मरते देख चुकी थी. उसका बड़ा लड़का माधो मारीच देश को चला गया था. धीरे-धीरे गांव खाली होने लगा था. झोपड़ियों की छतों पर कौवों की संख्या बढ़ती गयी थी. तालाब, नदी, नाले, सभी सूखे पड़े थे. जहां-तहां बची हुई फीकी हरियाली के ऊपर पीलापन गहरा होता जा रहा था.

तीन दिन की भूखी-प्यासी फूलो के माथे पर हाथ फेरते हुए उसकी मां ने उससे यही तो कहा था कि बस्ती उजड़ी जा रही थी. सगे-संबंधी, सभी, रोटी की तलाश में इधर-उधर जा चुके थे. गांव में कोई नहीं बचा था, जिससे जान-पहचान हो. फूलो की मां को अपनी अंतिम घड़ी पास आती-सी प्रतीत हुई थी. वह चाहती थी कि कोई काफिला बनारस की ओर जाता मिल जाये, तो वह उसमें से किसी एक व्यक्ति के जिम्मे फूलो को सौंप सकती थी. अपनी मृत्यु पर अधिकार जमाये वह प्रतीक्षा करती रही.

उस दिन पंद्रह-बीस व्यक्तियों के साथ धनवा सरदार गांव से गुजरा था. फूलो की मां से भी उसने वही कहा था, जो गांव-गांव कहता आ रहा था. उसकी बातों पर फूलो की मां कैसे विश्वास नहीं करती, जब कि उसके माथे का टीका उतने गहरे रंग का था! उस झुंड में सात स्त्रियां भी थीं. उन्हीं में से सबसे अधेड़ के हाथों में फूलो को सौंपते हुए मां ने कहा था—बहन, अपन ही समझयो.

लोटा ही वह आखिरी चीज थी, जिसे गठरी में रख कर फूलो की मां अपनी बेटी से लिपट गयी थी. मन-ही-मन उसने प्रार्थना की थी कि मारीच में फूलो को माधो मिल जाये. दोनों भाई-बहन मिल कर सुख से रहेंगे. धनवा सरदार की बात सच निकलेगी. हर पत्थर के नीचे से सोना निकलेगा, और यहां रोटी-कपड़े के मुहताज ये लोग धनधान्य से भरपूर हो जायेंगे.

जहाज में फूलो एक क्षण अपनी मां के बारे में सोचती थी, तो दूसरे क्षण सात समुद्र पार के उस जजीरे के बारे में, जहां वह जहाज के तीन सौ व्यक्तियों के साथ जा रही थी. अपनी मां, अपने गांव, अपनी झोपड़ी से दूर होने के दुख को वह यह सोच कर कम कर जाती थी कि मारीच में उसे अपना भाई मिल जायेगा. दोनों मिल कर उस मायावी देश के पत्थरों के नीचे से बहुत सारा सोना बटोरेंगे और फिर अपने देश को लौट आयेंगे. उस समय वह सोलह पार कर गयी थी, फिर भी उसकी कल्पना बच्चों की-सी हो गयी थी. जहाज के सभी लोग प्रायः उसी की तरह सोच रहे थे. सरदार ने कुछ इस तरह से बातें सुनायी थीं कि जहाज का हर आदमी यही सोचने लगा था कि वह परियों के देश को जा रहा है. यात्रा कई दिनों की हो जाने पर भी जब किसी द्वीप का नामोनिशान नहीं दिखा, तो लोग विचलित-से हो कर एक स्वर में पूछ बैठे थे—कहां बाटे मारीच का देश?

सरदार ने हंस कर उत्तर दिया था—मैं तुम सब की अधीरता को समझता हूं. बस, कुछ दिनों की बात है. सबूरी रखो. सभी मालामाल हो जाओगे.

अधीरता के दिन लंबे प्रतीत होने लगे थे. सभी यात्रियों को ऐसा लग रहा था कि जहाज अथाह सागर में रुक गया था. फूलो के मन में कई बार यह विचार पैदा हुआ था कि वह जहाज से कूद कर पीछे को लौट जाये. अगर ऐसा कर पाना सरल होता, तो वह कर गयी होती. उसके लिए बस अपने को कोसना ही बाकी रह गया था. उसे किसी भी हालत में

अपनी मां को नहीं छोड़ना चाहिए था. उसे अंतिम क्षण में उस दयनीयता में छोड़ कर उसने पाप किया था. वह दुखी थी, भयभीत थी. इस अनर्थ के लिए आगे के आने वाले दिनों में उसकी क्या दशा होगी? जिस पराये देश में वह जा रही थी, वहां शांति से कैसे रह सकेगी? क्या करे?

सिर पर फूलदार रूमाल बांधे रहने वाला वह आदमी, जो यात्रा के पहले दिन से उसके आसपास ही रहता था, उसके अति पास आ गया था. उस समय मौसी, जिसके जिम्मे फूलो को किया गया था, जहाज के दूसरे छोर पर थी. वह व्यक्ति उसके पास की गठरियों को हटा कर फूलो के पास बैठ गया था. उसने प्रश्न किया —तू एतना उदास काहे बानी?

फूलो ने एक क्षण उसे देख कर फिर से आंखें झुका ली थीं. आसपास के लोग अपनी-अपनी बातें किये जा रहे थे. एक क्षण चुप रह कर उस व्यक्ति ने दूसरे प्रश्न का साहस किया था.

—घर के बहुत याद आवता न?

जहाज के बोरों के बीच इधर-उधर सभी लोगों ने अपने लिए जगह बना रखी थी. कभी-कभार जहाज के कर्मचारी उनके साथ इस तरह पेश आते जैसे कि बोरों के बीच वे भी बोरे थे. एक दिन चावल का बोरा समझ कर जहाज का एक कर्मचारी नींद में सोयी हुई फूलवंती को उठा कर एकांत कोने में पहुंच गया था. फूलो चिल्लायी थी. कई लोग अपनी-अपनी जगह पर उठ कर बैठ गये थे. पर आगे कोई नहीं आया था. कर्मचारी ने फूलवंती को दूसरे बोरों के ढेर पर पटक दिया था. सामने खड़े दलाल के हाथ से चांदी का सिक्का ले कर वह वहां से टल गया था. दलाल ने मीठे स्वर में बात शुरू की थी. फूलो अपने में सिमटती गयी थी. धीरे-धीरे दलाल उसके पास आता गया था और फूलवंती भीतर दहलती गयी थी. अपनी डरावनी मुसकान के साथ दलाल ने हाथ आगे बढ़ाया था— पर उसका वह हाथ फूलो के लहंगे तक पहुंच जाता कि तभी पीछे से किसी ने उसकी गरदन दबोच ली थी. फूलो ने उस धुंधलके में भी उस आदमी को पहचान लिया था. वह वही, उसका हाल पूछने वाला आदमी था. अपनी सारी ताकत के साथ दलाल को पीछे खींच कर उसने उसे पीछे के बोरों पर फेंक दिया था. दलाल ने कठिनाई से उठ कर उसे तरेरा था और गालियां बकता हुआ चला गया था.

तीन दिन बाद जहाज बंदरगाह से लगा था और तीन सौ बीस कुलियों में से तीन सौ उन्नीस ही जहाज से उतरे थे. एक कम था, पर उस मामूली कमी पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था. उसके लिए कोई चिंतित भी नहीं हुआ. इसके बाद फूलो का हाल पूछने कभी कोई नहीं आया. हिंद महासागर की गहराई अथाह थी. उसके भीतर की आवाज बाहर कभी नहीं सुनायी पड़ती थी. चट्टानों से टकराती सतही ज्वार-भाटे की आवाजें फूलवंती तब से अब तक सुनती आ रही है. समुद्र की उन लहरों के कारण को वह कभी नहीं जान सकी. आज बुढ़िया हो जाने पर भी वह एकांत में अपने प्रश्न को सुना करती है—इस द्वीप की ये लहरें इस तरह कराहती क्यों हैं?

आज तक किसी ने उसको यह नहीं बताया कि चारों दिशाओं से ये लहरें ही थीं जो द्वीप में घटने वाले एक-एक क्षण की गवाह थीं. सभी ऊंचे पहाड़ अपनी कठोरता के कारण खामोश थे, पर ये लहरें अपनी फेनिल तरलता के कारण गाने को विवश थीं.

कुछ असह्य क्षणों को जीते समय फूलो कई बार अपने से पूछ चुकी थी कि उसके भारत छोड़ने की नौबत क्यों आयी थी. कौन-सा ऐसा संकट था, जो इससे भी भयंकर था? फिर तो पुरानी, धुंधली यादें धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क में उभरने लग जातीं. भारत में स्वतंत्रता के लिए आंदोलन हो रहे थे. उसका भाई माधो बिहार के गांव-गांव में लोगों को उस आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित कर रहा था. अंग्रेज उसके पीछे थे. पकड़े जाने के भय से वह मारीच को भाग आया था. अंग्रेजों के हाथ जब क्रांतिकारी नहीं आये, तो उन्होंने बिहार को मटियामेट कर देने के खयाल से वह सभी कुछ किया, जिससे महामारी दोगुनी हो गयी.

खेत सूखारी से सूखते रहे और झोपड़ियां आग से जलती रहीं. प्रकृति की निर्दयता के साथ-साथ अंग्रेज की निर्दयता मिल गयी. खेत उजड़ते गये, बिहार का ऐश्वर्य मिटता गया, भूख बढ़ती गयी, लाशें सड़ती गयीं और बीमारियां बढ़ती गयीं. फूलो ने कई लोगों से सुना था कि बिहार पांच सौ वर्ष पीछे हो गया था. तभी तो उसकी मां ने भी उससे यही कहा था कि जो धरती पांच सौ वर्ष पिछड़ गयी, वहां जीवन के चंद वर्षों को किस आस से जिया जाये! बहुत बाद में मारीच की कठिनाइयों को झेलती हुई, जूझती हुई, फूलो ने कई बार अपने से कहा था कि इधर भाग आने से बेहतर तो यह होता कि वहां की उस स्थिति को वहीं झेला जाता.

अभी उस दिन सात मजदूरों का पूरे महीने का पैसा जब्त कर लिये जाने पर उसके मुंह से निकल ही गया था —अपन देश के संकट में छोड़ के भाग आवल के ई सब फल मिल रहल बा.

बाड़े से सटी हुई छोटी-सी कोठरी से छूट कर जब गौतम घर लौटा तो उस समय वह आधे दम का था. फूलवंती ने अपने हाथों से तीन दिन मांड़ पिला कर उसे हिल-डोल सकने के काबिल बनाया था. तीन फीट चौड़ी और पांच फीट ऊंची उस कोठरी में गौतम को पंद्रह दिन रहना पड़ा था. दिन में बस एक मुट्ठी अध-उबले चावल दरार से उसके सामने फेंक दिये जाते थे. पंद्रह दिन में कभी एक पल के लिए भी उस कोठरी का दरवाजा नहीं खोला गया था. पंद्रह वर्ष से उस कोठरी में न कभी झाड़ू फेरा गया था और न कभी वहां की सीली दुर्गंध को बिखर जाने के लिए दरवाजे को पूरा खोला गया था. आठ-दस दिन के भीतर दंडित मजदूर या तो अपने ही मल-मूत्र की दुर्गंध से लाश में बदल कर दुर्गंधित हो उठता था, या पंद्रह दिन बाद दरवाजे के थोड़ा खुलने पर अधमरी हालत में बाहर आता.

तीसरे दिन फूलो ने गौतम को दाल का पानी दिया.

वह थोड़ा-बहुत बात कर सका था. उसने अपने बाप का हाल पूछा. फूलवंती ने कोई उत्तर नहीं दिया. शाम को गौतम ने किसन से पूछा. किसन ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया तो सही, पर झूठ बोल गया. दो दिन और बीते, जब गौतम खाट से उठ कर चल-फिर सका.

शाम को वह अपने बाप के घर पहुंचा. बहुत दिनों बाद वह भीतर गया. उसके सभी भाई-बहनों ने उसे घेर लिया. उसकी मां उससे लिपट गयी पर. . . उसका बाप सामने नहीं आया.

उसके घर में एक मर्द की आवश्यकता थी, इसलिए गौतम नहीं लौटा.

वह वहीं रह गया.

फूलवंती को जब यह बात मालूम हुई तो उसकी आंखों में खुशी के आंसू भर आये.

ऊपर आकाश की काली बदली ने चांद को रिहा कर दिया था.

चांद की चांदनी उसकी आंखों में धीरे-धीरे टपक रही थी. उन सारी बूंदों को अपनी आंखों में डबाडब भर कर उसने किसन की ओर देखा. किसन ने सूखी लकड़ियों की जो आग जलायी थी, वह अब भी लपटें लिये धधक रही थी. माहौल गूंगा था. दोनों पेड़ों की ओट में चले गये, जहां वातावरण अंधा था. झाड़ी से नेवला निकला और भाग गया. झुरमुट के बीच के गड्ढे में इकट्ठा बरसात का पानी सो रहा था. किसन के हाथ से हाथ छुड़ा कर उसने एक कंकड़ को पानी में फेंका. छपाक् की आवाज हुई. पेड़ों की छाया से दूर खुली जगहों पर चांदनी ने अपनी सफेदी को छितरा रखा था. खेतों की हर मुंडेर पर वह रंग छितरा हुआ था, पर ये दोनों उस उजाले से दूर थे. पहाड़ी से ले कर दूर तक के फैले खेतों ने रात के एक-एक टुकड़े को आपस में बांट लिया था. हवा के झोंकों से झर-झर की आवाज ने एकाएक महौल के गूंगेपन को तोड़ डाला.

—तुम मुझसे दूर क्यों भागते हो?

किसन चुप रहा.

—तुम बोलोगे भी नहीं? मेरे बाप से डरते हो न?

किसन ने अपनी आवाज अकेले सुनी.

—नहीं. मैं किसी से नहीं डरता.

—तुम्हारा बंधन बहुत ढीला है, किसन! कहते हुए उसने किसन की छाती से अपने पूरे बोझ को लगा दिया.

इस समय किसन को ईख के कारखाने में होना चाहिए था. मलगासी नौकरों ने ईख पेरने के काम को जैसे छोड़ दिया था. बस्ती के पंद्रह मजदूर चीनी पकाने में लगे हुए थे. किसन को वहां से उठा लाया गया था.

—तुम्हें मालूम है, किसन, साहब ने एक बार मेरे बाप से क्या कहा था?

किसन ने सिर हिला दिया.

—उसने कहा था कि मैं बस्ती में सबसे ज्यादा मादक हूं. यह बात मेरी मां ने मुझे सुनायी थी. जानते हो मैंने मां से क्या कहा था?

किसन ने फिर से सिर हिला दिया.

—मैंने कहा था, साहब से कह देना कि मेरी मादकता का हकदार कोई है. वह हकदार तुम हो, किसन!

अपने से सटी मांसलता को महसूस कर किसन भीतर से ज्वालामुखी बनता रहा.

—किसन! अगर तुम नहीं बोलते तो मैं चुप हो जाती हूं.

उसकी सांसों की गरमी ने, जो किसन की अपनी सांसों के अति निकट थी, किसन की उष्णता को और भी उत्तेजित कर दिया. दोनों चुप रहे.

सांसें बोलती रहीं. चांदनी पत्तों के छिद्रों से चुपचाप झांकती रही. डाली के पक्षियों ने करवटें लीं. डैनों की फड़फड़ाहट हुई. दोनों की सांसों ने एक ही साथ रफ्तार तेज की.

टप्-टप् बूंदें टपकीं. झींसी आयी. उसके बाद बारिश भी शुरू हो गयी. दोनों पाकड़ से सटे रहे. किसन ने नहीं चाहा कि जो उसके साथ थी, वह भीगे. उसने उसे जकड़ कर अपने सिर को उसपर झुका दिया. वह बच्ची की तरह उसके अंक में सिकुड़ गयी. चांदनी लुप्त थी. अंधेरा ईख के पके हुए रस की तरह गाढ़ा हो चला था.

किसन ने अपने कान के पास गुदगुदी अनुभव की. होठों की गरमी और फिर कराहती हुई-सी फुसफुसाहट

—किसन, तुम अपने बाप को मेरे बाप से मिलने क्यों नहीं भेजते?

किसन की अंगुलियां अनायास ही उसके लंबे, भीगे बालों में दौड़ गयीं. उसी तरह ठंडी अंगुलियों को उसने अपने होठों पर विचरते पाया. उसके समूचे शरीर में फिर से सिहरन पैदा हो गयी. फिर से गरमी पा कर धमनियों का खून खौला. . . . फिर से. . . .

एक सुस्ती-सी आयी. दोनों निर्जीव पड़े रहे. एक लंबी खामोशी बनी रही. डैनों की फड़फड़ाहट ने उसे तोड़ा.

—किसन! तुम उत्तर नहीं दोगे?

—. . .

—कब भेजोगे अपने बाप को मेरे यहां?

किसन जानता था कि इस प्रश्न का कोई अर्थ ही नहीं था. वह क्षणिक था— इस क्षणिक बंधन के खुलते ही वह प्रश्न ठंड से जम जायेगा.

किसन ने बंधन को थोड़ा-सा शिथिल किया.

—मुझे लौटना होगा.

—अभी कारखाने का काम पूरा नहीं हुआ.

—तड़के ही खेतों में पहुंचना है.

—अभी समय है.

—तुम्हारा बाप अगर घर पहुंच गया हो तो?

—कुछ नहीं होगा.

जिस सरलता के साथ उसने उत्तर दिया, वह किसन को बहुत अच्छा लगा.

किसन कई बार अपने आप से पूछता रहता था कि आखिर जो साहस और निर्भयता लड़कों में है, वह लड़कियों में क्यों नहीं? घूंघट वाली लड़की किसन को कभी भी अच्छी नहीं लगी. उसने चाहा था कि लड़कियां भी स्थिति को बदलने में सक्रिय भाग लें. यह

लड़की कुछ हद तक स्वतंत्र और दिलेर थी, लेकिन इसकी यह स्वतंत्रता और दिलेरी उस लक्ष्य को नहीं छू पाती, जो किसन का था.

बारिश के थमने के बाद भी चांद ओझल ही रहा. समय का अनुमान नहीं हो पा रहा था. किसी तरह अपने को अंधेरे की झालर से मुक्त करके किसन ने उस ओर देखा, जहां टिमटिमाते चिराग अंधेरे को चीरने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे.

—चलो, पहले तुम्हें अहाते तक छोड़ आऊं!

—अभी तो मुर्गों की बांग भी शुरू नहीं हुई.

—तुम भीग गयी हो. कपड़े बदलने होंगे तुम्हें.

—भीगे तो मुझसे अधिक तुम हो.

—मैं आदी हूं.

—तुम तो बहुत चीजों के आदी हो.

—समझा नहीं.

—खैर. . . अब कब मिलोगे?

—तुम सोचती हो, हमारा इस तरह का मिलना अच्छा होगा?

—अच्छे-बुरे की परख मुझे नहीं, तुम्हें है क्या?

—केवल एक स्थिति होती है, जब आदमी बरसात और गरमी के प्रभाव को भी परख नहीं पाता.

—कौन-सी स्थिति होती है वह?

—वह बीत गयी.

—दोहरायी नहीं जा सकती क्या?

—बस, अब चलना होगा.

—तुम पुष्पा से भी इसी तरह कतराते हो?

—मैं तुम्हें कारखाने के उस पार तक छोड़ आता हूं.

—सुना है, पुष्पा तुम्हें देखे बिना भात नहीं खाती.

—कारखाने में मेरा काम अधूरा रह गया होगा.

दोनों उस कुछ-कुछ फटते हुए अंधेरे में चलने लगे.

—तुम डरती नहीं हो? किसन ने पूछा.

—तुम से?

—नहीं. अंधेरी रात में अकेली!

—मैं अकेली हूं क्या?

चीनी पकने की गंध से भीगा माहौल तर था. कोल्हू की आवाज रुकी हुई थी. किसन ने अनुमान लगा कर जान लिया कि कल में फिर से गड़बड़ी आ गयी होगी और उसकी जगह मजदूर उस भारी पहिये को घुमा रहे होंगे.

उनका पसीना ईख के रस में मिल कर चीनी बन रहा होगा. एक आवारा खयाल आ गया उसे. . .

. . .कभी ऐसा नहीं होगा कि मजदूरों के पसीने की मात्रा चीनी में कुछ अधिक हो जाये और चीनी मीठी न हो कर नमकीन हो जाये?

कारखाने के भीतर मशालें जल रही थीं. बाहर भी उनका प्रकाश था. उस प्रकाश से कतरा कर दोनों पत्थर की ऊंची दीवार के आसपास चलने लगे. भीतर काम पराकाष्ठा पर था. सरदार के चिल्लाने की आवाज दीवारों को भेद कर बाहर तक आ रही थी.

किसन ने रुक कर कहा — अब मैं कारखाने को लौट रहा हूं.

—वहां मेरा बाप पहुंच गया होगा.
—तो फिर क्या करूं?
—घर क्यों नहीं चले जाते?
—घर?
—हां, तो क्या? पर देखो, यह बता कर ही जाना होगा कि अब कब मिलोगे.
—तुम मेरे लिए एक काम नहीं कर सकती हो?
—मुझे इस योग्य तो समझा तुमने!
—तुम वचन दो तो मैं कुछ कहूं.
दोनों के बीच थोड़ा-सा जो फासला बन गया था, वह कम हो गया.
—मैं तुम्हारे इतने करीब हूं. और किस दूसरे वचन की बात कर रहे हो?
—तुम अपने बाप को मना तो सकती हो.
—हमारी शादी के लिए?
—इससे भी बड़ी चीज के लिए.
—इससे भी बड़ी चीज क्या हो सकती है?
—तुम अपने बाप से कहना, वह मजदूरों के साथ कुछ कम क्रूरता के साथ पेश आये.
—जहां तक मैं जानती हूं, मेरा बाप सभी सरदारों से अच्छा सरदार है.
—जो तुम जानती हो, वह सच नहीं.
—मेरा बाप सभी से क्रूर है क्या?
—मजदूरों से पूछ कर क्यों नहीं देखतीं?
—मैं अपने बाप को मना लूंगी. . .एक. . .शर्त. . .
—कैसी शर्त?
—हमारे बीच का संबंध!
—क्या मतलब इसका?
—कोई मतलब नहीं इसका?
—मेरा मतलब है, क्या करना है हमारे बीच के संबंध के साथ?
—इसे सही संबंध बनाया जा सकता है.

अधिक अनजान बनना किसन से नहीं हो सका. इस सौदे के भाव को वह पहले ही से जानता था. दोनों के बीच का यह संवाद हमेशा इसी ठौर पर आ कर रुकता था. दोनों यहीं से विदा हो कर कई दिनों तक एक-दूसरे से दूर रहते थे.

किसन ने अपनी गरदन से उसकी बाहों को ढीला किया और अपनी भीगी आस्तीन से मुंह पोंछ कर उसने धीरे से कहा— शायद तुम्हारी मां अब भी जाग रही है.

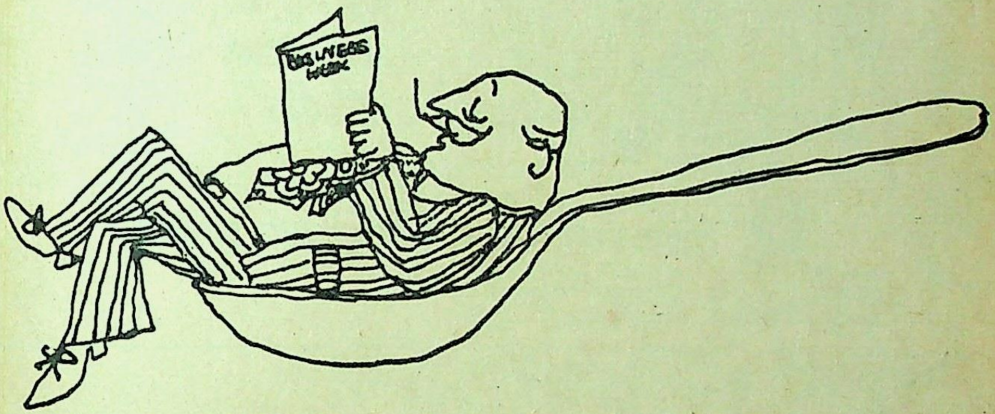
किसन की नाक को जोरों से खींच कर सत्या अपने घर की ओर दौड़ गयी. दूसरे क्षण किसन भी अपने घर की ओर चल पड़ा. किसन की अंधी चाल के लिए रास्ता वहां से सीधा था.

अगले अंक में

दूसरी बस्ती के मजदूरों से मेलजोल की योजना. . . सोनालाल का पकड़ा जाना और उसकी सजा. . .किशन और सत्या की मुलाकातें . . .और बढ़ता हुआ संघर्ष


नया पैकिंग नई शान
REGD.
रत्ना छाप
ज़ाफरानी पत्ती
RATNABRAND
रजिस्टर्ड
रत्ना
ज़ाफरानी
PRABHAT
ZARDA FACTORY
NO 300
नं. १३,२०,३०,६४,१५०,२००,३००,४५०.
प्रभात ज़र्दा फैक्ट्री, मुज़फ्फरपुर
अब नये पैकिंग में माँग करें
AVANTIKA/96

बेहतरीन कारोबारी टॉनिक
यूरोप
रोज़ाना दो बार



यूरोप में अपनी कारोबारी क्षमता
बढ़ाइये. पेश है हमारा नुसख़ा—
रोज़ाना दो उड़ानें.
१४ प्रति सप्ताह.
महाद्वीप के सभी महत्त्वपूर्ण व्यापार-
केन्द्रों से संपर्क स्थापित करते हुए.

लंदन के लिए १५. रोम के लिए ५.
जिनेवा के लिए ३. फ्रैंकफ़ुर्ट के लिए ६.
पेरिस के लिए ५. मौस्को के लिए २.
आम्स्टरडम के लिए १.

एयर-इंडिया

AI-1215 A



विश्वसनीय तीन
परिवार के सर्वोत्तम मित्र
दिवाली के शुभ अवसर पर
इनको अच्छी तरह पहचान
लीजिए। जीवन बीमा निगम ने
तीन नई पालिसियां— विशेष
तौर पर आप ही के
लिए बनाई हैं।
जीवन बीमा निगम की
मनी बैक, कैश एण्ड कवर
और प्रोग्रेसिव प्रोटेक्शन
पालिसी।
लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन आफ इण्डिया



ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX
REGD.
EYETEX
KUMKUM PASTE
11 IN 1
ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033

आपको ब्याज पर भी ब्याज मिलता है ?



स्टेट बैंक रिइन्वेस्टमेंट प्लान

में पूँजी (मूलधन) पर तो ब्याज मिलता है ही, उसके ब्याज पर भी ब्याज मिलता है

पैसा कमाने के लिये आप जी तोड़ मेहनत करते हैं। अगर आप चाहते हैं कि अब पैसा आपके लिये कमा कर दिखाए, तो स्टेट बैंक चले आइये। रु. १०००/- (या इसकी गुणक रक़म) स्टेट बैंक के रिइन्वेस्टमेंट प्लान में लगाइये फिर देखिए आपको ब्याज पर भी ब्याज मिलने लगेगा।

आपको अपनी जमा की गयी रक़म पर तो ब्याज मिलता है ही, इस मासिक ब्याज पर भी नया ब्याज मिलता है।

आपकी अपनी कई जिम्मेदारियाँ हैं जैसे बेटी की शादी, लड़के की उच्च शिक्षा और आपकी अपनी ज़िन्दगी की शाम। इन ज़िम्मेदारियों को निभाने के लिये सही वक़्त पर उचित रक़म चाहिये। इसके लिये आप इतने अरसे के लिये जमा कीजिये कि आपकी बचत की रक़म बढ़कर उतनी हो जाय। पैसे की अचानक ज़रूरत पड़ भी जाय और वक़्त बहुत कम हो तो आप अपनी जमा रक़म में से 'लोन' ले सकते हैं।

टैक्स-लाभ

ब्याज पर इन्कम टैक्स (आय कर) आप साल दर साल दे सकते हैं— ऐसा नहीं है कि जमा खाते की अवधि पूरी होने पर सारा ब्याज इकट्ठा देना पड़े। बैंक में जमा की गयी रक़म पर या अन्य अमुक प्रकार की लागत पर हर साल रु. ३,००० तक की ब्याज की कुल रक़म पर कोई आयकर नहीं लगता।

आपकी रोकी गयी वेतन/मँहगाई भत्ते की रक़म वापिस मिलने पर उससे दीर्घकालीन लाभ उठाने का सुअवसर।

अपनी रक़म को हमारी स्टेट बैंक की पुनर्विनियोग (रिइन्वेस्टमेंट) योजना में लगाइये।

रु. १०० या उससे अधिक की राशि (रु. १० के गुणक में) स्वीकार की जाती है।

महीने	स्टेट बैंक रिइन्वेस्टमेंट प्लान में रु. १००० की रक़म से ब्याज पर ब्याज समेत मिलनेवाली कुल रक़म
१३	रु. १०९०.२२
२५	रु. ११८०.७१
३७	रु. १३१८.४६
४९	रु. १४४२.१४
६१	रु. १६५९.०२
६२	रु. १६७२.८४
७२	रु. १८१७.५९
८४	रु. २००७.९२
९६	रु. २२१८.१७
१०८	रु. २४५०.४५
१२०	रु. २७०७.०४

अधिक जानकारी के लिये देशभर में स्थित स्टेट बैंक के ४००० कार्यालयों में से किसी भी शाखा में पधारिये।

PIN CODE FOR FAST MAIL

रक्तदान कीजिये किसीकी जीवन-रक्षा कीजिये

स्टेट बैंक

SBI-22-203 R Hin

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित; जनरल मैनेजर: डॉ. राम तरनेजा; पो. बाक्स २१३, बंबई-४०० ००१; दिल्ली आफिस: ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-११० ००२; कलकत्ता आफिस: १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट; लंदन आफिस: ९६, द फर्स, एलेक्जेंड्रा रोड, हौंस्लो टी डब्ल्यू ३, ४ आर एच, मिडिलसेक्स, यू.के.


दक्षिण बंबई
K.E.Md. ABOOBACKER
शंख
मार्का
लुंगी
रुमाल
निर्माता व विक्रेता:
मोहम्मद अबूबकर ऐंड
९५, थम्बु चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास - ६०००0१.
शाखा : कलकत्ता • मदुरै • कोल्लम • बम्बई
बंगलूर में हमारा नूतन शो-रूम: "हिन्दुस्तान काम्पलेक्स" ११/बी, वी पी के अय्यंगार रोड, बंगलूर
art ads